भरत का संगीत-सिद्धान्त

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—२८

भरत का संगीत-सिद्धान्त

लेखक

श्री कैलासचन्द्रदेव बृहस्पति

एम. ए., शास्त्री

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रकाशकीय

राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्य की समुन्नति एवं संवृद्धि के लिए उत्तर प्रदेश प्रशासन ने हिन्दीसमिति के तत्त्वावधान मे विविध विपयो के ग्रन्थ प्रकाशित करने की जो योजना बनायी थी, उसी के अन्तर्गत यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। इसमे महर्षि भरत के सगीत-सिद्धान्त का सम्यक् विवेचन किया गया है। इसके लेखक है सनातनधर्म कालेज, कानपुर के यशस्वी प्राध्यापक श्री कैलासचन्द्र देव बृहस्पति। यह हिन्दी समिति ग्रन्थमाला का २८वाँ पुष्प है।

लेखक के पूर्वज, कम से कम चार पीढ़ियो से, रामपुर राज्य के दरबार में रहे हैं, अतः संगीतसम्बन्धी सस्कार उन्हे प्रायः आनुषंगिक रूप से ही प्राप्त हुए है। उन्हें ऐसे "सद्गुरुओ" के चरणो मे बैठकर स्वर-साधना करने का अवसर प्राप्त हुआ है जिन पर आज के अनेक सुप्रसिद्ध एवं सुसम्मानित संगीत-शास्त्रियो की भी अपार श्रद्धा है। अनेक विद्वानो की सत्सगति और अभ्रान्त पथ-प्रदर्शन का भी सौभाग्य उन्हे प्राप्त हुआ है। इसके सिवा उन्होंने भरत के मूल नाटचशास्त्र, शार्ङ्गदेव के सगीतरत्नाकर आदि अनेक ग्रन्थो का वर्पो से अनुशीलन और मनन किया है, जिसकी स्पष्ट छाप हमें इस पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में देखने को मिलती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ महर्पि भरत के "नाटच-शास्त्र" का अनुवाद नही है। यह उनके सगीतसम्बन्धी सिद्धान्तो का व्याख्यात्मक विवेचन एवं मण्डनात्मक विश्लेपण है। भरत मुनि ने संगीत के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा, कालगति के प्रभाव से वह दुर्बोध होने लगा था, अतः उनके विचारो को स्पष्ट करने के लिए मतंग, नान्यदेव, कुभ, शार्ङ्गदेव आदि ने अपनी-अपनी रचनाओ मे उनका पर्याप्त विवेचन किया। हिन्दी में

इस विषय पर कोई ग्रन्थ अभी तक नही लिखा गया था। बृहस्पतिजी ने प्रस्तुत पुस्तक की रचना कर इस अभाव की पूर्ति कर दी है। मूल विषय का वर्णन और स्पष्टीकरण समाप्त कर चुकने के बाद आपने अन्त के चार अनुबन्धो मे जो सामग्री प्रस्तुत की है, वह भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और परमोपयोगी है। ग्रन्थ अत्यन्त परिश्रमपूर्वक और बड़ी खोज के साथ लिखा गया है। हमे पूरी आशा है कि सगीत के प्रेमियो और उसका विशिष्ट अध्ययन करनेवालो के लिए यह पुस्तक परम लाभदायक प्रमाणित होगी।

भगवतीशरण सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

भूमिका

जर्मनी के महाकवि गेटे ने कहा है कि एक महान् चिन्तक जो सबसे बड़ा सम्मान आगामी पीढ़ियो को अपने प्रति अर्पण करने के लिए बाध्य करता है, वह है उसके विचारो को समझने का सतत प्रयत्न। महर्षि भरत ऐसे ही महान् चिन्तक थे, जिन्हें समझने की चेष्टा मनीषियो ने शताब्दियो से की है, परन्तु जिनके विषय में कदाचित् कोई भी यह न कहेगा कि अब कुछ कहने को शेष नही है। उनके रस-सिद्धान्त पर बडे-बड़े कवियों और समालोचको ने बहुत कुछ लिखा है और अभी न जाने कितने ग्रन्थ लिखे जायँगे। उन्होने सङ्गीत पर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नही लिखा, उनका ग्रन्थ है नाटच-शास्त्र। अपने यहाँ सङ्गीत नाटच का प्रधान अङ्ग माना गया है। भरत ने नाटच मे सङ्गीत का महत्त्व इन शब्दो मे स्वीकार किया है—

"गीते प्रयत्नः प्रथम तु कार्यः शय्यां हि नाटचस्य वदन्ति गीतम्।
गीते च वाद्ये च हि सुप्रयुक्ते नाटच-प्रयोगो न विपत्तिमेति ॥"

अर्थात् नाटच-प्रयोक्ता को पहले गीत का ही अभ्यास करना चाहिए, क्योकि गीत नाटच की शय्या है। यदि गीत और वाद्य का अच्छे प्रकार से प्रयोग हो, तो फिर नाटच-प्रयोग मे कोई कठिनाई नहीं उपस्थित होती।

अत भरत ने अपने नाटचशास्त्र में सङ्गीत पर भी कुछ अध्याय लिखे है, किन्तु इन थोडे से ही अध्यायों मे उन्होने सङ्गीत के सब मूलभूत सिद्धान्तो का प्रतिपादन कर दिया है और उनके साथ ही अपने समय के 'जातिगान' का भी वर्णन किया है। काल-गति से भरतकालीन सङ्गीत में कुछ अन्तर आ गया और उन्होने इस सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, वह दुर्बोध होने लगा। मतङ्ग के समय मे भी—जिनका काल प्रो० रामकृष्ण कवि के अनुसार नवी शती ई० है—भरत के सिद्धान्तों का समझना कठिन हो गया था। फिर भी भरत-सम्प्रदाय के समझनेवाले शार्ङ्गदेव के काल (१३वी शती ई०) तक वर्तमान थे। उसके अनन्तर भरत-सम्प्रदाय का लोप-सा ही हो गया। भरत ने सङ्गीत

---

१. भरत ना. शा. सा., नि. सा. सं, अध्याय ३५श्लोक ४४१, पृ. ६०२

पर जो कुछ लिखा है, वह बहुत ही संक्षिप्त रूप में है। साथ ही उनके समय के सङ्गीत की सज्ञाएँ भी धीरे-धीरे वदलती गयी, इसलिए उनके सिद्धान्त को समझना कठिन हो गया। अतीत मे उनके विचारो को स्पष्ट करने के लिए मतङ्ग, नान्यदेव, अभिनव-गुप्त, कुम्भ, शार्ङ्गदेव इत्यादि विद्वानो ने अपने-अपने ग्रन्थो मे पर्याप्त रूप से लिखा। इधर बीसवी शती मे भरत पर फिर चर्चा प्रारम्भ हुई। श्री क्लेमेण्ट्स्, श्री देवल, प्रो० पराञ्जपे, पं० विष्णुनारायण भातखण्डे, श्री कृष्णराव गणेश मुले और पं० ओकारनाथ ठाकुर इत्यादि विद्वानो ने भरत के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। श्री कृष्णराव गणेश मुले ने अपने मराठी ग्रन्थ 'भारतीय सङ्गीत' मे भरत-सिद्धान्त का विस्तृत रूप से वर्णन किया है। मैने कुछ मराठी मित्रो की सहायता से यह ग्रन्थ पढ़ा। इससे मुझे भरत-सिद्धान्त को समझने मे वड़ी सहायता मिली। मै यह सोचता था कि यदि इसका अनुवाद हिन्दी मे हो जाता तो बहुत अच्छा होता। हिन्दी मे इस प्रकार के ग्रन्थ का अभाव मुझे खटकता रहा। यह बड़े हर्ष का विषय है कि पं० कैलासचन्द्र देव बृहस्पति ने इस अभाव की पूर्ति कर दी है। आपका 'भरत का सगीत-सिद्धान्त' किसी ग्रन्थ का अनुवाद नही है। आपने भरत के मूल नाटचशास्त्र, मतङ्ग की वृहद्देशी, शार्ङ्गदेव के सङ्गीत-रत्नाकर इत्यादि ग्रन्थो का बीस वर्ष से अध्ययन और मंथन किया है। आप संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित है और साथ ही आपको सङ्गीत का क्रियात्मक ज्ञान भी है। अतः आप भरत पर लिखने के लिए वहुत ही उपयुक्त अधिकारी है। आपने छ' अध्यायो मे भरत के मुख्य सिद्धान्तो का वहुत ही सुन्दर विश्लेषण किया है और कुछ ज्ञातव्य विषयो पर चार अनुबन्ध भी जोड दिये है। आपने मूल ग्रन्थो का परिशीलन तो किया ही है, प्रो० रामकृष्ण कवि के 'भरत-कोश' का भी पूरा उपयोग किया है। ग्रन्थ भर मे आपने किसी अन्य ग्रन्थकार का कही व्यक्तिगत खण्डन नही किया है। आपका ग्रन्थ केवल मण्डनात्मक है, इसे पढ़कर विज्ञ पाठक स्वयं नीर-क्षीर-विभेद कर सकेगे।

भूमिका-लेखक के लिए एक वडी कठिनाई यह होती है कि यदि वह ग्रन्थ के विपयों पर अपनी भूमिका में ही बहुत कुछ कह देता है तो वह ग्रन्थकार के साथ अन्याय करता है, क्योकि प्रतिपाद्य विषयो पर ग्रन्थकार का विचार पाठक को ग्रन्थ से ही मिलना चाहिए। यदि वह प्रतिपाद्य विपयो पर कुछ नही कहता, तो भी वह ग्रन्थकार के साथ अन्याय करता है, क्योकि फिर वह ग्रन्थ के प्रति पाठको का ध्यान ही नही आकृष्ट कर सकता। मैने इस उभयापत्ति के मध्य का मार्ग ग्रहण किया है। अतः इस भूमिका मे कुछ संकेत मात्र कर रहा हूँ जिससे पाठक यह जान जायँ कि प्रतिपाद्य विषय क्या है, परन्तु उनको विस्तृत रूप से जानने की उत्सुकता वनी रहे।

पहले अध्याय मे लेखक ने ग्राम, श्रुति और स्वर पर विचार किया है। स्वरो के समूह को ग्राम कहते है। स्वरो से ग्राम और श्रुतियो से स्वर बने है। परस्पर-सम्बद्ध होने के कारण इन सबका एक साथ विचार इस अध्याय मे किया गया है। महाराज कुम्भ ने ग्राम की बहुत सुन्दर परिभापा की है :—

"व्यवस्थितश्रुतियुता यत्र संवादिन· स्वराः।
मूर्च्छनाद्याश्रयो नाम स ग्राम इति सञ्ज्ञितः॥"[१]

अर्थात् ग्राम 'संवादी स्वरो' का वह समूह है जिसमे श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप में विद्यमान हो और जो मूर्च्छना इत्यादि का आश्रय हो। भरत ने केवल षड्ज और मध्यम ग्राम का वर्णन किया है। उन्होने गान्धार ग्राम की चर्चा नहीं की है। लेखक ने यह स्पष्ट रूप से वतलाया है कि भरत ने श्रुतियो की व्यवस्था संवादित्व के आधार पर की है। पहले क्रियात्मक रूप से देख लिया कि कौन-कौन स्वर परस्पर संवादी है, फिर उन्होने यह जानने की चेष्टा की कि सवादी स्वर कितनी श्रुतियो के अन्तर पर स्थित हैं, फिर क्रमश· उन्होने प्रत्येक स्वर की श्रुतिसंख्या प्राप्त की।

लेखक ने पहले यह दिखलाया है कि किस प्रकार नवतन्त्री विपञ्ची वीणा पर षड्ज, ऋषभ, भरतोक्त शुद्ध गान्धार, अन्तरगान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद और काकलीनिपाद प्राप्त होते है। इस अध्याय का 'श्रुति-दर्शन-विधान' बहुत ही पाण्डित्य-पूर्ण है। इसमे लेखक ने पहले भरत की चतु सारणाएँ विस्तारपूर्वक समझायी है और यह दिखलाया है कि उनसे किस प्रकार श्रुतियों की संख्याएँ प्राप्त होती हैं। इसके अनन्तर लेखक ने यह दिखलाया है कि उनके द्वारा निर्मित 'श्रुतिदर्पण' वाद्य पर किस प्रकार समस्त सारणाएँ सम्पन्न हो जाती है और श्रुतियो की सख्याएँ सरलतापूर्वक प्राप्त हो सकती है। यदि यह 'श्रुति-दर्पण' बनवाकर सगीत-विद्यालयो को दे दिया जाय, तो श्रुतियो के समझने मे छात्रो का बहुत उपकार होगा। भरत का श्रुति-सम्बन्धी मत नाट्यशास्त्र के एक पृष्ठ में दिया हुआ है, किन्तु वह इतना संक्षिप्त है कि विद्वानो के लिए विवाद का विषय बन गया है। लेखक का स्पष्टीकरण प्रो० मुले के स्पष्टीकरण से बहुत मिलता है। यदि किसी प्रयोगशाला मे विज्ञान और गणित के आधार पर इन श्रुतियो का विश्लेषण किया जाय, तो मैं समझता हूँ कि यह विवाद सदा के लिए समाप्त हो जायगा।

इसके अनन्तर लेखक ने श्रुतियों के परिमाण पर विचार किया है और यह सिद्ध

---

१. भरतकोश पृ० १८९

किया है कि श्रुतियो का परस्पर अन्तर बराबर नही है। प्रो० मुले ने भी अपने ग्रन्थ में 'श्रुतीचें गणितमूल्य' शीर्षक के अन्तर्गत प्रो० वी० जी० परांजपे के एक लेख के आधार पर गणित द्वारा यह सिद्ध किया है कि श्रुतियों के अन्तर सम नहीं, विपम है।

दूसरे अध्याय मे लेखक ने मूर्च्छना पर विचार किया है। भरत का मूर्च्छना से क्या तात्पर्य है इसका स्पष्टीकरण लेखक ने शास्त्र के प्रचुर प्रमाणो से किया है। मूर्च्छन का अर्थ उभरना या चमकना है। भरत के मत में सप्त स्वरो का क्रमपूर्वक प्रयोग ही मूर्च्छना है—

"क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसञ्ज्ञिताः।"

लेखक ने यह सिद्ध किया है कि सप्तस्वरता मूर्च्छना का मुख्य लक्षण है। अतः भरत-मत से सम्पूर्ण अवस्था को ही मूर्च्छना कह सकते है। 'औडुवित' और 'षाडवित' अवस्थाएँ मूर्च्छना नही, तान है। इसके अनन्तर लेखक ने षड्ज और मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाओं के नाम और स्वर दिये है और दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओ का मण्डल-प्रस्तार द्वारा स्पष्टीकरण किया है। इसके वाद मूर्च्छनाओं पर आश्रित तानो के नाम और 'सरगम' दिये गये है।

मूर्च्छनाओं के प्रयोजन को लेखक ने वहुत सुन्दर रीति से समझाया है। इसका इतना विशद और पाण्डित्यपूर्ण वर्णन अन्यत्र नही मिलता।

आपने यह दिखलाया है कि भरतोक्त जाति के वादन के लिए मन्द्र स्थान और तार स्थान मे जाने के लिए परावधि निश्चित थी। ये दोनो पराकाष्ठाएँ मत्तकोकिला वीणा पर उस समय सरलतापूर्वक संभव होती थी जव कि तीनो सप्तको में एक विशिष्ट मूर्च्छना उस पर मिली हो। मूर्च्छनाओ का आश्रय लेने से मन्द्र और तार की अवधियो की प्राप्ति हो जाती थी। भरत के अनन्तर मन्द्रावधि और तारावधि के नियम मे शिथिलता आ गयी और वादक को यह स्वतन्त्रता मिल गयी कि वह इन दोनों स्थानो मे इच्छापूर्वक घूम सके। अत. अब अशवाहुल्य को देखकर विद्वान् मूर्च्छना का निश्चय करने लगे। इस सम्वन्ध मे लेखक ने मतङ्ग के द्वादश-स्वर-मूर्च्छना-वाद का आलोचनात्मक विवेचन किया है और अन्त मे वादन में मूर्च्छना द्वारा किस प्रकार सौकर्य होता था इसे विस्तारपूर्वक समझाया है।

तृतीय अध्याय में जाति-लक्षण पर विचार किया गया है। जाति-गान वस्तुत. गान्धर्व-गान था जो वहुत ही प्राचीन समय से चला आ रहा था। भरत ने जाति-गान का आविष्कार नही किया, उसके लक्षण बतलाये है। जाति-गान वहुत ही पावन समझा जाता था और उसके नियमों मे कोई हेर-फेर नही किया जा सकता था। जातियाँ

वेदमन्त्रो के समान पवित्र समझी जाती थी। यह बात रघुनाथ की सङ्गीत-सुधा के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जाती है—

"यथैव सामानि ऋचो यजूषि नैवान्यथा कैश्चिदिह क्रियन्ते ।
सामप्रभूता अति जातयोऽमूरिहान्यथाष्टादश नैव कार्याः ॥"[1]

मतङ्ग के समय तक जाति-प्रयोग का इस प्रकार लोप हो गया कि उनके लिए उसकी निश्चित रूप से परिभाषा देना भी कठिन हो गया। आजकल विद्वानो में जातिस्वरूप के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। मेरी समझ से इसकी अभिनवगुप्त-कृत परिभाषा सर्वोत्तम और ग्राह्य है। उन्होने कहा है—

"तत्र केय जातिर्नाम। उच्यते—स्वरा एव विशिष्टा सन्निवेशभाजो रक्तिमदृष्टाभ्युदय च जनयन्तो जातिरित्युक्ता.। कोऽसौ सन्निवेश इति चेज्जातिलक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेशः[2]।"

अर्थात् रञ्जन और अदृष्ट अभ्युदय को निष्पन्न करनेवाले विशिष्ट स्वर विशेष प्रकार के सन्निवेश मे जाति कहलाते है। इस परिभाषा मे दो बाते ऐसी है जो बिलकुल स्पष्ट हैं—

(१) स्वरो का विशेष सन्निवेश या विन्यास।
(२) इस सन्निवेश मे रञ्जकता का होना।

स्वरो के विशेष सन्निवेश से क्या तात्पर्य है, इसको अभिनवगुप्त ने स्वय स्पष्ट कर दिया है। उन्होने कहा है—"जातिलक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेशः" अर्थात् सन्निवेश से तात्पर्य है जाति के दस लक्षण। वे दस लक्षण निम्नलिखित है—

"ग्रहाँशौ तारमन्द्रौ च न्यासापन्यास एव च।
अल्पत्व च वहुत्वं च षाडवौडुविते तथा[3] ॥"

जिसमे ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, वहुत्व, षाडवत्व और औडुवत्व के नियमो द्वारा स्वर-सन्निवेश किया गया हो वह 'जाति' है। जाति-गान सङ्गीत की एक वहुत विकसित अवस्था मे प्रादुर्भूत हुआ था। तभी वह इतने लक्षणो द्वारा व्यक्त होता था।

विद्वान् लेखक ने इन दस लक्षणो को इस ग्रन्थ में भली-भाँति समझाया है। इनमे सवसे महत्त्वपूर्ण लक्षण अंशस्वर है। अश-स्वर के ही महत्त्व को समझने से 'जाति' का रहस्य समझ मे आ सकता है। लेखक ने इन सब लक्षणों को समझाते

---

१ भ० को० पृ. २२८ २. भ० को० २२७ ३. ना० शा० अध्याय २८, श्लोक ७४

हुए जाति-गान और वादन पर सुन्दर प्रकाश डाला है। उन्होने १८ जातियों का विस्तृत वर्णन किया है। इनमे से सात जातियो के नाम सात स्वरों पर है। जातियाँ दो प्रकार की हैं—शुद्ध और विकृत। शुद्ध जातियाँ वे है जिनमे कोई स्वर कम नही होता और नामस्वर ही जिनमे अंश, ग्रह और न्यास होता है। न्यासस्वर के अतिरिक्त एक, दो या अनेक लक्षणो मे विकार होने से ये जातियाँ विकृत कहलाने लगती है।

अंशस्वर के संवादी स्वर का कभी लोप नही होता—इस आधार पर ग्रन्थकर्त्ता ने वहुत सुन्दर रूप से जातियो के प्रकार को समझाया है और विभिन्न आचार्यो के जाति-लक्षण दिखलाकर उन्होंने यह दर्शाया है कि उनमे भरत-परम्परा अक्षुण्ण रही है। अन्त मे उन्होंने जातियो के ध्यान भी दिये है।

चतुर्थ अध्याय मे लेखक ने सङ्गीत-रत्नाकर मे दिये हुए जाति-प्रस्तारो को विशद रूप से समझाकर लिखा है और उनके अनुसार स्वर-लिपि से जातियो का प्रत्यक्षीकरण किया है। लेखक का यह प्रयत्न स्तुत्य है। इसके द्वारा विद्यार्थी समझ सकता है कि जातियाँ किस प्रकार गायी जाती थी और इन्हे वह गा भी सकता है।

पञ्चम अध्याय मे स्वर-साधारण और जाति-साधारण का विस्तृत रूप से स्पष्टीकरण किया गया है। शार्ङ्गदेव ने स्वर-साधारण के विषय में वहुत ही ठीक कहा है—

"साधारण्यमतस्तस्य यत्तत्साधारण विदुः।"

(अडयार सस्करण, अ० १, पृ० १४७)

अर्थात् जो स्वर न तो पूर्व स्थिति को पूर्णतया छोड चुका हो और न पर-स्थिति को पूर्णतया ग्रहण किये हो, जो दोनो का आधार लिये हो, वह है साधारण 'स्वर'।

"सह आधारणेन वर्तते इति साधारणः।"

(अमरकोश, भानुजी दीक्षित की व्याख्या)

लेखक ने एक मण्डल-प्रस्तार मे साधारण स्वरो का श्रुति-स्थान भली-भाँति समझाया है।

छठे अध्याय मे लेखक ने राग का विशद वर्णन किया है। इन्होंने पहले राग की परिभापा समझायी है और फिर यह बतलाया है कि भरतोक्त ग्रामराग जाति से उत्पन्न हुए हैं। कल्लिनाथ ने मतङ्ग का उद्धरण देते हुए स्पष्ट कहा है—

"तथा चाह भरतमुनि—जातिसभूतत्वाद् ग्रामरागाणाम्।"

(सं० र०, अडयार संस्करण, अध्याय, २, पृ० ८)

जिस रूढ अर्थ मे आजकल हम 'राग' शब्द का प्रयोग करते है, उसका वस्तुतः 'जाति' पूर्वरूप है। लेखक ने ग्रामरागो का उदाहरण-सहित वर्णन किया है।

लेखक ने कहा है—"जातियों के दस लक्षणों मे प्रमुखतया लक्षण 'अंश' का वर्णन करते हुए उसके लक्षण मे महर्षि ने कहा है कि 'राग का जिसमें निवास होता है और राग जिससे प्रवृत्त होता है......वह अंशस्वर है।' इससे यह सिद्ध है कि महर्षि जातियो को भी राग ही मानते है।"

मेरी समझ में महर्षि ने जहाँ यह कहा है कि "रागश्च यस्मिन् वसति, यस्माच्चैव प्रवर्तते" वहाँ महर्षि ने राग को रूढ अर्थ मे नही लिया है, किन्तु यौगिक अर्थ में लिया है। अर्थात् उनका तात्पर्य यह है कि 'अंशस्वर' वह है जिसमें जाति की रञ्जकता निवास करती है और जिससे रञ्जकता प्रवृत्त होती है। अत इससे यह सिद्ध करना कठिन होगा कि वह जातियो को भी रूढ अर्थ मे राग ही मानते है। यह कहना अधिक समीचीन होगा कि रूढार्थ मे प्रयुक्त 'राग' की 'जाति' पूर्वरूप या आधार थी।

इन छः अध्यायो मे भरत-सिद्धान्त का पूर्णरूप से प्रतिपादन हुआ है। इनके अनन्तर जो चार अनुबन्ध दिये गये है, वे भी पठनीय और मननीय है। पहले अनुबन्ध मे भरत-सिद्धान्त मे आये हुए पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या है। दूसरे में रस-सिद्धान्त को सक्षेप मे समझाया गया है और भिन्न-भिन्न रसो का विशिष्ट स्वर-सन्निवेशो से सम्बन्ध बतलाया गया है। तीसरे में श्रुतियो की अनन्तता और देशी रागो मे प्रयोज्य ध्वनियाँ बतलायी गयी है और मूर्च्छना तथा आधुनिक ठाठो की स्वर-विश्लेषण द्वारा तुलना की गयी है। चौथे में भारतीय सङ्गीत के १५वी शती ई० तक के शास्त्रकारों का सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

समग्र ग्रन्थ बहुत खोज के साथ लिखा गया है। भरत-सिद्धान्त को समझने के लिए यह अत्युत्तम कृति है। लेखक ने इसकी रचना करके सङ्गीत के विद्यार्थियो का बहुत उपकार किया है। वे हमारे साधुवाद के पात्र है। आशा है, संगीतानुरागियों द्वारा इसका यथोचित आदर होगा।

जयदेव सिह

उद्धरण-संकेत

१. अ०, अध्या०	...	अध्याय
२. अ० भा०	...	अभिनवभारती
३. अभिनव०	...	"
४. अ० सं०	...	अडयार-सस्करण
५. आ०	...	आचार्य्य
६. क० टी०	..	सगीतरत्नाकर की कल्लिनाथ-कृत टीका
७. कल्लि०	...	"
८ का० प्र०	...	काव्यप्रकाश
९ का० प्र० टी०	...	काव्यप्रकाश की वामनकृत टीका
१० कारि०	...	कारिका
११. का० स०	.	काशी-सस्करण
१२. गा० स०	..	गायकवाड सीरीज-सस्करण
१३ ताला०	...	तालाध्याय
१४. तैत्ति० प्राति०	..	तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
१५ द्वि०	..	द्वितीय
१६. ध्व०	.	ध्वन्यालोक
१७. नान्य०	...	नान्यदेव
१८. ना० शा०	...	भरतनाट्यशास्त्र
१९. पण्डित०	..	पण्डितमण्डली
२०. परि०	...	परिच्छेद
२१. प्रकी०, प्रकीर्णका०	...	प्रकीर्णकाध्याय
२२. प्रव०	...	प्रवन्धाध्याय
२३. ब० सं०	...	बम्बई-संस्करण

२४. भ० को०	. .	भरत-कोश
२५ भ० ना० शा०, भरत०	..	भरत-नाट्य-शास्त्र
२६. म० यु० सं०	.	मद्रास-युनिवर्सिटी-संस्करण
२७. मोक्ष०	...	मोक्षदेव
२८. रत्नाकर	..	सङ्गीत-रत्नाकर
२९. राग०, रागा०	. .	रागविवेकाध्याय
३०. वाद्या०	. .	वाद्याध्याय
३१. वृ०	.	वृत्ति
३२. शार्ङ्ग०	..	शार्ङ्गदेव
३३. श्लो०	. .	श्लोक
३४. सं०	...	संस्करण
३५. सं० र०	..	सङ्गीत-रत्नाकर
३६. सं० र० टी०	. .	सङ्गीत-रत्नाकर-टीका
३७. सा० द०	..	साहित्य-दर्पण
३८. सिह०	...	सिहभूपाल
३९. स्व०, स्वरा०	...	स्वराध्याय

विस्तृत विषय-सूची

अनुबन्ध (३)

अनुबन्ध (४)

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ नाट्यशास्त्र के उपलब्ध सस्करणो के अनुसार महर्षि भरत की आतोद्य-विधि के अन्तर्गत स्वरविधि को स्पष्ट करने की चेष्टा है।

नाट्यशास्त्र मे कहा गया है कि भावी युग मे मनुष्य प्राय: अबुध होगे, जो होगे भी वे अल्पश्रुत-बुद्धि होगे।* अल्पश्रुत-बुद्धि होते हुए भी आप्त वाक्यो के प्रति अविचल निष्ठा, उनके मनन के लिए सतत धैर्य, भगवान् शकर की कृपा एवं सद्गुरुओ के वरद हस्त की छत्रच्छाया के प्रताप से नाट्यशास्त्र की स्वरविधि का मन्थन करके यह नवनीत सहृदयों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. अनुसन्धान की प्रेरणा

लेखक के वंश की चार पीढ़ियाँ रामपुर (भूतपूर्व राज्य) मे बीती है, उसके विद्वान् पूर्वजो ने वहाँ की राजसभा को सम्मानपूर्वक सुशोभित किया, फलत. उसमे शास्त्रानुशीलन के सस्कार आनुवशिक रहे है। देशी राज्यो के राजपडित गुणी एवं गुणग्राही होते थे और उन्हे बहुश्रुत होना पड़ता था, फलतः सङ्गीतसम्बन्धी सस्कारो के लिए लेखक को इधर-उधर नही भटकना पडा।

ऐसे सद्गुरुओ के चरणो मे बैठकर स्वरसाधना करने का अवसर इस अकिञ्चन को प्राप्त हुआ है, जिनके प्रति उन चुने हुए सङ्गीतज्ञो की अपार श्रद्धा आज तक है, जिन्हे गायक या वादक होने के कारण स्वतन्त्र भारत के शासन ने बडे से बड़ा सम्मान दिया है।

रामपुर-दरबार मे गायक स्वर्गीय मिरजा नवाबहुसेन सैयद थे। सङ्गीतजीवी जाति मे उत्पन्न होने के कारण उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था। जीवन के अन्तिम क्षणो मे उन्होने अपने प्रिय शिष्य, इस ग्रन्थ के लेखक से कहा था—"सङ्गीत का अभ्यास करो, शास्त्रो को समझो, उन पर श्रद्धा करो और उन ऋषि-मुनियो के अभिप्राय को

---

*भविष्यति युगे प्रायो भविष्यन्त्यबुधा नराः।
ये चापि हि भविष्यन्ति तेऽप्यल्पश्रुतबुद्धयः॥—नाट्यशास्त्र

समझो, जो निःस्पृह, नि.स्वार्थ और सत्यभाषी रहे है। हम शास्त्र नहीं जानते, परन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है कि ऋषियों के ग्रन्थों को समझने के लिए जितनी तपस्या की आवश्यकता है, वह बहुत दिनों से नही की गयी है। इसी रामपुर-दरबार मे 'पण्डित' कहलानेवाले ऐसे लोग भी कभी-कभी आये हैं, जिन्होंने भरत और शार्ङ्गदेव-जैसी महाविभूतियो को श्रद्धा की दृष्टि से देखने की आवश्यकता नही समझी, उनके ग्रन्थो को अस्पष्ट कहा है, उनको उपहासपूर्ण दृष्टि से देखा है। इतना ही नही, उनके प्रति उन्होने ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है, जिन्हे सुनकर हमें कष्ट होता रहा है। तुम्हारे पूर्वज विद्वान् एव सङ्गीतमर्मज्ञ रहे है, तुम उनके वंशधर हो, यदि तुम प्राचीन ग्रन्थों को समझने के लिए तपस्या नही करोगे, तो और कौन लोग करेंगे। विश्वास रखो, परिश्रम व्यर्थ नही जाता। हम न होंगे, परन्तु तुम्हारी सफलता पर हमारी आत्मा को शान्ति मिलेगी और वही हमारी गुरुदक्षिणा होगी। यदि नही करोगे, तो हमारे ऋणी रहोगे और हमारी आत्मा अशान्त रहेगी।"

स्वर एवं सज्जनता की मूर्ति वे गुरुवर आज इस लोक मे नही हैं, परन्तु उनकी सरल, सुन्दर, सौजन्यमय एव प्रेरक आकृति सदा लेखक के मानसपट पर अंकित रही है।

दूसरा प्रेरक व्यक्तित्व रामपुर राज्य के अनुपम ग्रन्थागार के विद्वान् एवं यशस्वी प्रबन्धक मौलाना इम्तियाज अली ख़ाँ अर्शी का रहा है, जिन्होने अपने इस अकिञ्चन मित्र से सदा कहा—"भाईजान, आप बिरहमन (ब्राह्मण) है, आप लोगो को न जाने क्या-क्या विरसे (दाय) में मिला है, आपने संस्कृत पढ़ी है, जो देवताओ की जुबान (भाषा) कही जाती है। देवताओं की जुबान गैरमुकम्मल (अपूर्ण) या गैरवाजअ (अस्पष्ट) नही हो सकती। हम तो यह मान नही सकते कि ऋषि-मुनियो को अपनी बात कहना नही आता था, या उनको जुबान (भाषा) पर उबूर (अधिकार) नहीं था। हुजूर, जरा जहमत (कष्ट) कीजिए, बड़े कामों के लिए बड़ी रियाजत (तपस्या) चाहिए, तब कही बुजुर्गो (पूर्वपुरुषो) की दौलत मिलेगी। राह मुश्किल है, दिक़्क़तें भी है, लेकिन यह भी तो देखिए कि मगरिबी (पाश्चात्य) दिमाग आपके बुजुर्गो को क्या कह रहे हैं। आप उन बुजुर्गो के मफहूम (तात्पर्य) को जब तक समझाने मे कामयाब (कृतकार्य) नही होते, तब तक आपके कुसूर की सजा उन बुजुर्गो को मिलती रहेगी, जो बेकुसूर है। उनकी रूहो (आत्माओ) को चैन तो तब मिलेगा, जब आप खुद को उनका सही जानशीन (स्थानापन्न या उत्तराधिकारी) साबित करेंगे। आज लोग आपके बुजुर्गो के क़ौलो (उक्तियों) को ढोंग कह रहे है। अपने बारे मे तो आप जाने, शर्म मुझे आ रही है।"

बन्धुवर अर्शी महोदय की मर्मवेधी, परन्तु स्नेहपूर्ण ऐसी उक्तियाँ सचमुच इस ब्राह्मण-सन्तान को सदा प्रेरणा देती रही है।

२. अनुसन्धान-सम्बन्धी मूल समस्याएँ और निष्कर्ष

आज का अनुसन्धानकर्ता जब तेरहवी शती या उससे पूर्व के ग्रन्थो पर दृष्टिपात करता है, तब उसके समक्ष कुछ विशेष प्रश्न आते है, जिनमे से कुछ निम्नलिखित है—

(क) आज षड्ज एवं पञ्चम अचल स्वर माने जाते है, जब कि प्राचीन ग्रन्थो मे ऋषभ और धैवत अपने स्थान से च्युत नही होते।

(ख) आज स्थूल रूप मे ऋषभ और धैवत के दो-दो प्रकार है, जिनका कारण स्थान-विच्युति है, इस प्रकार का कोई भेद इन नामो से सम्बद्ध प्राचीन ध्वनियों का नही।

(ग) आज मध्यम के दो स्थूल रूप है, जिनमे तीव्रमध्यम मध्यम के उत्कर्ष का परिणाम है, परन्तु प्राचीन ग्रन्थो मे मध्यम के उत्कर्ष की बात कही नही बतायी गयी है।

(घ) आज उत्तर भारत के शुद्ध ऋषभ और पञ्चम मे षड्ज-मध्यम-संवाद है, परन्तु प्राचीन षाड्जग्रामिक ऋषभ-पञ्चम में संवाद नही।

(ङ) आज दक्षिण भारत के मध्यम और शुद्धनिषाद (उत्तर भारतीय तीव्र धैवत) मे षड्ज-मध्यम-भाव नही, जब कि प्राचीन ग्रन्थो का निषाद मध्यम से नौ श्रुतियो के अन्तर पर होने के कारण उसका संवादी था। कल्लिनाथ जैसे पन्द्रहवी शती ई० के ग्रन्थकार भी मध्यम-निषाद के पारस्परिक संवाद को प्रत्यक्ष मानते है।[१]

(च) उत्तर भारतीय सरस्वती वीणा पर स्थित कोमल 'ग-नि' तथा तीव्र 'रे-ध' मे परस्पर संवाद नही है, जब कि इन संज्ञाओ से सम्बद्ध प्राचीन ध्वनियो में परस्पर संवाद अवश्यम्भावी था।

(छ) उत्तर भारतीय सरस्वती वीणा पर स्थित 'ग-प' मे आज षड्जान्तर-भाव (षड्ज एव तीव्र गान्धार का अन्तर) विद्यमान है, जब प्राचीन 'ग-प' मे आठ श्रुतियो का अन्तर होने के कारण षड्जान्तर-भाव सम्भव नही।

(ज) मध्यम के साथ षड्जमध्यम-भाव से संवाद करनेवाले निषाद की स्थिति उत्तर भारतीय वीणा मे है, परन्तु उसके साथ मेल-पद्धति के शुद्ध (अर्थात् उत्तर भारतीय कोमल ऋषभ) का षड्जान्तर-भाव नही है, जब कि प्राचीनों के 'नि-रे' में सात श्रुतियो का अन्तर होने के कारण षड्जान्तर-भाव अनिवार्य है।

१—शुद्धयोर्मध्यमनिषादयोः परस्परं संवादित्वदर्शनात्।
—आचार्य कल्लिनाथ, सं० र० अ०, स्वरा०, पृ० ९२

(झ) मध्यम एवं उत्तर भारतीय आधुनिक ठाठ-पद्धति के तीव्र धैवत में षड्-जान्तर-भाव नहीं है, जब कि प्राचीनो के मध्यम-धैवत मे सात श्रुतियों का अन्तर होने के कारण षड्जान्तर-भाव अनिवार्य है।

(ञ) मध्यम एव मेल-पद्धति के शुद्ध (उत्तर भारतीय कोमल) धैवत में भी षड्जान्तर-भाव नही है, जब कि मध्यम एव उत्तर भारतीय सरस्वती वीणा के धैवत में षड्जान्तर-भाव है, जो कि प्राचीनो के अनुसार होना चाहिए।

फलत. विचारशील मस्तिष्क इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'म-ध़' मे षड्जान्तर भाव न होने के कारण 'ध़' प्राचीन धैवत नही, फलत. 'ध़' का सवादी 'ऱे' प्राचीन ऋषभ नही और 'ऱे' का सवादी 'मं' मध्यमग्रामीय त्रिश्रुतिक पञ्चम नही। मध्यम का संवादी न होने के कारण मेल-पद्धति का शुद्ध निषाद (उत्तर भारतीय तीव्र धैवत) प्राचीन निषाद नही और उसका सवादी मेल-पद्धति का शुद्ध गान्धार (अर्थात् उत्तर भारतीय ठाठ-पद्धति का तीव्र ऋषभ) प्राचीन गान्धार नही।

अतः यह अखण्डनीय रूप में प्रमाणित होता है कि दाक्षिणात्यो के शुद्ध (!) रे, ग, ध, नि प्राचीन रे, ग, ध, नि नही है, फलत. "स, ऱे, रे, म, प, ध़, ध" प्राचीन षाड्जग्रामिक सप्तक नही।

उत्तर भारतीय सरस्वती वीणा के तीव्र ऋषभ के साथ पञ्चम का संवाद है, फलतः तीव्र ऋषभ प्राचीन ऋषभ नही और इस वीणा के कोमल गान्धार-पञ्चम मे षड्जान्तर-भाव है, अतः यह कोमल गान्धार प्राचीन गान्धार नही।

इस दृष्टि से विचार करने पर उत्तर भारतीय सरस्वती वीणा पर प्राप्त होनेवाले काफी ठाठ के ऋषभ और गान्धार प्राचीन षाड्जग्रामिक सप्तक के 'ऋषभ-गान्धार' से भिन्न है। फलतः सिद्ध है कि आधुनिक काफी ठाठ भी प्राचीन षाड्जग्रामिक सप्तक नही।

विलावल ठाठ में मध्यम-निषाद का सवाद नही, ऋषभ-पञ्चम मे सवाद है, अत. वह भी प्राचीन षाड्जग्रामिक सप्तक नही।

ऐसी दशा मे उत्तर एवं दक्षिण की प्रचलित मान्यताओ से सर्वथा मुक्त होकर विचार करना ही अनुसन्धानकर्ता के लिए एकमात्र मार्ग रह जाता है।

३. प्राचीन सङ्गीतशास्त्र की दुर्बोधता एवं उसके कारण

शास्त्र मे जो वात न कही गयी हो, परन्तु शास्त्र से जिसका अविरोध हो, शास्त्र जिसकी अभ्यनुज्ञा देता हो अर्थात् जो दूसरे शब्दो मे शास्त्र का निष्कर्ष हो, गुरु-शिष्य-परम्परा से उसका उपदेश दिया जाना 'सम्प्रदाय' कहलाता है। जो जिस वात को

भली-भाँति जानता है, वह उसे तत्त्वपूर्वक कहता है, मर्मज्ञ व्यक्ति की वह तत्त्वपूर्ण उक्ति लोकजयी विष्णु के द्वारा सम्प्रदाय कही गयी है।[१]

रहस्यगर्भ 'सूत्र' अधिकारी व्यक्तियो के लिए ही बोधगम्य होते है। तत्त्वज्ञ व्यक्ति उस रहस्य को ऐसे शब्दो मे स्पष्ट करते है, जिनके द्वारा अल्पज्ञ व्यक्ति भी शास्त्र के तत्त्व से अवगत हो जाते है। आचार्य की आवश्यकता इसी लिए होती है। जब किसी क्षेत्र में सम्प्रदाय अथवा गुरु-शिष्य-परम्परा पर आश्रित शिक्षा-पद्धति का लोप हो जाता है, तब शास्त्रो के रहस्य दुर्ग्रह हो जाते है।

दशम शती ई० के अन्तिम दशक मे महमूद गजनवी के आक्रमणो का आरम्भ हो गया था। मन्दिरो का विध्वस तथा बलात् धर्म-परिवर्तन भी उसकी योजना के अनिवार्य अङ्ग थे, फलत जहाँ-जहाँ उसके चरण पडे, वहाँ विद्वानों का अभाव होता गया। अलबरूनी ने यह स्वय कहा है कि 'हिन्दू विद्याएँ वहाँ चली गयी जहाँ हमारी पहुँच नही थी।'

१०१३ ई० मे कश्मीर की ओर भी महमूद का ध्यान गया और १०१५ ई० मे उसने कश्मीर का विनाश पूर्णतया कर डाला। पण्डित हो या मूर्ख, गुणी हो या गँवार, सबको अपने लिए इस्लाम एव मृत्यु मे से एक को चुनना था। फलतः कश्मीर-जैसा विद्या-केन्द्र भी हिन्दू विद्याओ से शून्य हो गया। इस दयनीय स्थिति से परिचित होने के लिए फिरिश्ता और बदायूनी के इतिहास पढ़ने चाहिए।

यह तथ्य विशेषतया ध्यान देने योग्य है कि अलबरूनी ने हिन्दुओ के तत्कालीन धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, भूगोल, खगोल, फलित-ज्योतिष, रीति-नीति इत्यादि का वर्णन तो अपने ज्ञान के अनुसार किया है, परन्तु सङ्गीत के विषय मे वह मौन का आश्रय लिये हुए है। इस्लाम की दृष्टि में त्याज्य ज्योतिष विद्या अलबरूनी की आजीविका का साधन थी, फलत. सङ्गीत को त्याज्य समझकर उसने छोडा नही। सत्य यह है कि अलबरूनी जहाँ-जहाँ पहुँचा, वहाँ-वहाँ उसे सङ्गीत के विद्वानों का दर्शन न हुआ।

१०१८ ई० मे महमूद ने कन्नौज एव मथुरा का विनाश किया तथा १०२४ ई० मे सोमनाथ का मन्दिर लूटा। फलत विद्याओ को दक्षिण मे आश्रय ढूंढ़ना पड़ा।

---

१. शास्त्रानुक्तस्यापि शास्त्रेणाभ्यनुज्ञातस्य शास्त्राविरोधिनोऽर्थविशेषस्य आचार्यशिष्यपरंपरया यदुपदेशप्रदानं स संप्रदाय इत्येतल्लक्षणलक्षितत्वात्। तथा चोक्तम्—

यो यत्सम्यग्विजानीते स तद्वदति तत्त्वतः।
स सम्प्रदायः कथितो विष्णुना लोकजिष्णुना॥

—कल्लिनाथ, सङ्गीतरत्नाकर, (अडयार संस्करण) भाग ४, पृ० २९।

ग्यारहवीं शती ई० में धारानरेश भोज (९९७-१०१२ ई०) तथा मिथिलानरेश नान्यदेव (१०८० ई०) ने सङ्गीत-ग्रन्थों की रचना की, परन्तु उस समय की राजनीतिक स्थिति इन ग्रन्थों के सार्वदेशिक प्रचार के अनुकूल न थी।

बारहवीं शती ई० मे त्रिभुवनमल्ल (१०७६-११२६ ई०), सोमेश्वर (११२७-११३४ ई०), जगदेकमल्ल (११३४-११४५), शारदातनय, हरिपाल (११७५ ई०) और सोमराजदेव (११८० ई०) ने सङ्गीत-ग्रन्थ लिखे, परन्तु उत्तर भारत मे मुहम्मद गोरी के द्वारा पृथ्वीराज की पराजय बारहवीं शती के अन्त की ऐसी घटना थी, जिसके परिणामस्वरूप एक बार भारत फिर हिल गया।

'सङ्गीत-रत्नाकर' की रचना जिस समय (प्राय. १२३० ई०) हुई, उस समय दक्षिण मे कुछ शान्ति थी, फलतः कश्मीरी परम्परा के एक विद्वान् शार्ङ्गदेव ने अपने आनुवंशिक ज्ञान के आधार पर इस अमर ग्रन्थ की रचना की। रत्नाकर के टीकाकार महाराज सिंहभूपाल ने लिखा है कि 'शार्ङ्गदेव के उदय से पूर्व समस्त सङ्गीत-पद्धति बिखर चुकी थी, शार्ङ्गदेव ने उसे स्पष्ट रूप मे एकत्र सँजोकर रख दिया।'

दैवदुर्विपाक से १२९४ ई० में अलाउद्दीन की शनि-दृष्टि दक्षिण पर पडी और देवगिरि के उस राज-वंश पर भी विपत्ति आयी, जो शार्ङ्गदेव जैसे विद्वानो का आश्रयदाता रहा था। मलिक काफूर ने अलाउद्दीन के पास भेजने के लिए अनेक विद्वानो को धर्मभ्रष्ट किया। अनेक सङ्गीतज्ञ इस समय दक्षिण से बलात् उत्तर भेजे गये।

अलाउद्दीन के दरबार में उस समय 'अमीर खुसरो' जैसे प्रतिभाशाली एवं कूटनीतिज्ञ व्यक्ति थे। दिल्ली की ओर उस समय जो भी सङ्गीतजीवी कलाकार प्राप्त थे, वे आनुवंशिक रूढियों का पालन मात्र कर रहे थे, अपनी कला के सैद्धान्तिक विवेचन की शक्ति सम्प्रदाय-लोप के कारण उनमें न थी। अमीर खुसरो को ईरानी सङ्गीत का अच्छा ज्ञान था और वह दिल्ली के आसपास उपलब्ध सङ्गीतज्ञों से ईरानी सङ्गीत-शास्त्रियों का विवाद कराता था। भारतीय सङ्गीतशास्त्र के सैद्धान्तिक पक्ष को समझने के लिए ही सम्भवत. अमीर खुसरो की प्रेरणा से अलाउद्दीन ने दाक्षिणात्य सङ्गीतशास्त्रियो को पकड़वा मँगाया था।

बलात् पकडे हुए व्यक्ति भला क्या शास्त्रो का रहस्य बतलाते। प्रसिद्ध दाक्षिणात्य सङ्गीतशास्त्री श्री वासुदेव शास्त्री का कथन है कि अनेक विद्वानो ने अपने ग्रन्थ स्वयं नष्ट कर दिये और अनेक व्यक्ति अपना धर्म बचाने के लिए 'बौरे' बन गये।

अमीर खुसरो के समय तक भारतीय सङ्गीत पर ईरानी दृष्टिकोण से विचार

किया जाने लगा था। दिल्ली एवं आस-पास प्रचलित भारतीय रागो का वर्गीकरण सम्भवतः ईरानी दृष्टि से होने लग गया था।

ईरानी सङ्गीत में मुख्य स्वर बारह थे, तत-वाद्यो पर इन्हें अभिव्यक्त करनेवाली बारह सारिकाएँ मुसलमानी भाषा में 'पर्दा' कहलाती थीं। सितार की सारिकाओं को 'पर्दा' कहा जाना मुस्लिम परम्परा है, हारमोनियम की पटरियों को भी इसी प्रभाव के कारण 'पर्दा' कहा जाता है।

ये पर्दे ईरानी वाद्यों में अचल होते थे और इनसे उद्भूत स्वरों की स्वतन्त्र संज्ञाएँ थीं, फलतः ईरानी प्रभाव से भारतीय वीणाओं में सारिकाएँ अचल हुईं। ईरानी पर्दों के आधार पर 'बारह मुकाम' सिद्ध होते थे। भारतीय भाषाओ में ये 'मुक़ाम' लोचन-जैसे पण्डितों के द्वारा 'सस्थान' कहलाये और उत्तर भारतीय तन्त्रीवादकों ने इन्हें 'ठाठ' कहा।

'ठाठो' ने एक सुविधा यह दी थी कि पर्दे सरकाये विना प्रायः सभी रागो का वादन हो जाता था। सूक्ष्मतम ध्वनियो को 'मीड' से प्राप्त कर लिया जाता था।

उस युग के गायको के मस्तिष्क मे रागो का स्वरूप था, संस्कारो के कारण वे उन रागो का प्रयोग करते थे, परन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्हे मूर्च्छना-पद्धति तथा उसके साथ अनिवार्यरूपेण सम्पृक्त सङ्गीतसम्बन्धी रस-सिद्धान्त का या तो परिचय न था, या फिर वे उसे गुप्त रखना चाहते थे।

अस्तु, इन बारह पर्दों के परिणामस्वरूप 'कोमल ऋषभ' एवं 'कोमल धैवत' जैसी स्वरसज्ञाओ की सृष्टि हुई और उस मूर्च्छना-पद्धति पर 'पर्दा' पड़ गया, जो भारतीय सङ्गीत-ग्रन्थो की कुञ्जी थी। भारतीय सङ्गीत की कुञ्जी 'स्थायी स्वर' से लोगो का अपरिचय हो गया और वह कुछ मर्मज्ञो के हृदयो मे सुरक्षित एक 'रहस्य' हो गयी।

ईरानी सङ्गीत में एक सप्तक के अन्तर्गत सूक्ष्मतम ध्वनियाँ चौवीस थीं, जो 'हङ्गाम' कहलाती थी, इन्हे ईरानी सङ्गीत की चौवीस श्रुतियाँ कहा जा सकता है, परन्तु एक सप्तक मे इन चौवीस ध्वनियो की स्थापना चौवीस पर्दो पर किया जाना सुविधापूर्ण नही था, फलत बारह पर्दो का ईरानी अचल ठाठ उत्तर भारतीय सरस्वती वीणा पर स्थापित हो गया।

ईरानी दृष्टिकोण के अनुसार इन वारह पर्दो से उद्भूत होनेवाली ध्वनियाँ अपने आपमे स्वतन्त्र ध्वनियाँ थी, उनकी अलग-अलग संज्ञाएँ थी, परन्तु भारतीय कलाकार तो अपनी सात स्वरसंज्ञाओं से परिचित थे, फलतः अवशिष्ट पाँच ध्वनियों को उन्होने

विकृत ध्वनि मानकर एक स्थान के अन्तर्गत बारह ध्वनियों के लिए क्रमशः 'स, रे, रे, ग, ग, म, म, प, ध, ध, नि नि' नाम स्वीकृत किये।

गोपाल नायक ने लिखा है कि यवनों ने—

(१) वीणाओ की सारिकाएँ अचल की।

(२) षड्जमध्यम-भाव की प्रधानता नष्ट हुई, षड्ज-पञ्चम-भाव स्थापित हुआ।

(३) ऋषि-प्रणीत सरल मूर्च्छना-पद्धति लुप्त हुई।

(४) शुद्ध-अशुद्ध का झगडा चला। एक राग की दो 'सरगम' हो गयी, एक 'प्रकट' और एक 'गुप्त'।

(५) 'स रे ग म प ध नि' 'प ध नि स रे ग म' हो गये।

बैजू ने गोपाल से कहा—

"तूने विद्या दी नहीं, छिना दी। शत्रुओ पर नागपाश डाल। इन्हे श्रुति, स्वर, मूर्च्छना, गमक इत्यादि का रहस्य न बतला। कोई गुणी इस जाति में जन्म लेगा, तो यह भेद खुलेगा।"

ठाठ के प्रताप से प्रत्येक मूर्च्छना के सात स्वरो को 'स, रे, ग, म, प, ध, नि' कहा जाने लगा। अर्थात् किसी भी स्वर को प्राप्त होनेवाली अवस्था 'अंशत्व' एव 'स्थायित्व' 'षड्जत्व' में परिवर्तित हो गयी।

इस एक भयानक परिवर्तन से तेरहवी शती ई० तथा उससे पूर्व लिखे हुए ग्रन्थ दुर्बोध हो गये। भरत के काल से शार्ङ्गदेव के काल तक चले आये षाड्जग्रामिक एवं माध्यमग्रामिक शुद्ध सप्तकों की पहचान लुप्त हो गयी। सन् १३३६ ई० में विजय-नगर राज्य की आधार-शिला रखी गयी। उस राज्य के सस्थापक एवं महामन्त्री श्री माधवाचार्य (विद्यारण्य) ने अनेक शास्त्रो के साथ ही साथ सङ्गीत के पुनरुद्धार का भी कार्य करना चाहा। उस समय विजयनगर मे समस्त देश के पण्डित, कलाकार एव गुणी आने लगे। श्री विद्यारण्य ने उस समय की 'अचल ठाठ' वाली वीणा के आधार पर पचास प्राप्त रागो को पन्द्रह ठाठो मे वर्गीकृत किया और 'ठाठ' के लिए मेल शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग माधवाचार्य के द्वारा हुआ।

श्री माधवाचार्य के द्वारा स्थापित मेलो मे 'हेजुज्जी' नामक एक मेल भी है, जो ईरानियो के मुकाम 'हिजाज' से अप्रभावित नही कहा जा सकता। दाक्षिणात्य ग्रन्थो मे 'गजल' 'गज़लु.' और 'कौल' 'कौलु.' हो गया है, इसी प्रकार 'हिजाज' भी 'हेजुज्जी' हुआ है।

श्री माधवाचार्य के अनुयायी रघुनाथ को इसी मेलचक्र मे पडने के कारण शार्ङ्गदेव की सप्ताध्यायी (रत्नाकर) अस्पष्ट एवं अबोध्य दिखाई दी है। रघुनाथ को पाड्जी की वह धैवतादि मूर्च्छना 'उत्तरायता मेल' दिखाई दी है, जो वस्तुत: मतङ्ग की 'द्वादश-स्वर उत्तरमन्द्रा' है।

श्री वासुदेव शास्त्री ने स्पष्टरूपेण माना है कि तेरहवी शती तथा उससे पूर्व के सङ्गीत-ग्रन्थ पन्द्रहवी शती तथा उससे पश्चात् के दाक्षिणात्य ग्रन्थकारो के लिए सर्वथा दुर्बोध रहे और वे उन्हे नही समझे। परन्तु वासुदेव शास्त्री 'मेलवाद' को दक्षिण की मौलिकता मानते है, जब कि सचमुच वह ईरानी प्रभाव है। सग्रहचूडामणिकर्ता गोविन्द ने दाक्षिणात्य सरस्वती वीणा को वर्तमान रूप दिया है, जिसमे ध्वनित होनेवाली चौबीस श्रुतियाँ ईरानियो के 'चौबीस' हङ्गाम ही है।

जिन बारह स्वरो के आधार पर वेङ्कटमखी ने अपने बहत्तर मेलकर्त्ताओं की योजना की है, उनका आधार पूर्वोक्त पर्दे ही है।

प्रो० रामकृष्ण कवि-जैसे दाक्षिणात्य विद्वान् भी मानते है—"आजकल के गायकों ने....विदेशी गान-शैली की छाया का भी अवलम्बन करके अनेक रागो का प्रवर्तन सम्प्रदाय मे किया। उनका कारण यह है कि नारद, भरत, मतङ्ग इत्यादि की परम्परा मे तीनो स्थानो की समस्त श्रुतियो का वादन करने योग्य वीणा को लेकर प्रत्येक राग के अनुसार (पृथक्-पृथक्) सारिकाओ से प्रत्येक श्रुति-स्थान की स्थापना करके कोण या नख के द्वारा विविध ठाठो से युक्त राग बरते जाते थे। कहा जाता है कि भरत 'मत्तकोकिला', स्वाति 'विपञ्ची', नारद 'महती' और मतङ्ग 'चित्रा' का वादन करते थे। मतङ्ग इत्यादि ने सम्प्रदाय मे किन्नरी नामक वीणा का वादन प्रचलित किया। तदनन्तर चिरकाल तक किन्नरीवादन ही मुख्यतया होता रहा।

शार्ङ्गदेव की अपेक्षा अर्वाचीन लोगो ने 'शुद्धमेला' एव 'मध्यममेला' नामक उन वीणाओ का निर्माण करके सम्प्रदाय मे प्रयोग किया, जिनमे सारिकाएँ नियत स्थान में स्थित थी।

सोलहवी शती ई० के मध्यकाल मे हनुमन्मत पर आश्रित सम्प्रदाय-प्रवर्तित रागो के वादन-सौकर्य के लिए उन-उन रागो मे प्रयोज्य श्रुतियो के स्थान मे अचल सारि-काओं का निर्माण करके स्वरो के अनुमन्द्र, मन्द्र, मध्य, तार एव तारोत्तर स्थानो का निश्चय करने के पश्चात् बुधो ने अनेक प्रकार की वीणाओ का प्रचलन किया। उसी समय अनुभवसिद्ध रागो के श्रुतिभेद का आश्रय लेकर समानस्वरश्रुतिक राग एक मेल मे रखकर सब प्रवर्तक रागो को नियत मेलो मे विभाजित कर दिया गया।....

वेंकटमखी से प्रायः सौ वर्ष पश्चात् इस समय प्रयोज्य (दक्षिण भारतीय सरस्वती) वीणा का निर्माण हुआ।

मेल-ज्ञान होने पर प्रत्येक राग के श्रुति स्वर स्थान का नियम साधारण वादकों के लिए स्पष्टतर हो जाता है।

भरत इत्यादि महर्षियो के सम्प्रदाय में सिद्ध अष्टादश जाति नामक प्राचीन विभाग में तारमन्द्रव्यवस्था, षाडवौड्वभेद, स्वर का वहुत्व एवं अल्पत्व, ग्रह, अंश, न्यास, का विभाग; गायक के लिए सभी स्पष्ट हो जाते है। मेल-ज्ञान में वे अन्वेषणीय एवं विचारणीय ही होते है। जाति-विभाग में वीणा के चल-सारिकायुक्त होने के कारण वादकों के लिए श्रुतिस्वरज्ञान का निष्कर्ष आवश्यक होता है।"

४. प्रचलित संगीत-पद्धतियों में रस एवं भाव के प्रति उदासीनता

उत्तर भारतीय एवं दाक्षिणात्य दोनो ही पद्धतियों में स्वरविधि की जो शिक्षा प्रचलित है, उसमें रस और भाव के प्रति सर्वथा उदासीनता है। यह नही बताया जाता कि किस-किस स्वर के प्रयोग से किस-किस भाव की अभिव्यक्ति होती है, न इस सम्बन्ध में कुछ निर्देश है कि किस-किस रस मे किस-किस राग का विनियोग है। राग का मेल या ठाठ, स्वरों का रागव्यञ्जक सन्निवेश और प्रयोग का समय ही राग-शिक्षा को पूर्ण कर देता है। गायक किस राग के द्वारा किस भाव की अभिव्यक्ति और श्रोताओ के हृदय में किस भाव का उद्रेक कर सकता है, इस सम्बन्ध में आधुनिक ठाठवादी एवं उनके उपजीव्य मेलाचार्य सर्वथा मौन का अवलम्बन किये हुए है।

प्राचीनो के अनुसार गान्धार एवं निषाद करुणा के अभिव्यञ्जक है, परन्तु आज 'रे़' और 'ध़' से करुणा की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। प्राचीन सङ्गीत में 'रे़' एवं 'ध़' का नाम तक नही मिलता, अतः इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सङ्गीतप्रयोज्य प्रचलित ध्वनियों की स्वरसंज्ञाएँ किसी कारण से परिवर्तित हो गयी है।

उस परिवर्तन के कारणो की खोज करके प्राचीन एवं प्रचलित पद्धतियों में रस-सम्बन्धी सिद्धान्तों के सामञ्जस्य का दर्शन करना भी अनुसन्धानकर्ता का आवश्यक कर्तव्य हो जाता है।

अनुसन्धान के आधार—प्राचीन सम्प्रदाय

आचार्य अभिनवगुप्त (दशम शती ई०) के समय में यह समझा जाता था कि नाट्य-सम्बन्धी प्रमुख सम्प्रदाय तीन है, ब्रह्ममत, सदाशिव-मत एवं भरत-मत। इन्हें

क्रमशः वैदिक परम्परा, आगम-पुराण-परम्परा एवं आर्ष-परम्परा कहा जा सकता है। अभिनवगुप्तकालीन एक उपाध्याय का मत था कि भरत-नाट्यशास्त्र भरत मुनि की कृति नही है, अपितु पूर्वोक्त तीनो सम्प्रदायो की विशेपता पर विचार करके 'ब्रह्ममत' की ससारता का प्रतिपादन करने के लिए किसी ने नाट्यशास्त्र का संग्रह किया है और उसमे तीनो सम्प्रदायो के ग्रन्थों के खण्ड या अश विद्यमान है। अभिनवगुप्त ने इन उपाध्याय को 'नास्तिकधुर्य' (नास्तिकों में अग्रणी) कहा है।

इन तीनों सम्प्रदायो के ऐसे स्वतन्त्र ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है, जिनमे लौकिक सङ्गीत पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया हो।

उपलब्ध नाट्यशास्त्र मे सामवेद से 'गीत' का ग्रहण करनेवाले भगवान् ब्रह्मा हैं। 'भरत' ब्रह्मा के शिष्य है। गानयोग मे 'नारद' तथा भाण्डवाद्यो में 'स्वाति' का नियोजन करनेवाले भी ब्रह्मा ही है। अप्सराओ की सृष्टि भी उन्होंने ही की है और उन्ही को सन्तुष्ट करने के लिए भरत 'अमृत-मन्थन' नामक समवकार का प्रयोग करते है।

ब्रह्मा एक दिन देवताओ के सहित जाते है और भगवान् शकर की अभ्यर्थना करके उनके सम्मुख 'त्रिपुरदाह' का अभिनय हिमालय मे 'भरत' एव उनके शिष्यो द्वारा कराते है। शंकर प्रसन्न होते है और स्वरचित नृत्य का उपदेश 'तण्डु' के द्वारा भरत को दिलाते है। आचार्य अभिनवगुप्त ने 'तण्डु' और 'नन्दी' को एक ही व्यक्ति माना है।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र मे ब्रह्मा को प्रधानता प्राप्त है। नाट्यशास्त्र के प्रारम्भिक श्लोक मे ब्रह्मा और शंकर को क्रमश. प्रणाम किया गया है।

भावप्रकाशनकार शारदातनय ने नाट्यवेद का आदि कर्ता भगवान् शकर को कहा हैं। स्थावर-जङ्गम सृष्टि की रचना करने से थके हुए ब्रह्मा भगवान् विष्णु के पास विश्रान्ति का उपाय खोजने जाते है। भगवान् विष्णु उन्हे भगवान् शंकर के पास भेजते है। ब्रह्मा की थकान दूर करने के लिए भगवान् शकर स्वरचित नाट्यवेद की शिक्षा नन्दिकेश्वर के द्वारा ब्रह्मा को दिलाते है। नन्दिकेश्वर से नाट्यवेद पढकर ब्रह्मा लौटते और नाट्यवेद के प्रयोक्ता का स्मरण करते हैं। स्मरण करते ही पाँच शिष्यो से युक्त एक मुनि उपस्थित होते है। उन्हे देखकर ब्रह्मा कहते है—'नाट्यवेदं भरत' अर्थात् तुम लोग नाट्यवेद धारण करो। वे नाट्यवेद पढते है और उन सबका नाम 'भरत' पड़ जाता है।

शारदातनय की इस कथा का आधार सदाशिव-सम्प्रदाय का कोई ग्रन्थ रहा होगा, जिसमें ब्रह्मा की स्थिति नाट्य के आविष्कर्ता की न होकर, भगवान् शकर के शिष्यानुशिष्य की है।

नाट्यशास्त्र (काशी-सस्करण) ध्रुवाध्याय के अन्त में कहा गया है कि मैने वह 'गान्धर्व' कहा है, जिसका कथन पहले नारद ने किया है,* परन्तु निर्णयसागर-संस्करण मे यह श्लोक ध्रुवाध्याय के अन्त में न होकर गुणाध्याय (तैंतीसवे) अध्याय के अन्त मे है, वहाँ 'नारदेन' के स्थान पर 'प्रपितामहेन' पाठ है, जिसके अनुसार 'गान्धर्व' के आदिम वक्ता नारद न होकर 'प्रपितामह' (ब्रह्मा) है।+

अस्तु, नाट्यशास्त्र मे स्वरविधि की यह विशेषताएँ है—

(क) उदात्त, अनुदात्त, स्वरित-जैसी वैदिक स्वर-संज्ञाओ की चर्चा तक नही है।

(ख) स्वरो के कुल, वर्ण, द्वीप, ऋषि इत्यादि की कोई चर्चा नही है।

(ग) श्रुतियो के नाम तथा उनकी जातियाँ नही है।

(घ) 'स्थायी' स्वर एवं 'सचारी' स्वर की चर्चा है।

(ङ) स्वरों की भावव्यञ्जकता का निर्देश है।

(च) श्रुतियो के मध्यमत्व, आयतत्व, दीप्तत्व की चर्चा अलंकारविधि में है, परन्तु सख्या या क्रम के अनुसार विशिष्ट-विशिष्ट श्रुतियों को मध्यम, आयत, दीप्त नही बताया गया। वही आयतत्व विशेष स्वर का 'उत्कर्ष', मृदुत्व स्वरविशेष का 'अपकर्ष' और मध्यमत्व स्वरविशेष की 'स्वस्थान-स्थता' या 'विशुद्धता' है।

(छ) सात शुद्ध ग्रामरागों की चर्चा है और नाट्य में उनके प्रयोग के अवसर निर्दिष्ट है।

अत॰ इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत जो आतोद्य-विधि वर्णित है, उसका मूल भले ही वैदिक-परम्परा रही हो, परन्तु वह वैदिक एव पौराणिक मार्ग से पर्याप्त सीमा तक स्वतन्त्र 'सम्प्रदाय' है। इस आतोद्य-विधि मे पौराणिकता का सर्वथा अभाव है, इसी लिए उसमे आतोद्यविधि के अन्तर्गत कोई शब्द भी गान्धर्व के 'अदृष्ट' फल की ओर सङ्केत नही करता और उसका प्रधान प्रयोजन लोकरञ्जन है।

फलत॰ यह स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र की आतोद्यविधि, जिसके लिए 'गान्धर्व' और 'सङ्गीत' दोनो शब्दो का प्रयोग नाट्यशास्त्र मे है, लौकिक सङ्गीत पर विचार करती है। उसमे सङ्गीत के पश्चात्कालीन दो भेदो—मार्ग और देशी—की चर्चा तक नही है।

---

* गान्धर्वमेतत् कथित मया हि पूर्वं यदुक्त त्विह नारदेन।

\+ गान्धर्वमेतत्कथित मया च पूर्वं यदुक्त प्रपितामहेन।

नाट्यशास्त्र के आधार पर प्राचीन सङ्गीत को स्पष्ट करने का प्रयत्न करनेवाले अनुसन्धानकर्त्ता का क्षेत्र इसी लिए निश्चित हो जाता है।

५. भरत-सम्प्रदाय की नाट्यशास्त्रगत विशेषताएँ

(१) नाट्यशास्त्र के अनुसार एक स्थान में मूल ध्वनियाँ दस हैं। स्थूल दृष्टि को वे नौ प्रतीत होंगी, परन्तु विचार करने पर उनकी संख्या दस सिद्ध होती है, हाँ, उनकी संज्ञाएँ नौ है।

षाड्जग्रामिक स्वर ही माध्यमग्रामिक संज्ञाएँ ले लेते हैं, परन्तु उस अवस्था में षाड्जग्रामिक गान्धार मध्यमग्राम में उपयोगी नही होता और माध्यमग्रामिक काकली निषाद षड्जग्राम में अनुपयोगी होता है।

यदि किसी सारिका-वाद्य मे हम सारिकाएँ सरकाये विना षड्जग्राम एवं मध्यमग्राम की आदिम मूर्च्छनाओ के शुद्ध, अन्तर-गान्धार-सहित, काकली-सहित एवं साधारण, चारो रूप देखना चाहे, तो हमे उस पर दस पर्दे बाँधने पडेगे।

निम्नस्थ सारणी मे यह स्थिति स्पष्ट है—

षाड्जग्रामिक स्वरसंज्ञाएँ	सारिकाएँ	माध्यमग्रामिक स्वरसंज्ञाएँ
षड्ज——(मेरु) मुक्त तन्त्री		मुक्ततन्त्री (मेरु)— मध्यम
ऋषभ — — — — — — — १	——	— — — — — —त्रिश्रुतिक पञ्चम
गान्धार— — — — — — — २	——	— — — — — —O
अन्तर गान्धार— — — — ३	——	— — — — — —चतुःश्रुतिक धैवत
मध्यम — — — — — — — ४	——	— — — — — —निषाद
O — — — — — — — — ५	——	— — — — — —काकली निषाद
पञ्चम — — — — — — — ६	——	— — — — — —षड्ज
धैवत — — — — — — — ७	——	— — — — — —ऋषभ
निषाद — — — — — — — ८	——	— — — — — —गान्धार
काकली निषाद— — — — ९	——	— — — — — —अन्तर गान्धार
षड्ज — — — — — — — १०	——	— — — — — —पञ्चम

माध्यमग्रामिक काकली निषाद की सिद्धि के लिए पाँचवी सारिका है, जिसकी ध्वनि षाड्जग्रामिक षड्ज की अपेक्षा आधुनिक 'तीव्र मध्यम' होगी। दूसरी सारिका पर कोई माध्यमग्रामिक स्वर नहीं और पाँचवी सारिका पर कोई षाड्जग्रामिक स्वर नही है।

नाट्यशास्त्र (बम्बई-संस्करण) के तीसवें अध्याय में कहा गया है कि—"षड्ज एवं मध्यम (ग्राम) के गान्धार (अन्तर गान्धार) और निषाद (काकली निषाद) की कृति (स्थापना) मे तीन अन्तर स्वरो की सस्था (स्थिति) से स्वरसाधारण होता है।"* इस प्रकार अन्तर स्वर तीन है—१. षाड्जग्रामिक अन्तर गान्धार, (२) माध्यमग्रामिक काकली निषाद, (३) षाड्जग्रामिक काकली निषाद या माध्यमग्रामिक अन्तर गान्धार।

(२) नाट्यशास्त्र के अनुसार स्वरसाधारण के दो प्रकार है। पहला स्वर-साधारण दो श्रुतियो के उत्कर्ष से होता है, जिसके परिणामस्वरूप अन्तरगान्धार एवं काकलीनिषाद की सिद्धि होती है। दूसरा स्वरसाधारण प्रयोग की सूक्ष्मता का परि-णाम होता है, जिसे 'कैशिक' कहा गया है, जिसमें स्वर अपने स्थान से केशाग्र अन्तर उतरता या चढ़ता है, यह केशाग्र अन्तर ही 'प्रमाणश्रुति' है। इस स्वरसाधारण से उत्पन्न स्वरों की स्थिति निरपेक्ष नही होती, अपितु उनका उत्कृष्ट एव अपकृष्ट रूप विशिष्ट स्वरसन्निवेश अर्थात् स्वरप्रयोग के विशिष्ट क्रम का परिणाम होता है, इसलिए वे मूर्च्छनाओं के निर्माण मे कारण नही होते।

(३) षड्जग्राम में धैवत, मध्यम ग्राम मे पञ्चम एव मध्यम सर्वत्र अविलोपी रहता है।

(४) मूर्च्छनाओं से उत्पन्न तानें षट्स्वर एवं पञ्चस्वर होती है। सम्पूर्ण मूर्च्छनाएँ जातियों के सम्पूर्ण, षट्स्वर तानें षाडव और पञ्चस्वर तानें ओडुव रूपों का निर्माण करती है। देश-विशेष मे चतु.स्वर प्रयोग की ओर भी नाट्यशास्त्र में सकेत है।

(५) औडुवरूप मे जिन दो स्वरों का लोप होता है, वे परस्पर सवादी होते है।

(६) जातियाँ और उनमे विकार—

जातियो में विकार के कई कारण होते है, (१) अशस्वर मे परिवर्तन, (२) दो या अधिक जातियो का मिश्रण, (३) अन्य लक्षणो मे परिवर्तन।

'अश' स्वर मूर्च्छना का प्रारम्भिक स्वर है। वाद्यविधि मे इसी को 'स्थायी' स्वर कहा गया है, मृदङ्ग इत्यादि वाद्य इसी मे मिलाये जाते थे। आज यदि जाति-प्रयोग

---

* स्वरसाधारणं चापि त्र्यन्तरस्वरसस्थया।
निषादगान्धारकृतौ षड्जमध्यमयोरपि॥

किया जाय, तो सितार और वीणा की चिकारियाँ इसी मे मिलायी जायँगी । निरन्तर गूँजते रहने के कारण भी इसका नाम 'स्थायी' है । स्थायी भाव का प्रकाशन भी यही करता है । पाश्चात्यो के 'टोनिक' या 'की-नोट' शब्द इसी के पर्याय है ।

एक जाति का एक विशिष्ट 'वर्ण' (स्वरसन्निवेश, स्वरक्रम) जाति का रूप निश्चित करनेवाला स्वर-समुदाय होता है । अंश स्वर का परिवर्तन होने पर भी 'वर्ण' वही रहता है, केवल परिवर्तित 'अंश' या 'स्थायी' स्वर का प्रयोग बहुल हो जाता है ।

आज मेल-पद्धति एवं ठाठ-पद्धति मे प्रत्येक स्थायी स्वर को 'सा' कहा जाने लगा है।

दो या अधिक जातियो के सकर से संकीर्ण या मिश्र जातियो की उत्पत्ति होती है । ऐसी अवस्था मे भी वे षाड्जग्रामिक या माध्यमग्रामिक मानी जाती है । यदि ऐसी जातियो मे 'पञ्चम' लोप्य स्वर रहे तो वह षाड्जग्रामिक मानी जायँगी, क्योकि मध्यम ग्राम मे 'पञ्चम' अविलोपी होता है, यदि 'धैवत' लोप्य स्वर हो, तो वे माध्यमग्रामिक मानी जायँगी, क्योकि षड्ज ग्राम मे धैवत का लोप विहित नही । प्रयोज्य पञ्चम एव धैवत की त्रिश्रुतिकता एव चतु श्रुतिकता से भी ग्रामविशेष का बोध होता है ।

(७) राग—

शुद्धसाधारित, षड्जग्राम, मध्यमग्राम, षाडव, शुद्धकैशिक, शुद्धकैशिकमध्यम एव पञ्चम, ये सातो शुद्ध राग जातियो के विकार या संकर का परिणाम हैं । केवल 'षाडव' राग विकृत मध्यमा से उत्पन्न है, अवशिष्ट छहो राग संकीर्ण जातियो से उत्पन्न हुए है ।

इस प्रकार हम देखते है कि नाट्यशास्त्र मे सकीर्ण जातियाँ एव उनसे उत्पन्न राग है, परन्तु उन जातियो या रागो को किसी एक ग्राम से ही सम्बद्ध माना गया है। किसी जाति या राग को 'द्वैग्रामिक' नही कहा गया ।

(८) अन्तर स्वरो का प्रयोग जातियो मे केवल आरोह में विहित है ।

(९) एक ही जाति या राग में गान्धार या निषाद के दोनो रूपो का प्रयोग सम्भव नही ।

६ः उपलब्ध नाट्यशास्त्र

तत्त्वदर्शी महर्षि अपने चिन्तन के परिणामो को सूत्ररूप में कहते रहे है। 'सूत्र' अल्पाक्षरयुक्त, सन्देहरहित, सारगर्भ, व्यर्थशब्दहीन, व्यापक एवं अनिन्द्यार्थबोधक होते है ।

सूत्र के समस्त सार भाग का विवरण करनेवाली व्याख्या 'वृत्ति', वृत्ति की विवेचना 'पद्धति', शंकाएँ उठाकर उनका समाधान किया जाना 'भाष्य', भाष्य के अवान्तर अर्थो का स्पष्टीकरण 'समीक्षा', यथासम्भव सरल अर्थों का सकेत 'टीका', कठिन भाग का सरल शब्दो में स्पष्टीकरण 'पञ्जिका', सूत्र के अर्थ का प्रदर्शन मात्र 'कारिका' तथा उक्त, दुरुक्त एवं अनुक्त अर्थो का विवेचन 'वार्तिक' कहलाता है।

भारतीय सिद्धान्त इसी प्रकार प्रौढ शास्त्रो के रूप में विकसित होते रहे है। नाटचशास्त्र एवं सङ्गीतशास्त्र के विकास का भी यही क्रम रहा है। आज इन दोनो विपयो के मूलसूत्र अप्राप्य है।

यदि आज कोई व्यक्ति 'शाङ्करदर्शन' पर एक ग्रन्थ लिखे, तो उसमे प्रतिपादित सिद्धान्त तो शकराचार्य के होगे, परन्तु उस कृति को विशिष्ट रूप स्वय लेखक द्वारा प्राप्त होगा।

भारत के गौरवपूर्ण अतीत मे अनेक प्रसिद्धिपराङमुख आचार्य ऐसे हुए है, जिन्होंने प्राचीन मनीपियो के सिद्धान्तो की व्याख्या अत्यन्त सुन्दर रूप में की और अपने यश की चिन्ता न की। अनेक व्याख्याएँ उपलब्ध है, परन्तु उनके कर्ताओ का पता नही।

कारिकाओ, वृत्तियो, व्याख्याओ एव भाष्यो के कारण जब किसी शास्त्र का विस्तार अधिक हो जाता है, तव तत्त्वदर्शी मनीषी लोक पर अनुग्रह करके उस शास्त्र का संक्षेप कर देते हैं। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ऐसे अनेक ग्रन्थ विद्यमान है, जिनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों के मूलतः उद्भावक महापुरुष उन ग्रन्थों की रचना से कही पूर्व सुदूर अतीत में हुए है।

ऐसी स्थिति में 'सक्षेप-ग्रन्थों' की भाषा इत्यादि के आधार पर उन महाविभूतियो के अस्तित्व-काल का निश्चय किया जाना उचित नही, जिनके सिद्धान्तो का प्रतिपादन इन ग्रन्थो मे है।

लौकिक सङ्गीत पर विचार करनेवाला उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ 'नाटचशास्त्र' है। भावप्रकाशनकार शारदातनय ने लिखा है कि नाटच-सम्बन्धी विस्तृत सिद्धान्तो के दो संग्रह, 'द्वादशसाहस्री' एव 'षट्साहस्री', किये गये।

द्वादशसाहस्री आज अनुपलब्ध है और षट्साहस्री का ही एक रूप उपलब्ध 'नाटचशास्त्र' है।

षट्साहस्री के वर्तमान रूपो मे पाठ-भेद, विपय-प्रतिपादन में क्रमभेद तथा अध्यायो के क्रम मे भी भेद पाया जाता है। कुछ प्रतियो में किसी विषय का विवेचन पद्य मे है, तो अन्य प्रति मे उसी नियम का विवेचन गद्य मे है।

इस प्रकार षट्साहस्री के प्रमुख रूप दो है, एक प्राचीन और दूसरा नवीन। उद्भट और लोल्लट इत्यादि व्याख्याकारो का आधार प्राचीन रूप एवं शंकुक, कीर्तिधर एवं अभिनवगुप्त की व्याख्या का आधार नवीन रूप है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती मे कहा है कि 'नास्तिकधुर्य उपाध्याय' ने (उपलब्ध) नाट्यशास्त्र को एक संग्रहग्रन्थ माना है, भरत मुनि की कृति नहीं माना। सदाशिव-मत, भरतमत एव ब्रह्ममत के विवेचन द्वारा ब्रह्ममत की ससारता प्रतिपादित करने के लिए उन-उन मतों के प्रतिपादक ग्रन्थो के खण्डों का प्रक्षेप (संग्रह) करके इस शास्त्र का निर्माण किया गया है।

आचार्य अभिनवगुप्त यद्यपि इस धारणा से सहमत नही, तथापि यह सिद्ध है कि आचार्य अभिनवगुप्त के काल, ईसा की दशम शती में भी नाट्यशास्त्र को परचात्कालीन संग्रह माननेवाले विचारक विद्यमान थे।

नाट्यशास्त्र के उपलब्ध रूप मे अनेक स्थानों पर आनुवंश्य संग्रह-श्लोकों का अस्तित्व प्रमाणित करता है कि यह एक संग्रह-ग्रन्थ है, जिसका आधार कोई प्राचीन ग्रन्थ और वंश-परम्परागत सामग्री है।

नाट्यशास्त्र मे 'नाट्यवेद' की चर्चा है। प्रथम अध्याय के चतुर्थ श्लोक में श्रोता मुनिवृन्द–ग्रथित 'नाट्यवेद' की चर्चा करते है। आतोद्यविधि में 'गान्धर्व-कल्प' नामक एक ग्रन्थ की चर्चा है,* जो सामगान करनेवालो से सम्बद्ध प्रतीत होता है और जिसमे 'मध्यम' को अविनाशी माने जाने की बात कही गयी है।

शारदातनय के अनुसार 'पञ्चभारतीयम्' नामक एक ग्रन्थ का अस्तित्व भी था, जो सम्भवतः पाँच भरतो के सिद्धान्तों का संग्रह-ग्रन्थ रहा होगा। शारदातनय ने भरत के पुत्र पाँच बताये हैं। नाट्यशास्त्र में भरतपुत्रों की संख्या सौ है।

नाट्यशास्त्र की जातियो मे मतभेद का सकेत भी मिलता है। कैशिकी जाति मे कभी ऋषभ को भी अपन्यास स्वर मानने की बात इस मतवैविध्य की ओर इङ्गित करती है।

नाट्यशास्त्र के काशी-सस्करण एव बम्बई-संस्करण के अट्ठाईसवें अध्याय मे जातियो का वर्णन पद्य मे है, परन्तु नाट्यशास्त्र के जिस रूप पर आचार्य अभिनवगुप्त ने टीका की है, उसमें जातियो का वर्णन गद्य मे है।

नाट्यशास्त्र की भाषा मे 'अपाणिनीय' प्रयोग प्रायः नही है। इस दृष्टि से नाट्य-

---

* गान्धर्वकल्पे विहितः सामगैरपि मध्यमः। —नाट्यशास्त्र

शास्त्र का वर्तमान रूप वहुत अधिक प्राचीन नही प्रतीत होता, तथापि उसमें वर्णित सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन हैं।

७. भरत और आदिभरत

अभिज्ञानशाकुन्तल की टीका में राघवभट्ट ने 'भरत' एव 'आदिभरत' दोनो के ही उद्धरण दिये है। भाण्डारकर-प्राच्य-संस्थान में सुरक्षित 'नाटय-सर्वस्व-दीपिका' नामक हस्तलिखित ग्रन्थ को 'आदिभरत' की टीका समझा जाता है। इसके अनुसार आदिभरत मे पाँच स्कन्ध, वत्तीस अध्याय और दो सौ इक्कीस प्रकरण थे एवं श्लोक-संख्या छः सहस्र थी।

'रत्नाकर' के टीकाकार कल्लिनाथ ने 'भरत' के कुछ ऐसे उद्धरण दिये है, जो वर्तमान संस्करणो मे नही मिलते। सात ग्रामरागो की चर्चावाला जो पाठ कल्लिनाथ को प्राप्त था, उसमें शुद्ध, भिन्न, वेसर, गौड एवं साधारण रागों का भी विनियोग नाट्य में ि दिष्ट था। शुद्धा, भिन्ना, गौडी, वेसरा एव साधारणी गीतियाँ दुर्गामत से सम्वद्ध हैं जो रागों के पाँच प्रकार वना देती है।*

अतः यह सिद्ध है कि नाटचशास्त्र के अनेक संस्करण थे, जो परम्परागत सिद्धान्तो के संग्रहमात्र थे। उनमे पौर्वापर्य का निश्चय किया जाना कठिन है।

नाटचशास्त्र के वर्तमान रूप को अभिनवगुप्त ने भरतसूत्र कहा है, नान्यदेव भी नाटचशास्त्र के जातिलक्षणो को सूत्र ही कहते है।

आदिनाटचशास्त्र

मत्स्यपुराण मे नाटचशास्त्र के प्रवर्तक भरत मुनि की चर्चा है। देवलोक मे भरत मुनि ने 'लक्ष्मी-स्वयंवर' नाटक की योजना की। उर्वशी लक्ष्मी का अभिनय कर रही थी, परन्तु देवसभा मे स्थित पुरूरवा के रूप पर मुग्ध होकर वह अपना अभिनय भूल गयी। अत भरत मुनि ने क्रुद्ध होकर उर्वशी और पुरूरवा दोनो को ही शाप दे दिया। इस प्रकरण मे भरत मुनि का नाम पॉच वार आया है।

कालिदास ने इस कथा की ओर सकेत किया है और भरत मुनि के नाम एव कृति

---

* तथा चाह भरतः—

पूर्वरङ्गे तु शुद्धा स्याद् भिन्ना प्रस्तावनाश्रया। वेसरा मुखयोः कार्या गर्भे गौडी विधीयते॥
साधारिताऽवमर्शे स्यात् सन्धौ निर्वहणे तथा। —कल्लि०, सं० र० टी०, राग०, अ० सं०, पृ० ३२

का उल्लेख किया है। नयी खोजों के अनुसार कालिदास का काल ई० पू० प्रथम शती निश्चित हो चुका है।

वाल्मीकिरामायण के बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड को आधुनिक विचारक वाल्मीकि की कृति न मानकर प्रक्षिप्त भाग मानते हैं, परन्तु यदि इन काण्डों को प्रक्षिप्त माना जाय, तो भी इनकी भाषा इन दोनों काण्डो को पाणिनि की अपेक्षा पुरातन सिद्ध करती है। आज के विद्वान् पाणिनि को ईसा से ७०० पूर्व किसी समय का व्यक्ति मानते है।

अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक भी वाल्मीकि-रामायण मे सङ्गीत की जो चर्चा है, वह वाल्मीकि का भरत-सिद्धान्तो से परिचित होना भली भाँति सिद्ध करती है।

रामायण के वर्तमान रूप मे 'प्रक्षेप' है, परन्तु सङ्गीत-विषयक चर्चा रामायण मे अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से आयी है, उन सभी स्थलो को अकारण प्रक्षिप्त नही माना जा सकता।

वाल्मीकिरामायण मे 'मत्तकोकिला' एवं 'विपञ्ची' जैसी प्राचीनतम वीणाओ की चर्चा है, परन्तु *'किन्नरी' जैसी सारिकायुक्त वीणा की चर्चा नहीं है।*

शुद्ध सात जातियो की चर्चा है, जिससे सिद्ध है कि चार षाड्जग्रामिक एवं तीन माध्यमग्रामिक जातियों से वाल्मीकि परिचित थे। विकृत अथवा संसर्गज जातियों की कोई चर्चा वाल्मीकि-रामायण मे नही।

इस दृष्टि से भी यह सिद्ध है कि रामायण की रचना उस काल मे हुई जब कि शुद्ध जातियों का प्रचलन था और किन्नरी-जैसे सारिकायुक्त वाद्यो का जन्म नही हुआ था।

रामायण मे सङ्गीत-शास्त्र की जिन परिभाषाओ का उल्लेख हुआ है, वे निम्न-लिखित है —

		काण्ड	सर्ग	श्लोक
१	गान्धर्व	.. अयो०	२	३५
२	सङ्गीत	.. किष्कि०	२८	३६-३७
३	आतोद्य	.. सुन्दर०	१०	४९
४	समाज	.. अयोध्या०	५१	२३
५	गीत	.. ,,	१२	७७
६	गीत	.. बाल०	४	२७
	स्वरविधि—			
७	स्थान	.. बाल०	४	१०
		.. सुन्दर०	४	१०

८	स्वर	.. सुन्दर०	४	१०
९	श्रुति	.. अयोध्या०	६५	२
१०	मूर्च्छना	.. उत्तर०	९३	१३
११	स्थानमूर्च्छन	.. वाल०	४	१०
१२	जाति	.. "	४	४८
१३	करण	.. उत्तर०	७१	१५
	तत वाद्य—			
१४	वीणा	.. अयोध्या०	३९	२९
१५	मत्तकोकिला	.. किष्कि०	१	१५
१६	विपञ्ची	.. सुन्दर०	१०	४१
	सुषिर वाद्य—			
१७	वेणु	.. किष्कि०	३०	५०
१८	शंख	.. युद्ध०	४२	३९
	अनवद्ध वाद्य—			
१९	दुन्दुभि	.. युद्ध०	४२	३९
२०	भेरी	.. "	४४	१२
२१	पटह	.. सुन्दर०	१०	३९
२२	मृदङ्ग	.. "	१०	४२
२३	डिण्डिम	.. "	"	४४
२४	पणव	.. "	"	४३
२५	मुरज	.. "	११	६
२६	मड्डुक	.. "	१०	३८
२७	आडम्वर	.. "	"	४५
२८	चेलिका	.. "	११	६
	वादनोपकरण—			
२९	कोण	.. युद्ध०	४२	३४
	तालविधि—			
३०	मात्रा	.. उत्तर०	२४	७

३१ कला	.. उत्तर०	२४	७
३२ लय	.. बाल०	२	१८
३३ प्रमाण	.. उत्तर०	९४	२
३४ ताल	.. "	"	"
३५ समताल	.. उत्तर०	७१	१५
३६ अक्षरसम	.. बाल०	२	१८
३७ मार्ग	.. "	४	३६
३८ शम्या	.. अयोध्या०	९१	४९
३९ गीति	.. उत्तर०	७१	१८
नृत्यविधि—			
४० नृत्य	.. सुन्दर०	११	५
४१ अङ्गहार	.. "	१०	३६
नाट्यविधि—			
४२ रङ्ग	.. युद्ध०	२४	४३
४३ नाटक	.. बाल०	६	१२ }
	.. अयो०	६९	४ }
शास्त्रज्ञ—			
४४ पूर्वाचार्य	.. उत्तर०	९४	२
४५ लक्षणज्ञ	.. "	९४	५-६
४६ कलामात्राविशेषज्ञ	.. "	"	"
सङ्गीतज्ञ पात्र—			
१ राम	.. अयोध्या०	२	१५
२ सीता	.. "	३९	२९
३ रावण	.. युद्ध०	२४	४२-४३
गंधर्व—			
१ नारद	.. अयोध्या०	९१	४६
२ तुम्वुरु	.. "	"	"
३ गोप	.. "	"	"

अप्सराएँ—

१	अलम्बुपा	अयोध्या०	९१	४७
२	मिश्रकेशी	"	"	"
३	पुण्डरीका	"	"	"
४	वामना	"	"	"

इस स्थिति से यह निश्चित हो जाता है कि महर्पि वाल्मीकि आदिम नाट्यशास्त्र के विपय से भली भांति परिचित थे, फलत. हमारी दृष्टि मे नाट्यवेद के आदिप्रवक्ता भरत वाल्मीकि से पूर्ववर्ती थे। निम्नलिखित कारण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाते है—

(क) नाट्यशास्त्र मे उपलब्ध अनुश्रुति महर्पि भरत को महाराज नहुप का समकालीन वताती है, जो भगवान् राम से पीढियो पूर्व हुए है और आधुनिक अनुसन्धानो के परिणामस्वरूप एक वैदिककालीन नरेश सिद्ध हो चुके है।

(ख) नाट्यशास्त्र के काशी-संस्करण में भगवान् वाल्मीकि को नाट्यवेद के श्रोता ऋपियो मे गिनाया गया है। इससे सिद्ध है कि नाट्यशास्त्र का सग्रहकार भी महर्षि वाल्मीकि का उपजीव्य (श्रद्धेय) किसी 'भरत' को मानता था।

(ग) वाल्मीकि के टीकाकार राम ने उत्तरकाण्ड मे प्रयुक्त 'पूर्वाचार्य' शब्द का अर्थ 'भरत' किया है। अत. इस टीकाकार को उपलब्ध अनुश्रुति भी भरत को वाल्मीकि की अपेक्षा पूर्वाचार्य सिद्ध करती है।

(घ) कालिदास एवं मत्स्यपुराण के अनुसार भी नाट्य के आदिम प्रयोक्ता 'भरत' ही है।

(ङ) वाल्मीकिरामायण का अन्तःसाक्ष्य भरत के सिद्धान्तों से वाल्मीकि का पूर्णतया परिचित होना सिद्ध करता है।

हमारी दृष्टि में वाल्मीकि, पाणिनि से कही पूर्ववर्ती है और भरत वाल्मीकि से भी पूर्व हुए है।

ईसा से पूर्व किसी न किसी शताव्दी मे वाल्मीकि या भरत-जैसी महाविभूतियो को कहीं न कही 'फिट' कर देना हमारे वंश की वात नही।

८. भरत-सिद्धान्तों पर विदेशी प्रभाव ?

भारतीय वाङमय जव ऐतिहासिक दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानो के विचार का विषय वना, तव उन्होंने भारतीय संस्कृति के उस मूल को खोजना चाहा, जिसकी जडें सुदूर अतीत मे न जाने कहाँ तक चली गयी हैं। उनकी अपनी विशिष्ट मान्यताएँ उन्हें

अतीत में एक विशिष्ट सीमा तक ले गयी, जिसके अन्तर्गत उन्होने भारतीय वाङ्मय की अमर कृतियो को काल की दृष्टि से किसी न किसी शताब्दी में कही न कही ठीक इसी भाँति पटक दिया, जिस भाँति कोई भारवाहक थककर चूर हो जाता है और गन्तव्य स्थान तक पहुँचने से पूर्व ही मार्ग में कही भी सिर पर लदे भार को पटककर हाँफने लगता है।

यह ठीक है कि किसी सीमा तक पर्याप्त सामग्री के अभाव के कारण उन विचारको के मार्ग मे कठिनाइयाँ थी, परन्तु साथ ही साथ यह भी नही भूला जाना चाहिए कि वे अनेक विशेषताओ का श्रेय पराधीन भारत की शासित जाति को न देकर अपने पूर्वजो के गुरु 'यूनान' जैसे देशो को देना चाहते थे।

शासक जाति शासित जाति का स्वाभिमान एवं आत्म-विश्वास नष्ट करने के लिए सब कुछ करती है। भारतीय नाटको पर यूनान का प्रभाव सिद्ध करने मे कुछ सज्जनो ने एडी-चोटी का जोर लगा दिया, जब कि यूनान मे 'प्रेक्षागृह' जैसी कोई वस्तु नही थी, सात्त्विक अभिनय के लिए कोई स्थान नही था और यवनिका होती ही नही थी। सन्तोप का विपय है कि पिछली पीढ़ी के जर्मन विद्वान् वेबर ने अपने जीवन मे ही यह मान लिया था कि भारतीय नाटक की उत्पत्ति स्वतन्त्र रूप मे हुई है, भले ही उस पर ग्रीक प्रभाव हो।

मनुस्मृति के अनुसार तो संस्कारो के लोप एव ब्राह्मणो के अदर्शन के परिणाम-स्वरूप 'यवन' एव 'शक' जातियो का क्षत्रियत्व नष्ट हो गया। 'मानव' धर्म का प्रभाव हटने के कारण 'यवन' 'शक' इत्यादि जातियो को वृषलत्व की प्राप्ति हुई। इसका अर्थ तो यह है कि यवनो (यूनानियो) पर ही आरम्भ मे मनु के आचार का प्रभाव पड़ा, जो सम्भवतः राजनीतिक कारणो से शनै-शनैः कम होता गया।

जिन्हे पाश्चात्यो का नाम सुने विना सन्तोष न होता हो, उनको सन्तुष्ट करने के लिए इतना पर्याप्त है कि प्रो० वेर्नर या एगर ने अपनी अरिस्तौतिली के विकास की पुस्तक मे भारतीय विद्वानो का यूनान मे पहुँचना भारत पर सिकन्दर के आक्रमण से कही पूर्व सिद्ध किया है। प्रो० उर्विक ने प्लातौन की रिपब्लिक नामक पुस्तक पर भारतीय सिद्धान्तो का प्रभाव सिद्ध किया है।

यूनान और भारत के सम्बन्धो पर जिन पाश्चात्य विद्वानो ने विचार किया है, वे संस्कृत एवं ग्रीक दोनो भापाओ से परिचित थे। आवश्यकता है कि हम भारतीय इन दोनो भाषाओ का अध्ययन करके इस विषय पर स्वतन्त्र दृष्टि से विचार करे।

भरत के संगीत-सिद्धान्तो को अस्पष्ट एवं श्रुति-विभाग-सिद्धान्त को आडम्बर मात्र घोषित करके कुछ पाश्चात्य सज्जनो ने सन्तोप-लाभ किया, तो कुछ मूर्तियाँ

भरत की 'प्रमाणश्रुति' को पायथोगोरस का प्रसाद सिद्ध करने में जुट गयी। ग्रीक् एवं संस्कृत दोनों भाषाओं से अपरिचित कुछ 'म्यूजिक-टीचर' आज भी कुछ ऐसी ही अनर्गल बातें यदा-कदा लिख डालते है।

उन्नीसवी शती के अन्त एवं बीसवी शती के आरम्भ मे भारत के शिक्षित कहे जाने-वाले समुदाय का पर्याप्त भाग अपने आपको पाश्चात्यों की दृष्टि में 'प्रगतिवादी' एवं 'भारतीयों का आधुनिकतम संस्करण' सिद्ध करने में लगा था। वह स्वयं को उस वर्ग से पृथक् करके दिखाना चाहता था, जो पाश्चात्यो की दृष्टि में रूढिवादी था। इस 'आधुनिकतम' भारतीय ने प्रत्येक उस 'नारे' को दुहराने मे अपनी विशालहृदयता एवं निपुणता—इतिकर्त्तव्यता समझी, जो पश्चिम से उठा हो।

भारतीय मूलग्रन्थो से अपरिचय, संस्कृत भाषा के पठन-पाठन की परम्परा के ह्रास, प्राचीन सम्प्रदायो के लोप एवं मैकाले-महोदय की शिक्षा-योजना के परिणाम-स्वरूप बडी-बडी मनोरञ्जक बातें कहनेवाले व्यक्ति भारत में ही उत्पन्न हुए।

इस स्थिति से सङ्गीतक्षेत्र भी अछूता न रहा। नाट्यशास्त्र को अपने दर्शन से कृतकृत्य करने के पूर्व ही पडितम्मन्य मनीषियो (!) ने उसे अस्पष्ट घोषित कर डाला। कुछ सज्जनो ने यह व्यवस्था दे दी कि संस्कृत भाषा के शब्द अनेकार्थवाची होते है, फलत. ग्रन्थो के वास्तविक तात्पर्य का समझा जाना सम्भव नही।

किन्ही महानुभाव ने यह लिख दिया कि नाट्यशास्त्र मे 'सङ्गीत' शब्द नहीं, तो किसी ने यह स्थापना कर डाली कि नाट्यशास्त्र में 'राग' शब्द नही, हो भी तो प्रच-लित अर्थ में नही। इतना अवकाश किसे था कि नाट्यशास्त्र को स्वयं पढ़कर 'सङ्गीत' और 'राग' शब्दो को उसमे देखे। जिस नाट्यशास्त्र मे एक नही सात 'राग' विद्यमान हैं, 'राग' एवं 'सङ्गीत' शब्दों का प्रयोग एक से अधिक स्थानों पर है, उस नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध मे ऐसे सज्जन भी विचार करते, भाषण देते पाये जाते है, जिनका सम्बन्ध कम से कम इस जीवन में तो नाट्यशास्त्र के साथ सम्भव नही।

यदि कोई सज्जन ग्रेजुएट भी हैं, सङ्गीत की भी कोई परीक्षा उन्होंने पास कर ली है, सङ्गीत के दुर्भाग्य एवं अपने सौभाग्य से किसी प्रतिष्ठित कही जानेवाली संस्था में सङ्गीत के अध्यापक भी नियुक्त हो गये है, तो उन बेचारो को भाषण भी देने पडते हैं। भाषण मे कुछ न कुछ तो कहा ही जाना चाहिए। कही जाय, तो कोई विचित्र एवं मौलिक बात कही जाय। फलत· षड्जग्राम, गान्धारग्राम पर सङ्कट आता है, इनके विलक्षणतम भाषण स्वयं इनके लिए भी अस्पष्ट स्पष्टीकरण (!) होते हैं। ऐसा भी होता है कि दैवदुर्विपाक से महर्षि भरत पर पायथोगोरस की छाया पड़ने लगती है।

हिन्दी, संस्कृत, इंगलिश एवं ग्रीक भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् पण्डित भोलानाथ शर्मा एम० ए० (बरेली-कालेज, संस्कृत-विभाग) का कथन है कि पायथोगोरस के किसी भी ग्रन्थ का आज अस्तित्व नही, प्राचीन ग्रीक ग्रन्थो के उद्धरणो एवं अनुश्रुतियों के आधार पर ही उसकी चर्चा होती है। ऐसी स्थिति मे पायथोगोरस का प्रभाव भरत पर ढूँढ़नेवाले व्यक्तियो की गणना संसार के प्रमुखतम आश्चर्यो मे होनी चाहिए। वाल्मीकि एव आदिभरत से पूर्व 'पायथोगोरस' का अस्तित्व सिद्ध होना अभी शेष है।

९. महर्षि भरत के स्वर और आधुनिक भौतिक विज्ञान

सङ्गीतप्रयोज्य ध्वनियो के सम्बन्ध मे आधुनिक भौतिक विज्ञान ने कुछ सिद्धान्त निश्चित किये है। हमे उन सिद्धान्तो के प्रति कोई विरोध या अनुरोध नही है।

महर्षि भरत के सङ्गीत पर विचार करनेवाले अनुसन्धानकर्त्ता के सम्मुख मूल प्रश्न यह आता है कि आधुनिक सूक्ष्मतम वैज्ञानिक उपकरणो के अभाव मे प्राचीन महर्षि स्वरसम्बन्धी सनातन सिद्धान्तो तक किस विधि से पहुँचे, उस आर्षविधि की खोज ही अनुसन्धानकर्त्ता का लक्ष्य होना चाहिए।

महर्षि भरत की सारणाविधि के परिणामस्वरूप हमे श्रुतियो के तीन परिमाण प्राप्त हुए है। व्यावहारिक सुविधा के लिए हमने इनका नाम 'क', 'ख', 'ग' किया है, ये परिमाण क्रमशः छोटे होते गये है। 'ख' और 'ग' मिलकर प्राय. 'क' के समान हो जाते है। चतुःश्रुतिक स्वरो मे इनका क्रम 'ग, क, ख, ग', त्रिश्रुतिक स्वरो मे 'क, ख, ग' और द्विश्रुतिक स्वरो मे 'ख, ग' होता है। काकलीनिषाद एव अन्तरगान्धार निषाद एवं गान्धार की शुद्ध अवस्था से 'ग, क' अन्तर पर रहते है।

सारणाविधि के परिणामस्वरूप ज्ञात श्रुतियों में एक सप्तक के अन्तर्गत पाँच 'क', सात 'ख' एवं दस 'ग' श्रुतियाँ होती है।

'ग' श्रुति 'प्रमाणश्रुति' है, जो प्रत्येक चतुःश्रुतिक स्वर के आदि एवं अन्त मे त्रिश्रुतिक धैवत और ऋषभ तथा द्विश्रुतिक गान्धार एव निषाद के अन्त मे रहती है।

इस प्रमाणश्रुति का ज्ञान ही स्वरो के भरतोक्त आयतत्व एव मृदुत्व का ज्ञान कराता है और सङ्गीतप्रयोज्य ध्वनियों की अनन्तता का साधक है।

१०. मौलिकता का दावा नही

पूर्व पुरुषो के सिद्धान्तो की व्याख्या करनेवाला व्यक्ति मौलिकता का दावा नही किया करता, वह तो पूर्वोक्त तथ्यो को केवल स्पष्ट करने के लिए सचेष्ट मात्र होता है। लेखक को ग्रन्थ-सामग्री की मौलिकता का गर्व इसी लिए नही है। ग्रन्थ मे जो कुछ कहा गया है, उसके आधारो को उद्धृत करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है।

ग्रन्थ लिखने का मुख्य प्रयोजन हिन्दी-पाठकों के समक्ष कुछ तथ्यो को उद्घाटित करना है, किसी व्यक्ति-विशेष या वर्गविशेष का खण्डन नही । सस्कृत-ग्रन्थो के यथास्थान उद्धरण उन अनुसन्धानकर्त्ताओ के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे, जो इस दिशा मे सचमुच कुछ कार्य करना चाहते है ।

खण्डनात्मक पद्धति उस वर्ग के पाठको के मन में ग्रन्थ के प्रति एक आक्रोश उत्पन्न करती है, जो किसी व्यक्ति या वर्गविशेष के प्रति जन्मना अथवा चिरकाल से श्रद्धा रखते है, फलतः इस ग्रन्थ को आधुनिक विचारको के खण्डन से दूर रखा गया है। यदि जिज्ञासु पाठको एव अधिकारी विद्वानो ने सरल भाव एव मर्मस्पर्शिनी दृष्टि से प्रस्तुत कृति का मूल्याङ्कन किया, तो इसके अकिञ्चन कर्त्ता को प्रसन्नता होगी।

जातियों एव ग्रामरागो को गेय एवं वादनीय रूप से प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न इस ग्रन्थ के लेखक द्वारा किया जा चुका है । वाग्गेयकार की सीमाओ एव कर्त्तव्यो का ध्यान रखते हुए इनके उदाहरणो की रचना एव शिक्षा का कार्य यथासम्भव हो रहा है। तथापि व्यक्ति की सीमाएँ होती है, इन कार्यो के लिए राजकीय सहायता अनिवार्य-अपेक्षित होती है । भगवान् आशुतोष को यदि इस शरीर से कुछ कार्य लेना है, तो साधन स्वय जुट जायँगे—

गुणहीन व्यक्ति, गुण को परख नही सकता और एक गुणी दूसरे गुणी के प्रति मत्सरी होता है। ऐसा सरल व्यक्ति विरल होता है, जो गुणो भी हो और गुणरागी भी । श्री ठा० जयदेवसिहजी के रूप मे मुझे ऐसे ही सरल एव विरल व्यक्तित्व का स्नेहमय सम्पर्क प्राप्त हुआ है । वे सगीतमर्मज्ञ तो है ही, ऐसे कई शास्त्रो के साथ भी उनका प्रगाढ परिचय है, जिनके अच्छे ज्ञान के अभाव मे किसी को प्राचीन सङ्गीतशास्त्र के स्पर्श का भी अधिकार नही है । उन्होने इस ग्रन्थ के भूमिका-लेखन के लिए अपनी कठिन परिस्थितियो पर विजय प्राप्त करके कुछ समय निकाल ही लिया, यह उनके विद्याव्यसन एव गुणरागित्व का प्रमाण है ।

सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश के सञ्चालक एवं हिन्दी-समिति के सचिव श्री भगवतीशरणसिहजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मेरे पास उपयुक्त शब्द नही; प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन जिनकी सङ्गीताभिरुचि एव गुणग्राहिता का परिणाम है ।

अन्ततः—

आपरितोषाद् विदुषा साधु न मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्यय चेतः ॥

कैलासचन्द्र देव बृहस्पति

मङ्गलाचरणम्

गिरिजापाङ्गविलासवशीकृतहृदयमधीनमधीरम् ,
विरहितछद्मवेषमचिरम्प्रकटीकृतगौरशरीरम् ।
छलनगतञ्छलितन्नगतनयावचनचातुरीक्रीतम् ,
नौमि शङ्करं प्रियासखीजनललितं कविकुलगीतम् ॥ १ ॥
चञ्चलयुवतिदृगञ्चलसञ्चितमदिरमधुरसङ्केताम् ,
प्रियतमपदपल्लवनतनयनामालिविनोदमुपेताम् ।
चन्द्रमौलिसितहासकण्टकितरोमामरुणकपोलाम् ,
नौमि पार्वतीमीशविलोकनविरहितसंशयदोलाम् ॥ २ ॥
जलनिधिमन्थनमधुरपरिणतिं हरिपरिणयमुपनीताम् ,
कङ्कणकिङ्किणिनूपुरशिञ्जितमदिरामुपमातीताम् ।
मुकुलितनलिनविलोचनरुचिरामतिपुलकितगतिधीराम्,
नौमि सिन्धुजामिन्दीवरतनुसौरभरुचिरसमीराम् ॥ ३ ॥
अलिकुलकोकिललालनललिते यमुनातीरनिकुञ्जे ,
मधुगुञ्जनजितगीतगुञ्जिते मञ्जुलसुपमापुञ्जे ।
राधारूपधरामतिमधुरां मुरलीध्वनिसंवीताम् ,
नौमि माधवं मोदयन्तमनिशं प्रियतमां पुनीताम् ॥ ४ ॥
गङ्गातुङ्गतरङ्गकेलिललितं गजवदनमुदारम् ,
लम्बकरग्रहपतितकुसुमकुलविरचितसुन्दरहारम् ।
जननीकन्ठसमर्पणमनसं बालसुलभकृतिलोभम् ,
नौमि गणेशं मुदितमहेशं विमलवुद्धिवलशोभम् ॥ ५ ॥

प्रथम अध्याय

ग्राम

जिन महर्षियों को सत्य का साक्षात्कार हो चुका हो, उन्हें 'आप्त'[1] कहा जाता है। 'आप्त' महापुरुषो के वाक्य 'शब्द'[2] कहलाते है। नैयायिको ने 'प्रत्यक्ष' इत्यादि प्रमाणों मे 'शब्दप्रमाण' की भी गणना की है।[3] भारतीय विचारक श्रुतिवचनों एवं आप्तवाक्यों को 'शब्दप्रमाण' के रूप में ग्रहण करते आये है। नाट्य के क्षेत्र में महर्षि भरत 'आप्त' हैं।

महर्षि भरत का प्रधानतया प्रतिपाद्य विषय नाट्य है। कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म ऐसा नही, जो नाट्य मे न आता हो[4], अतः उसके अन्तर्गत महर्षि ने गीत, वाद्य और नृत्य का भी वर्णन किया है।

महर्षि के अनुसार नाट्य के प्रयोक्ता को पहले गीत में परिश्रम करना चाहिए, क्योकि 'गीत' नाट्य की शय्या है, गीत और वाद्य भली-भाँति प्रयुक्त होने पर नाट्य-प्रयोग मे कोई विपत्ति नही आती।[5]

१—आप्तस्तु यथार्थवक्ता।

—अन्नंभट्ट, शब्दपरिच्छेद, तर्कसंग्रह

२—आप्तवाक्यं शब्दः। —अन्नंभट्ट, शब्दपरिच्छेद, तर्कसंग्रह

३—यथार्थानुभवश्चतुर्विधः। प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात्। तत्करणमपि चतुर्विधम्। प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात्।

—अन्नंभट्ट, प्रत्यक्षपरिच्छेद, तर्कसंग्रह

४—न तच्छ्रुतं न सा विद्या न स न्यायो न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते॥

—भरत०, ब० सं०, प्रथम अध्याय, पृ० १२

५—गीते प्रयत्न. प्रथमं तु कार्य्य. शय्यां हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम्।
गीते च वाद्ये च सुप्रयुक्ते नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति॥

—भरत०, ब० सं०, अध्याय ३२, पृ० ६०३

'पूर्वरङ्गविधि'[६] एवं 'ध्रुवागान'[७] मे 'गीत', 'वाद्य' और 'नृत्य' का प्रयोग विहित है, फलतः महर्षि भरत ने गीत, वाद्य और नृत्य का वर्णन सूत्ररूप मे किया है, परन्तु उनके द्वारा किया हुआ विषय-प्रतिपादन संक्षिप्त होते हुए भी इतना पूर्ण है कि 'गीत', 'वाद्य' एवं 'नृत्य' इत्यादि के सम्बन्ध में विचार करनेवाले पश्चाद्वर्ती प्रत्येक आचार्य ने महर्षि भरत के वचनो को प्रमाणरूप में उद्धृत किया है।

'गीत', 'वाद्य' एवं 'नृत्य' ही क्यो, नाट्यविद्या से सम्बद्ध किसी भी विषय में महर्षि भरत की सम्मति प्रमाण मानी जाती है। व्याकरण के क्षेत्र मे जिस प्रकार पाणिनि, कात्यायन या पतञ्जलि 'मुनि' कहलाते है,[८] उसी प्रकार भरत भी नाट्य एवं तत्सम्बन्धी क्षेत्रो मे 'मुनि' कहे जाते है। यही नही, इन क्षेत्रो मे 'मुनि' शब्द भरत का पर्यायवाची माना जाता है।[९]

जिस प्रकार श्री शङ्कर एवं श्री रामानुज-जैसे आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता) को प्रमाण मानकर अपने-अपने दार्शनिक विचारो का प्रतिपादन किया है, उसी प्रकार नाट्य एवं तत्सम्बद्ध विषयों पर विचार करते समय विभिन्नमार्गीय आचार्यों ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिए महर्षि भरत के वचनो का आश्रय लिया है।

'भरतनाट्यशास्त्र' पर अनेक व्याख्याएँ लिखी गयी है[१०], परन्तु वे मिलती नही।

६—यस्माद्रङ्गप्रयोगोऽयं पूर्वमेव प्रयुज्यते।
तस्मादय पूर्वरङ्गो विज्ञेयो द्विजसत्तमा.॥
—भरत०, ब० स०, अध्याय ५, पृ० ६८

७—ध्रुवासंज्ञानि तानि स्युर्नारदप्रमुखैर्द्विजैः।
गीताङ्गानीह सर्वाणि विनियुक्तान्यनेकश॥
या ऋचः पाणिका गाथा स्सप्तरूपाङ्गमेव च।
सप्तरूपप्रमाणं च तद् ध्रुवेत्यभिसज्ञितम्॥
—भरत०, ब० सं०, अध्याय ३२, पृ० ५३२

८—मुनित्रयं नमस्कृत्य तदुक्ती परिभाव्य च।
वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीयं विरच्यते॥ —सिद्धान्तकौमुदी मङ्गलाचरण

९—तण्डुमुनिशब्दौ नन्दिभरतयोरपरनामनी।
—भरतनाट्यशास्त्र, ब० सं० की भूमिका मे सम्पादक द्वारा उद्धृत 'अभिनवभारती' का वाक्य

१०—व्याख्यातारो भारतीये लोल्लटोद्भटशङ्कुका.। भट्टाभिनवगुप्तश्च श्रीमत्कीर्तिधरः परः॥ —आचार्य्य शार्ङ्गदेव, स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० १३

श्री अभिनवगुप्ताचार्य के द्वारा की हुई व्याख्या उपलव्ध तो है, परन्तु उसका कुछ अंश अमुद्रित होने के कारण सर्वजनसुलभ नही। तथापि भरत के रससम्वन्धी सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्ति.' पर मीमांसक आचार्य्य भट्ट लोल्लट, नैयायिक आचार्य्य शङकुक, सांख्यवादी आचार्य्य भट्ट नायक एव आलङ्कारिक आचार्य्य श्री अभिनवगुप्ताचार्य्य की व्याख्याओ से, 'रस' का विचार करनेवाले सज्जन सर्वथा परिचित है।[११]

शताब्दियो की पराधीनता एव तज्जन्य दुष्प्रभावो के कारण हमारी अनेक विद्याओं एवं कलाओं का पतन हुआ और वे परम्पराएँ नष्ट हो गयी, जो श्री अभिनवगुप्ताचार्य्य-जैसी महाविभूतियो को जन्म देती थी, फलत. अनेक प्राचीन ग्रन्थ हमारे लिए दुर्बोध हो गये।

ज्ञान प्राप्त करने के लिए दृष्टि मे निर्मलता, हृदय में सौम्यता तथा प्रत्येक प्रकार के सयम की आवश्यकता होती है।[१२] शुद्ध, अप्रमत्त, मेधावी, ब्रह्मचारी एवं निर्द्वेष व्यक्ति विद्या का पात्र होता है।[१३] विज्ञान के प्रति अविज्ञाता की असूया होती है,[१४] वह स्वय समझ तो सकता नही और अपना दोष आचार्य्य पर डालता है और कहता है

११—इदं हि भरतसूत्र तट्टीकाकृद्भिर्भट्टलोल्लट-श्रीशङकुक-भट्टनायकाभिनवगुप्त-पादैश्चतुर्भि. क्रमेण मीमासान्यायसांख्यालङ्कारमतरीत्या चतुर्धा व्याख्यातम्।
—आचार्य्य वामन, 'काव्यप्रकाश'—टीका

१२—विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम। गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि। असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्य्यवती तथा स्याम्।......
अर्थात्—विद्या ने ब्राह्मण से आकर कहा—तू मेरी रक्षा कर, मै तेरी निधि हूँ। ईर्ष्यालु, कुटिल, असंयत व्यक्ति को मेरा उपदेश न कर, (तव) मै वलशालिनी होऊँगी।" —यास्ककृत निरुक्त, द्वितीय अध्याय, चतुर्थ प्रकरण।

१३—यमेव विद्या: शुचिमप्रमत्त मेधाविनं ब्रह्मचर्य्योपपन्नम्। यस्ते न द्रुह्येत् कतमच्च नाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्।
अर्थात्—जिसे तू शुद्ध, अप्रमत्त, मेधावी, ब्रह्मचर्य्ययुक्त देखे, जो तुझसे द्रोह न करे, हर किसी (अपात्र) के हाथ मे मुझे देता न फिरे, ऐसे निधिरक्षक को मेरा उपदेश कर। —यास्ककृत निरुक्त, द्वितीय अध्याय, चतुर्थ प्रकरण

१४—नित्यं ह्यविज्ञातुर्विज्ञानेऽसूया। —यास्ककृत निरुक्त, द्वितीय अध्याय, चतुर्थ प्रकरण

कि आचार्य्य स्वयं तो समझता नही, मुझे क्या समझायेगा।[१५] इसी लिए शास्त्र में उस व्यक्ति को विद्यादान के लिए सुपात्र नही माना गया, जो श्रद्धापूर्वक आचार्य्य के चरणों में वैठकर विद्याग्रहण के लिए सचेप्ट न हो।[१६]

अस्तु, आज महर्पि भरत-जैसे 'आप्त' महात्मा के सङ्गीतसम्वन्धी वाक्यो को समझने के लिए 'श्रद्धा' की और भी आवश्यकता है।

हमारे विचार का विपय वह सङ्गीत है, जिसकी उत्पत्ति का आधार तो अवश्य 'वेद' है, परन्तु जो लौकिक विनोद का साधन भी है। अतएव यज्ञ-यागादिक में प्रयोज्य स्वरों और उनके प्रयोगो पर विचार न करके हम अपने आपको भरत मुनि के उस 'तौर्यत्रिक' तक सीमित रखेंगे, जिसका प्रयोजन जनमनोरञ्जन है।

इस तौर्यत्रिक का फल 'अदृष्ट' भी है, यह पारलौकिक कल्याण का भी साधन है, परन्तु यह उस 'नाटच' का अङ्ग है, जिसकी उत्पत्ति ही 'क्रीडनीयक' के रूप में हुई है,[१७] भले ही उसे पञ्चम वेद की संज्ञा दी गयी हो।[१८]

भगवान् ब्रह्मा ने नाटच के लिए 'पाठच' ऋग्वेद से, 'गीत' सामवेद से, 'अभिनय' (नृत्यसहित) यजुर्वेद से तथा 'रस' अथर्ववेद से लिये।[१९]

भगवान् ब्रह्मा के अनुसार नाटच में कही 'धर्म' तो कही 'क्रीडा', कहीं 'अर्थ' (धन) तो कही 'शान्ति', कहीं 'हास्य' तो कही 'युद्ध' और कही 'काम' तो कही 'वध' है।[२०]

इसमे धर्मात्माओं के लिए धर्म्म, कामरूपी लक्ष्य की सिद्धि करनेवालो के लिए काम, दुर्विनीतो के लिए निग्रह, प्रमत्तों का दमन, नपुसकों की धृष्टता को वढावा, अपने आपको शूर समझनेवालों के लिए उत्साह, अवोध व्यक्तियों के लिए ज्ञान, विद्वानो के

१५—स ह्यनववुध्यमान आत्मीयं दोषमाचार्य्यं एवावसृजति—स्वयमेव तावदयं न वुध्यते, किमस्मान् वोधयिष्यति।

—दुर्गाचार्य्य, निरुक्त के पूर्वोक्त वाक्य पर टीका

१६—नानुपसन्नाय। —यास्ककृत निरुक्त, द्वितीय अध्याय, चतुर्थ प्रकरण

१७—महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्त. किल पितामहः। क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत् ॥ —भरत०, व० सं०, अ० १, पृ० २

१८—नाटचाख्य पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्। —भरत०, व० सं०, अ० १, पृ० २

१९—जग्राह पाठचमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च। यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥ —भरत०, व० सं०, अ० १, पृ० २

२०—क्वचिद् धर्म. क्वचित् क्रीडा क्वचिदर्थ. क्वचिच्छमः। क्वचिद्धास्यं क्वचिद्युद्ध क्वचित्कामः क्वचिद्वधः॥ —भरत०, व० सं०, अ० १, पृ० ११

लिए विदग्धता, ऐश्वर्य्यशाली व्यक्तियो के लिए विलास, दु.खी के लिए धैर्य्य, धन कमानेवालो के लिए धन और उद्विग्नचित्त व्यक्तियों के लिए सान्त्वना है।[२१]

दु.खी, शोकार्त, श्रान्त एवं तपस्वी (बेचारे) व्यक्तियों को विश्रान्ति देने के लिए भगवान् ब्रह्मा ने नाट्य की सृष्टि की।[२२] सुख-दु.ख से युक्त लोक का स्वभाव ही आङ्गिक, वाचिक इत्यादि अभिनयों से युक्त होने पर नाट्य कहलाता है।[२३]

'गीत' नाट्य का अङ्ग ही नही, प्राण है,[२४] अतः उसका प्रयोजन नाट्य से भिन्न नही, 'वाद्य' एवं 'नृत्य' गीत के उपरञ्जक एवं उत्कर्षविधायकमात्र हैं,[२५] अतः तौर्य्यत्रिक (गीत, वाद्य और नृत्य) के अदृष्ट फल में पूर्णतया विश्वास करते हुए भी हमारा दृष्टि-कोण प्रधानतया लौकिक रहेगा।

ग्राम, स्वर, श्रुति

'ग्राम' शब्द समूहवाची है, जिस प्रकार कुटुम्ब मे लोग मिल जुलकर मर्यादा की रक्षा करते हुए इकट्ठे रहते हैं, उसी प्रकारसव ादी स्वरो का वह समूह ग्राम है, जिसमें श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप मे विद्यमान हो और जो मूर्च्छना, तान, वर्ण, क्रम, अलकार इत्यादि का आश्रय हो।[२६] ग्राम तीन हैं, षड्ज-ग्राम, मध्यम-ग्राम और गान्धार-ग्राम।

२१—धर्मो धर्मप्रवृत्तानां काम. कामार्थसेविनाम्। निग्रहो दुर्विनीतानां मत्ताना दमन-क्रिया॥ क्लीबानां धार्ष्ट्यजननमुत्साह शूरमानिनाम्। अवोधानां निबोधश्च वैदग्ध्यं विदुषामपि॥ ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्य्य दु.खार्दितस्य च। अर्थोप-जीविनामर्थो धृतिरुद्विग्नचेतसाम्॥ —भरत०, ब० सं०, अ० १, पृ० ११

२२—दु.खार्तानां श्रमार्ताना शोकार्तानां तपस्विनाम्। विश्रान्तिजननं काले नाट्य-मेतद् भविष्यति॥ —भरत०, ब० सं०, अ० १, पृ० १२

२३—योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदु.खसमन्वितः। सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतोनाट्य मित्यभि-धीयते॥ —भरत०, ब० सं०, अ० १, पृ० १२

२४—प्राणभूतं तावद् ध्रुवागानं प्रयोगस्य।
—आचार्य्य अभिनव०, अभिनवभारती, बडोदा-संस्करण, तृतीय खण्ड, पृ० ३८६

२५—नृत्तं वाद्यानुग प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ति च।
—आचार्य्य शार्ङ्गदेव, सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १५

२६—समूहवाचिनौ ग्रामौ स्वरश्रुत्यादिसंयुतौ। यथा कुटुम्बिन. सर्वे एकीभूय वसन्ति हि। सर्वलोकेषु स ग्रामो यत्र नित्य व्यवस्थितः। षड्जमध्यमसंज्ञौ तु द्वौ ग्रामौ विश्रुतौ किल॥ —मतङ्ग, भ० को०, पृ० १८९

महर्षि भरत ने 'षड्ज-ग्राम' और 'मध्यम-ग्राम' का वर्णन किया है।[२७] वैस्वर्य, अतितारत्व एवं अतिमन्द्रत्व के कारण 'गान्धारग्राम' महर्षि भरत के द्वारा चर्चा का विषय नही बना है।[२८] कुछ आचार्य्यों ने गान्धारग्राम और तज्जन्य रागों का वर्णन करके लौकिक विनोद के लिए भी उनके प्रयोग का विधान किया है,[२९] परन्तु अन्य आचार्यों ने लौकिक विनोद के लिए ग्रामजन्य रागो का प्रयोग निषिद्ध बताया है।[३०] नारद की सम्मति मे गान्धारग्राम का प्रयोग स्वर्ग में ही होता है।[३१]

महर्षि भरत के अनुसार षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषादवान् सात स्वर हैं।[३२]

श्रुतियाँ बाईस हैं।[३३] (षड्ज के पश्चात् से तार षड्ज तक) सप्तक मे श्रुतियो का क्रम तीन, दो, चार, चार, तीन, दो, चार है।[३४] षड्जग्राम मे षड्ज चतु श्रुति, ऋषभ

व्यवस्थितश्रुतियुता यत्र संवादिन. स्वराः। मूर्च्छनाद्याश्रयो नाम स ग्राम इति सञ्ज्ञितः॥
—महाराज कुम्भ, भ० को०, पृ० १८९

२७—स्वरा ग्रामौ मूर्च्छनाश्च... —भरत०, ब० सं०, अ० २८, पृ० ४३१

२८—द्वौ ग्रामौ भरतेनोक्तौ ग्रामो गान्धारपूर्वक.। अतितारातिमन्द्रत्वाद् वैस्वर्य्यान्नोपदर्शित.॥ —आचार्य्य अभिनवगुप्त, भ० को०, पृ० १८९

२९—नारदेन तदनुसारिणा नान्यदेवेन (च) गान्धारग्रामजातरागा उपदिष्टा., नारदेन यज्ञोपयोगिन.। नान्यदेवेन लौकिकविनोदे च ते प्रयोज्यन्ते।
—प्रो० रामकृष्ण कवि, भ० को०, पृ० ५४२

लक्ष्मीनारायणाख्योऽयं सङ्गीताम्भोधिपारगः। गान्धारमूर्च्छनाग्रामं व्यवहारक्षमं यथा। करोति लक्ष्ययोगेन पूर्वलक्षणयोगत ॥
—लक्ष्मीनारायण, भ० को०, भूमिका, पृ० ११

३०—ते लौकिकविनोदेष्वप्रशस्ता इति सोमेश्वरेणोक्तम्।
—प्रो० रामकृष्ण कवि, भ० को०, पृ० ५४२

३१—गान्धारग्रामस्य केवलं स्वर्गे प्रयुक्तत्वं नारदेनाभिहितम्।
—प्रो० रामकृष्ण कवि, भ० को०, पृ० ५४२

३२—षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा। पञ्चमो धैवतश्चैव सप्तमश्च निषादवान्॥ —भरत०, ब० स०, अ० २८, पृ० ४३२

३३—तत्र वा द्वाविंशतिश्रुतयः। —भरत०, ब० स०, अ० २८, पृ० ४३३

३४—तिस्रो द्वे च चतस्रश्च चतस्रस्तिस्र एव च। द्वे चतस्रश्च षड्जाख्ये ग्रामे श्रुतिनिदर्शनम्। —भरत०, ब० स०, अ० २८, पृ० ४३३

त्रिश्रुति, गान्धार द्विश्रुति, मध्यम चतु श्रुति, पञ्चम चतु श्रुति, धैवत त्रिश्रुति, निषाद द्विश्रुति होता है।[३५]

मध्यम-ग्राम मे पञ्चम तीन श्रुति का रह जाता है और उसकी षड्जग्रामीय अन्तिम श्रुति को ग्रहण कर लेने के कारण धैवत चतु.श्रुतिक हो जाता है, अर्थात् मध्यमग्राम मे मध्यम चतु श्रुति, पञ्चम त्रिश्रुति, धैवत चतु श्रुति, निपाद द्विश्रुति, पड्ज चतु श्रुति, ऋपभ त्रिश्रुति एव गान्धार द्विश्रुति रहता है।[३६]

निपाद जव दो श्रुतियाँ चढ जाता है, तव 'काकली' निपाद और गान्धार जव दो श्रुति चढ जाता है, तव 'अन्तर गान्धार' कहलाता है। पड्ज की दो श्रुतियाँ ग्रहण कर लेने पर भी निपाद 'षड्ज' नही कहलाता, इसी प्रकार मध्यम की दो श्रुतियाँ ले लेने पर भी गान्धार की सज्ञा 'मध्यम' नही होती।[३७]

जिन दो स्वरो मे नौ अथवा तेरह श्रुतियो का अन्तर हो, वे परस्पर संवादी है। जैसे, पड्जग्राम मे 'पड्ज-पञ्चम', 'ऋपभ-धैवत', 'गान्धार-निपाद' और 'पड्ज-मध्यम' परस्पर सवादी है। मध्यम-ग्राम मे 'पड्ज-पञ्चम' का परस्पर सवाद नही रहता, अपितु 'ऋपभ-पञ्चम' परस्पर सवादी हो जाते है। वहाँ अन्य सवाद पड्ज-ग्राम-जैसे ही रहते है।[३८]

मंडल-प्रस्तारों में षड्जग्राम एवं मध्यमग्राम

निम्ननिर्दिष्ट मण्डल-प्रस्तारो मे दोनो ग्रामो और उनमे स्थित स्वरो की स्थिति स्पष्ट है —

३५—पड्जश्चतु श्रुतिर्ज्ञेय ऋपभस्त्रिश्रुतिस्तथा। द्विश्रुतिश्चैव गान्धारो मध्यमश्च चतु श्रुति ॥ चतु श्रुति पञ्चम. स्याद् धैवतस्त्रिश्रुतिस्तथा। निपादो द्विश्रुतिश्चैव पड्जग्रामे भवन्ति हि ॥ —भरत०, व० स०, अ० २८, पृ० ४३४

३६—चतु श्रुतिस्तु विज्ञेयो मध्यम पञ्चम. पुन। त्रिश्रुतिर्धैवतस्तु स्याच्चतु श्रुतिक एव हि ॥ निपादषड्जौ विज्ञेयौ द्विचतु श्रुतिसम्भवौ। ऋपभस्त्रिश्रुतिश्च स्याद् गान्धारो द्विश्रुतिस्तथा ॥ —भरत०, व० सं०, अ० २८, पृ० ४३४

३७—तत्र द्विश्रुतिप्रकर्पणान्निपादवान् काकलीसंज्ञो निपाद, न षड्ज। द्वाभ्यामन्तरस्वरत्वात्। साधारण प्रतिपद्यते। एवं गान्धारोऽप्यन्तरस्वरसंज्ञो न मध्यमः। तयोरन्तरस्वरत्वात्। —भरत०, व० स०, अध्याय २८, पृ० ४३७।

३८—ययोश्च नवत्रयोदशकं परस्परत श्रुत्यन्तरे (रं ?) तावन्योन्यसवादिनौ। यथा षड्ज-पञ्चमौ, ऋषभ-धैवतौ, गान्धार-निपादौ, पड्ज-मध्यमाविति पड्जग्रामे।

प्रस्तारों में एक से बाईस तक अंक श्रुतियों के बोधक हैं । दोनों में केवल एक अन्तर

मध्यमग्रामेऽप्येवमेव षड्जपञ्चमवर्जं पञ्चमर्षभयोश्चात्र संवाद इति । अत्र श्लोक.—

संवादो मध्यमग्रामे पञ्चमस्यर्षभस्य च ।
षड्जग्रामे च षड्जस्य सवादः पञ्चमस्य च ॥

—भरत०, व० सं०, अ० २८, पृ० ४३२

है। षड्जग्राम में 'पञ्चम' सत्रहवीं श्रुति पर और मध्यमग्राम में सोलहवीं श्रुति पर स्थित है। इस स्थितिभेद से दो परिणाम हुए हैं —

(अ) षड्ज-ग्राम में षड्ज-पञ्चम का पारस्परिक त्रयोदश श्रुत्यन्तर (४+१३=१७, तेरह श्रुतियों का अन्तर), जो षड्ज-ग्राम में षड्ज-पञ्चम के पारस्परिक संवाद का कारण था, मध्यमग्राम में द्वादश श्रुत्यन्तर (४+१२=१६) रह गया है, क्योंकि मध्यमग्राम में पञ्चम सोलहवी श्रुति पर स्थित है। फलतः मध्यम-ग्राम मे षड्ज-पञ्चम मे संवाद नही रहा है।

(आ) ऋषभ-पचम परस्पर दस श्रुतियो के अन्तर (७+१०=१७) के कारण षड्ज-ग्राम मे एक दूसरे से संवाद नही करते थे, परन्तु मध्यमग्राम मे पञ्चम के सोलहवीं श्रुति पर उतर आने से ऋषभ-पञ्चम में नौ श्रुतियों का अन्तर (७+९=१६) रह जाने के कारण परस्पर सवाद हो गया है।

जो संवादी स्वर महर्षि भरत ने गिनाये हैं, उनके अतिरिक्त भी कुछ संवाद स्वरो मे विद्यमान है। जैसे, 'म-नि', 'अन्तर-गान्धार-धैवत', 'प-स' और 'काकली-निषाद-अन्तर-गान्धार' मे भी नव श्रुत्यन्तर होने के कारण परस्पर संवाद है। इसी प्रकार 'म-स' एवं 'अन्तर-गान्धार-काकली-निषाद' में भी तेरह श्रुतियो का अन्तर होने के कारण संवाद है।[३९] आधुनिक तीव्र गान्धार ही प्राचीन 'अन्तर-गान्धार' है, जो षड्ज से सात श्रुति दूर है।

३९—यद्यपि जिन दो स्वरो मे महर्षि भरत ने उदाहरणस्वरूप संवाद बताया है, उनकी श्रुतिसंख्या समान है, तथापि परस्पर संवादी स्वरों मे समानश्रुतिकता का अनिवार्य बन्धन महर्षि भरत ने संवादसम्बन्धी नियम मे नहीं लगाया है।

मतङ्ग का कथन है—सवादिनस्तु पुनः समश्रुतिकत्वे सति त्रयोदशनवान्तरे वा अन्योन्यं बोद्धव्या। (सं० र०, अ० स०, स्वरा०पृ० ९४ पर सिंहभूपाल द्वारा उद्धृत) अर्थात् —समश्रुतिक होने पर जिन दो स्वरों मे नौ अथवा तेरह श्रुतियो का अन्तर हो, उन्हे परस्पर संवादी जानना चाहिए।

मतङ्ग का यह मत प्रत्यक्षविरोधी होने के कारण पश्चाद्वर्ती आचार्य्यो को मान्य नहीं हुआ, क्योंकि चतुःश्रुतिक मध्यम और द्विश्रुतिक निषाद में संवाद प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार चतुःश्रुतिक अन्तरगान्धार और त्रिश्रुतिक धैवत मे भी परस्पर प्रत्यक्ष सवाद है।

आचार्य्य शार्ङ्गदेव ने भी इस सम्बन्ध मे दो मतों का उल्लेख किया है। उनका कथन है —

एक बात और दर्शनीय है। षड्ज-अन्तर गान्धार, मध्यम-धैवत, गान्धार-मध्यम-ग्रामीय पञ्चम एव पञ्चम-काकली-निषाद में सात श्रुतियों का अन्तर है।

इसी प्रकार 'नि-स', 'ग-म', 'म-प', 'त्रिश्रुतिक प-ध' में चार श्रुतियों का अन्तर है।

षड्जग्राम की सिद्धि

यदि हम एक ऐसा तानपूरा ले, जिसकी डाँड बीच से उठी न होकर सपाट हो, अटक भी सपाट हो और इस तानपूरे में नौ खूँटियाँ लगाकर नौ तार चढ़ा ले, तो इन नौ तारो के कारण इसे 'नवतन्त्री वीणा' कहा जा सकता है। भले ही इसकी सम्पूर्ण आकृति पुरातन नवतन्त्री वीणा-जैसी नही है।

इस वीणा पर एक-जैसी मोटाई और लम्बाई के नौ तार चढाकर सुगमतापूर्वक महर्षि भरत का 'षड्ज ग्राम' प्राप्त किया जा सकता है। विधि निम्नोक्त है —

(क) प्रथम तार को उसकी मन्द्रतम रञ्जक ध्वनि मे मिला लिया जाय। यह 'षड्ज' है।

(ख) पाँचवाँ तार 'मध्यम' और छठा तार 'पञ्चम' मे मिला लिया जाय।

मिथः संवादिनौ तौ स्तो निगावन्यविवादिनौ। रिधयोरेव वा स्याता तौ तयोर्वा रिधावपि ॥　　—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० ९२

अर्थात् (१) निषाद-गान्धार परस्पर सवादी परतु और स्वरों के विवादी होते हैं। (२) अथवा केवल ऋषभ और धैवत के विवादी होते है और ऋषभ-धैवत इन निषाद-गान्धार के विवादी होते है।

यहाँ आचार्य्य कल्लिनाथ का कथन है —

ननु निगयोरितरान्पञ्चापि स्वरान्प्रति विवादित्वमुक्तम्, तदनुपपन्नम्, शुद्धयोर्मध्यम-निषादयो. ,परस्परं संवादित्वदर्शनादित्यपरितोषेण पक्षान्तरमाह—रिधयोरेव वेति। प्रथममन्यविवादिनावित्यविशेषेण कथन तु समश्रुतिकयोरेव संवाद इति मतानुसारेण।　　—सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० ९२

अर्थात्—'निषाद-गान्धार' को अन्य पाँचो स्वरों का विवादी बताया जाना अनुचित है, क्योकि शुद्ध मध्यम और निषाद मे परस्पर सवादित्व दिखाई देता है, इसी अपरितोष को समाप्त करने के लिए आचार्य्य शार्ङ्गदेव ने इस दूसरे मत का उल्लेख किया है, जिसमें 'गान्धार-निषाद' को केवल ऋषभ-धैवत का विवादी बताया गया है। प्रथम मत का उल्लेख उन्होने समश्रुति स्वरो को ही परस्पर संवादी माननेवालो की दृष्टि से किया है।

(ग) पाँचवें तार को थोडी देर के लिए 'षड्ज' मानकर आठवाँ तार इस नवीन षड्ज के मध्यम मे मिला लिया जाय। यह प्रथम तार पर स्थापित षड्ज की अपेक्षा भरतोक्त निषाद है।

(घ) आठवे तार को थोडी देर के लिए 'षड्ज' मानकर तीसरे तार पर इस नवीन षड्ज का 'मन्द्र मध्यम' मिला लिया जाय। यह प्रथम तार पर बोलनेवाले षड्ज की अपेक्षा महर्षि भरत का गान्धार है।

(ङ) चौथा तार वहाँ मिला लिया जाय, जहाँ प्रथम तार पर बोलनेवाले 'षड्ज' का तीव्र गान्धार बोलता हो। यह महर्षि भरत का अन्तर गान्धार है।

(च) चौथे तार को 'षड्ज' मानकर सातवाँ तार उसके 'मध्यम' और नवाँ तार 'पञ्चम' मे मिला लिया जाय। ये दोनो स्वर प्रथम तार पर बोलनेवाले 'षड्ज' की अपेक्षा भरतोक्त 'धैवत' और 'काकली-निषाद' हैं।

(छ) सातवे तार को षड्ज मानकर दूसरा तार उसके 'मन्द्र मध्यम' मे मिला लिया जाय। यह प्रथम तार पर बोलनेवाले षड्ज की अपेक्षा भरतोक्त ऋषभ है।

इन तारों को क्रमशः छेडने पर आपको षड्ज, ऋषभ, भरतोक्त शुद्धगान्धार, अन्तर-गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद और काकली निषाद सुनाई देंगे।

नवतन्त्री वीणा पर स्वरो के ये स्थान प्राचीन है,[४०] जिनकी उपलब्धि का प्रकार तर्कसङ्गत एवं वैज्ञानिक रूप में ऊपर दिखाया गया है। यह सब क्रिया वीणा-प्रस्तार मे निर्दिष्ट है—(दे० ब्लाक, पृष्ठ १२ के ऊपर)

मध्यमग्राम

यदि आप नवतन्त्री पर मध्यमग्राम सुनना चाहते है, तो इसी अवस्था मे आप नव-तन्त्री का पहला, दूसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ और आठवाँ तार छेडिए, आपको क्रमश: मध्यम, त्रिश्रुतिक पञ्चम, धैवत, निषाद, षड्ज, ऋषभ और गान्धार मिल जायँगे।

नवतन्त्री वीणा को षड्जग्राम में मिला लेने पर षड्जग्राम के षड्ज, ऋषभ, अन्तर-गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ही क्रमशः मध्यमग्राम के मध्यम, पञ्चम,

---

४०—विपञ्च्या नवतन्त्रीषु स्वरास्सप्त तथापरौ। काकल्यन्तरसंज्ञौ च द्वौ स्वरावित्य-मानि च॥ —महाराज नान्यदेव, भ० को०, पृ० ६२८
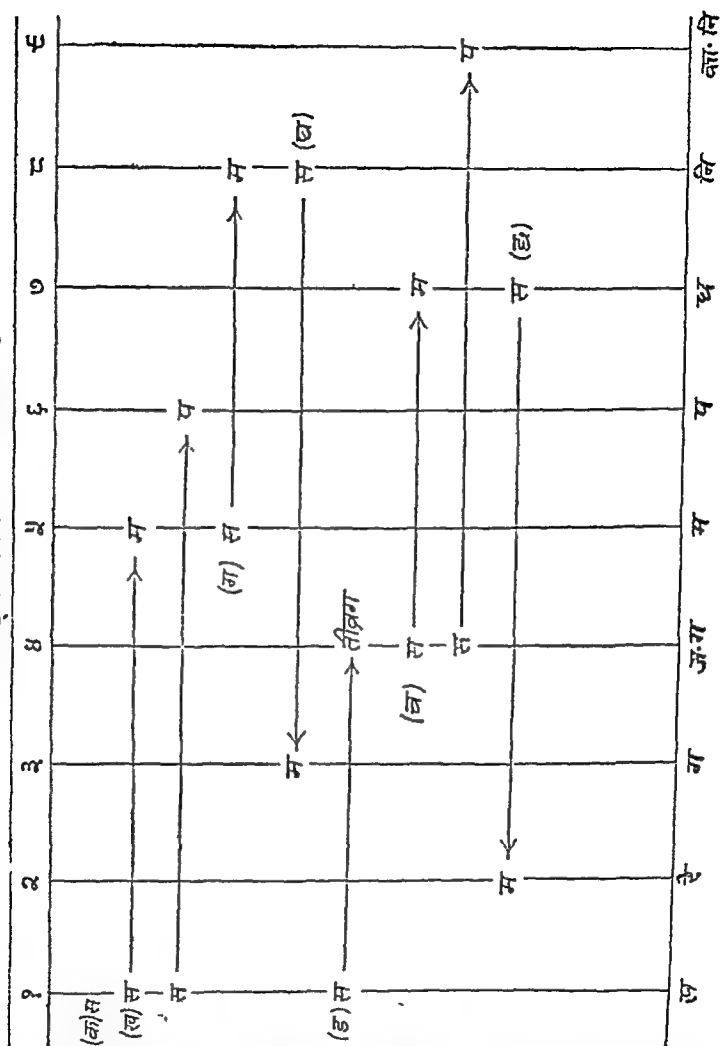
धैवत, निषाद, षड्ज, ऋषभ और गान्धार बन जाते है।[41] 'स-म', 'रे-त्रिश्रुतिक प', 'अन्तरगान्धार–ध', 'म-नि', 'प-स', 'ध-रे', 'नि-ग' का वह पारस्परिक संवाद, जो नौ

४१–द्विश्रुतिप्रकर्षाद् धैवतीकृते गान्धारे मूर्च्छनाग्रामयोरन्यतरत्वम्। तद्वशान्मध्यमादयो यथासंख्येन निषादादिमत्त्वं प्रतिपद्यन्ते।

—भरत०, व० सं०, (का० सं०) अ० २८, पृ० ४३५

श्रुतियों के अन्तर पर आधारित है, सिद्ध हो जाता है। एक जोड़े में दिये हुए स्वर एक दूसरे का प्रतिनिधित्व कर सकने के कारण भी परस्पर संवादी है।[४२]

दो स्वरो मे सवाद का कारण होने पर नौ श्रुतियो का अन्तर 'षड्ज-मध्यम-भाव' एवं तेरह श्रुतियो का अन्तर 'षड्ज-पञ्चम-भाव' कहलाता है। षड्ज और अन्तर-गान्धार मे पाये जानेवाले सात श्रुतियो के अन्तर को हम 'षड्जान्तर-भाव' कहेगे।

नवतन्त्री वीणा पर स्वरो की सारणा में हमने 'अन्तर-गान्धार' की सिद्धि षड्जान्तर-भाव, पञ्चम और काकली-निषाद की सिद्धि षड्ज-पञ्चम-भाव एव अन्य सभी स्वरो की सिद्धि षड्ज-मध्यम-भाव के आधार पर की है। हमने महर्षि भरत के द्वारा बतायी हुई स्वरो की श्रुतिसंख्या के आधार पर स्वरो के रूप प्राप्त किये है। ग्रामस्थित स्वरों की प्राप्ति के लिए प्रत्येक स्वर की श्रुतियो की सख्या जानना ही पर्याप्त है, श्रुतियों के परिमाण और उनके क्रम का ज्ञान 'ग्राम-ज्ञान' का 'परिणाम' होता है 'कारण' नही। महर्षि भरत ने श्रुतियो की सारणा का अधिकारी वह व्यक्ति माना है, जो दोनों ग्रामों के स्वरूप से परिचित हो।[४३]

यदि आप नवतन्त्री पर दो सप्तक सुनना चाहते है, तो मेरु (अटक) और घुड्च (घोड़ी) के बीच में डाँड पर एक बिलकुल सपाट पर्दा इस प्रकार बाँधिए कि तार उससे निकटतम स्थिति में रहे, परन्तु स्वय पर्दे से छू न जायं। इस पर्दे पर दबाकर तारों को जब छेड़ा जायगा, मध्य सप्तक सुनाई देगा।

यदि तार-सप्तक सुनने की भी इच्छा हो, तो मध्य-सप्तकवाले पर्दे और घुड़्च के ठीक मध्य में एक पर्दा और बाँध दीजिए और इस पर तार-सप्तक सुन लीजिए।

गान्धारं धैवतीकुर्याद् द्विश्रुत्युत्कर्षणाद् यदि।
तद्वशाद् मध्यमादींश्च निषादादीन् यथास्थितान्॥
ततो ऽभूद्यावतिथ्येषा षड्जग्रामस्य मूर्च्छना।
जायते तावतिथ्येषा मध्यमग्राममूर्च्छना॥

—दत्तिल, सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, सिंह० पृ० १०९

४२—यथा हि मध्यमग्रामे मन्योश्चरिधयोस्तथा।
विषमश्रुतिकत्वेऽपि मिथः संवादन मतम्॥

—महाराज कुम्भ, भ० को०, पृ० ७६५

४३—द्वे वीणे तुल्यप्रमाणतन्त्र्युपवादनदण्डमूर्च्छने षड्जग्रामाश्रिते कार्ये।

—भरत०, व० सं०, अ० २८, पृ० ४३३

सितार पर षाड्जग्रामिक सप्तक

सितार या वीणा पर आजकल जिस क्रम के अनुसार पर्दे वँधे हुए है, **वह क्रम कुछ वहुत अधिक प्राचीन नहीं,** तथापि सुविधा के लिए हम इस क्रम के अनुसार ही यहाँ षड्जग्राम की सिद्धि देखेगे। पर्दो के प्राचीन क्रम के सम्वन्ध मे अन्यत्र विचार किया जायगा।

(अ) किसी सितार पर केवल वाज का तार रहने दें, पर्दे सव हटा दे। वाज के तार को इतना खीचे कि वह कर्णमधुर ध्वनि मे कही भी वोलने लगे। **यह ध्वनि मन्द्र मध्यम** है।

(आ) अटक और घुडच के ठीक वीचोवीच एक पर्दा इस प्रकार वाँधे कि उस पर **मध्य मध्यम** वोलने लगे।

(इ) मुक्त तार अर्थात् केवल मेरु के सहारे बोलनेवाले तार की ध्वनि को 'षड्ज' मानकर एक पर्दा वहाँ वाँधे, जहाँ इस नवीन षड्ज का 'पञ्चम' वोलता हो। यह ध्वनि **मध्य सप्तक का 'षड्ज'** है।

(ई) एक पर्दा वहाँ वाँधे, जहाँ **मध्य सप्तक के षड्ज का पञ्चम** वोलता हो।

(उ) एक पर्दा वहाँ वाँधे, जहाँ मध्य सप्तक के मध्यम को 'षड्ज' मानने से उसका 'मध्यम' वोलता हो। यह **मध्य सप्तक का निषाद** है।

(ऊ) मध्य सप्तक के निषाद को 'षड्ज' मानकर एक पर्दा अटक की ओर वहाँ वाँधें, जहाँ इस नवीन 'षड्ज' का अवरोहगतिक मध्यम बोलता हो। यह **मध्यम मध्य सप्तक का 'गान्धार'** है।

(ए) एक पर्दा वहाँ वाँधे, जहाँ मध्य सप्तक के षड्ज की अपेक्षा तीव्र गान्धार वोले। यह मध्य सप्तक का भरतोक्त **अन्तर गान्धार** है।

(ऐ) एक पर्दा वहाँ वाँधे, जहाँ 'अन्तर गान्धार' को षड्ज मानने पर इस नवीन षड्ज का 'मध्यम' वोलता हो। यह **मध्य सप्तक का धैवत** है। मध्य सप्तक के मध्यम को षड्ज मानने पर यह धैवत उसका अन्तर गान्धार होगा।

(ओ) एक पर्दा वहाँ वाँधे, जहाँ 'अन्तर गान्धार' को षड्ज मानने पर इस नवीन षड्ज का पञ्चम वोलता है। यह **मध्य सप्तक का तीव्र या काकली निषाद** है।

(औ) धैवत के पर्दे को 'षड्ज' मानकर एक पर्दा अटक की ओर वहाँ वाँधिए, जहाँ इस नवीन षड्ज का अवरोहगतिक मध्यम वोलता हो। यह **मध्य सप्तक का भरतोक्त ऋषभ** है।

निम्नलिखित प्रस्तार में पूर्वोक्त क्रिया स्पष्ट है —
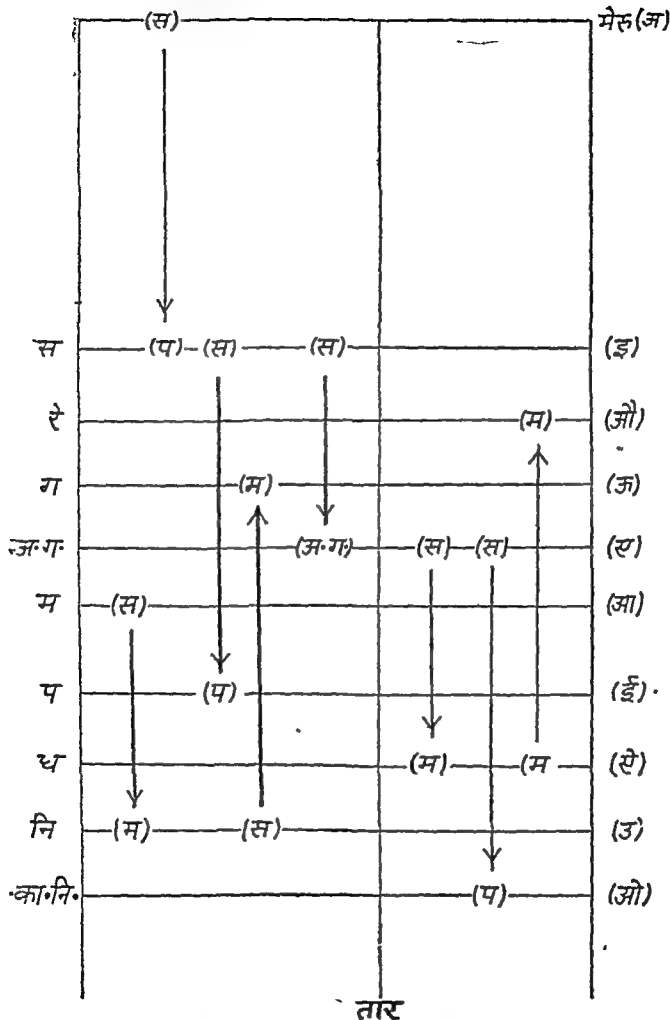
मन्द्र एवं तार स्थानो के पर्दे इन्ही स्वरों के सहारे वाँधे जा सकते है।

नवतन्त्री के तारो की भाँति सितार के इन पर्दो पर 'मध्यम-ग्राम' प्राप्त किया जा सकता है। अर्थात् 'स, रे, अन्तर ग, म, प, ध, नि' के पर्दो पर ही मध्यमग्रामीय 'म, प, ध, नि, स, रे, ग' की उपलब्धि हो सकती है।

'श्रुति-निदर्शन' या 'श्रुतिदर्शन-विधान'

षड्ज-ग्राम से मध्यम-ग्राम प्राप्त करने की एक और विधि भी है। यदि षड्ज-ग्रामीय 'ऋषभ' को थोड़ी देर के लिए 'षड्ज' मानकर षड्जग्रामीय पञ्चम को इतना उतारा जाय कि वह इस नवीन षड्ज का मध्यम हो जाय, तो षाड्जग्रामिक सप्तक मध्यम-ग्रामीय स, रे, ग, म, प, ध, नि में परिवर्तित हो जायगा। हम आगे चलकर देखेंगे कि यह मध्यम-ग्राम की चतुर्थ मूर्च्छना का आरोह है।

इसी लिए महर्षि भरत ने कहा है—

"मध्यमग्राम में पञ्चम को एक श्रुति उतार देना चाहिए। (इस उतरे माध्यम-ग्रामिक) पञ्चम की एक श्रुति को चढ़ाने और उतारने से अथवा (माध्यमग्रामिक पञ्चम को चढ़ाकर षाड्जग्रामिक बनाये हुए पञ्चम के) 'मार्दव' (उतारने) और 'आयतत्व' (चढ़ाने) से जो 'अन्तर' होता है, वह 'प्रमाणश्रुति' (षड्जग्राम एवं मध्यमग्राम के अन्तर में) प्रमाणभूत श्रुति है।"[४४]

४४—षड्जग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पञ्चमः कार्य्यः। पञ्चमश्रुत्युत्कर्षादपकर्षाद्वा यदन्तरं मार्दवायतत्वाद् वा तत्प्रमाणश्रुतिः। —भरत०, ब० सं०, अ० २८, पृ० ४३३

'आयतत्व' का परिणाम स्वर का चढना होता है। प्रातिशाख्य का कथन है—

'आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य।'

—तैत्ति० प्राति०, म० यु० सं०, अध्या० २२, पृ० १७८

माहिषेय भाष्य में इसकी व्याख्या है—

"आयामः प्रसारित्वं दारुण्यं दृढत्वं तस्माच्छरीरस्य आयामः कार्य्यः अङ्गाना दृढत्वम्। खमिति कण्ठः स चोक्तः पुरस्तादिति। तस्य च कार्श्यम्। एवंयुक्तस्य उच्चशब्दो भवति...।"

अर्थात्—'आयाम' का अर्थ 'प्रसारित्व' (विस्तारयुक्तता) और 'दारुण्य' का अर्थ 'दृढत्व' है, अतएव शरीर का 'आयाम' और अङ्गो का दृढत्व करना चाहिए। 'ख' का अर्थ 'कण्ठ' पहले बताया जा चुका है। उस कण्ठ की 'कृशता' करनी चाहिए। इस अवस्था से युक्त व्यक्ति का शब्द ऊँचा होता है।

महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ने भी तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का पूर्वोक्त सूत्र उद्धृत करके उसका अर्थ किया है—

" 'आयामो' गात्राणां निग्रहः, 'दारुण्यं' स्वरस्य दारुणता रूक्षता, 'अणुता खस्य' कण्ठस्य संवृतता। उच्चैःकराणि शब्दस्य।"

—महाभाष्य, नि० सा० सं० १९३५ ई०, द्वितीय खण्ड, पृ० २६

चतुःसारणाएँ

सारणाएँ करने के लिए हम दो वीणाएँ लें, जो सर्वथा एक-जैसी हों, अर्थात् उनके तार एक-जैसे हों, षाड्जग्रामिक सप्तक उनमे समानध्वनिक रूप मे मिला हो, दोनों को

अर्थात्—आयाम=गात्रो का निग्रह, दारुण्य=स्वर की दारुणता, अर्थात् रूक्षता, 'ख' की अणुता=कण्ठ की सवृतता (सिकुड़ना) स्वर को ऊँचा करनेवाले हैं।

'मार्दव' का परिणाम स्वर का उतरना है। प्रातिशाख्य का कथन है—

"अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य।"

—तैत्ति० प्राति०, म० यु० सं०, अध्याय २२, पृ० १७८

माहिषेय भाष्य में इसकी व्याख्या है—

"अन्ववसर्गः संहारः मार्दवं प्रस्रंसनम् उरुता तस्मात् शरीरस्य संहारः कार्य्यः। अङ्गानां प्रस्रंसनं कण्ठस्य स्थूलता एवंयुक्तस्य नीचशब्द उत्पद्यते।"

अर्थात्—अन्ववसर्ग=संहार (शिथिलता), मार्दव=प्रस्रंसन (ढीला छोड़ना)। अतः शरीर (अङ्गो) का संहार (संहरण, शिथिलता) करना चाहिए। अङ्गो को ढीला छोड़ने एवं कण्ठ की स्थूलता (विवृतता, विस्तार) से युक्त (व्यक्ति) का नीचा शब्द उत्पन्न होता है।

महर्षि पतञ्जलि ने इस सूत्र की व्याख्या निम्नलिखित की है—

"अन्ववसर्गो गात्राणा शिथिलता। मार्दव स्वरस्य मृदुता स्निग्धता। उरुता खस्य महत्ता कण्ठस्येति नीचै कराणि शब्दस्य।"

—महाभाष्य, पूर्वोक्त सं०, द्वितीय खण्ड, पृ० २६

अर्थात्—अन्ववसर्ग=गात्रों की शिथिलता, मार्दव=स्वर की मृदुता या स्निग्धता, 'ख' की उरुता=कण्ठ की महत्ता (विस्तार, विवृतता) शब्द को नीचा करनेवाले है।

शरीर या गात्रवीणा मे हृदय, कण्ठ एवं मूर्धा में उत्पन्न होनेवाले स्वर क्रमशः उच्चतर होते है। मन्द्र, मध्य, तार स्थानो के उत्पादक हृदय, कण्ठ एवं मूर्धा भी शरीर में क्रमश ऊँचे है, परन्तु दारवी वीणा में स्थिति विपरीत है। मेरु से नीचे की ओर जितना जायँगे, स्वरो मे उतनी ही उच्चता आती जायगी। दारवी वीणा की इसी स्थिति को समक्ष रखते हुए नाट्यशास्त्र मे कहा गया है—

आयतत्वं तु चेन्नीचे मृदुत्वं तु विपर्य्यये।
स्वस्वरे मध्यमत्वं च श्रुतीनामेष निर्णय.॥

—भरत०, व० सं०, अ० २९, पृ० ४५८

अर्थात्—(अपने वास्तविक स्थान की अपेक्षा) नीचे की स्थिति मे श्रुति का आय-

छेड़ने का 'कोण' भी एक-जैसा हो। मूर्च्छना भी एक-जैसी हो।[४५] वादन के समय तारों पर आघात भी एक-जैसा हो। सारणा एक ही व्यक्ति करे, तो अच्छा है, क्योकि

तत्व, विपरीत (अपने वास्तविक स्थान की अपेक्षा ऊँची) स्थिति में मृदुत्व तथा अपने स्वर पर श्रुतियों का मध्यमत्व होता है, यह निर्णय है।

यह श्लोक सप्त रूपो मे प्रयोज्य अलंकारों के प्रसङ्ग मे है और इसका अभिप्राय दारवी वीणा पर श्रुतियो के 'आयतत्व' एवं 'मृदुत्व' का वोध करानेवाली उच्च (मेरु की ओर) एव नीच (घुडच की ओर) स्थिति को वताना है।

निष्कर्प यह है कि भाष्य-वाक्य कण्ठ में 'आयतत्व' एव 'मृदुत्व' का वोध करा रहे हैं और नाट्यशास्त्र दारवी वीणा मे।

४५—द्वे वीणे तुल्यप्रमाणतन्त्र्युपवादनदण्ड*मूर्च्छने पड्जग्रामाश्रिते कार्य्ये।

—भरत०, व० सं०, पृ० ४३३

*उपवादनदण्ड का दूसरा नाम 'कोण' या 'कुणप' भी है। महाराज कुम्भ का कथन है —

..........कोणः कुणप इत्यपि।
वीणादिवादनादण्डः प्रवीणैरुपवर्ण्यते॥ —भ० को०, पृ० १५१

दुन्दुभि या नगाडे को वजाने के साधन 'चोव' को भी कोण कहा जाता है। इसी लिए महाराज कुम्भ ने उपर्युक्त श्लोक मे 'वीणा' के साथ आदि शब्द का प्रयोग किया है। निम्न श्लोक उदाहरणार्थ द्रष्टव्य—

मन्थायस्तार्णवाम्भः प्लुतिकुहरचलन्मन्थरध्वानधीर.
कोणाघातेपु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसघट्टचण्डः।
कृष्णाक्रोधाग्रदूत. कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवात.
केनास्मत्सिहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽसौ॥

—वेणीसंहार, प्रथम अङ्क

कोणो वीणादिवादनम्।

—अमरकोश, प्रथमकाण्ड, श्लोक ६

कोणो वाद्यप्रभेदे स्याद् वीणादीना च वादने।

—मेदिनी

वीणादि वाद्यते येन तद्धनुराकृति काष्ठं कोण उच्यते।

—महेश्वर कृत 'अमरविवेक' नामक (अमरकोश की) टीका

पूर्वोक्त स्थल मे महर्षि भरत ने जिन दो वीणाओ की ओर निर्देश किया है वे 'उपवादनदण्ड' अर्थात् 'कोण' के द्वारा वजायी जानेवाली हैं।

तार, कोण (वादनदण्ड) और इन्द्रिय की विगुणता से स्वरो में अवाञ्छनीय न्यूनता या अधिकता हो जाती है।[४६]

प्रो॰ रामकृष्ण कवि का कथन है कि महर्षि भरत की वीणा 'मत्त-कोकिला' कही गयी है—

भरतो ..मत्तकोकिलाम्...अवादयदिति प्राहु.।

—भ॰ को॰, पृ॰ ५१९

एतत्करण मत्तकोकिलाख्यवीणाया भरतेन निर्दशितम्। अत्र मुख्यवीणायां यत्र गुरुः त भङ्क्त्वा लघुद्वयरूपेण विपञ्च्यादिषु युगपद्वादन रूपमिति भावः।

—भ॰ को॰, पृ॰ ५५६

मत्तकोकिला नामक वीणा मे इक्कीस तार होते है। मन्द्र, मध्य और तार सप्तक में सातो स्वर प्राप्त होने के कारण यह सब वीणाओ में मुख्य कही गयी है। अन्य वीणाएँ इसी का अङ्ग है और उनका 'करण' इत्यादि 'धातुओ' के द्वारा मत्तकोकिला का उपरञ्जन है। इस सबध मे आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है—

तन्त्रीणामेकविंशत्याः कीर्तिता मत्तकोकिला।
मुख्येय सर्ववीणाना त्रिस्थानै. सप्तभिः स्वरैः॥
सम्पन्नत्वात्तदन्यास्तु तस्याः प्रत्यङ्गमीरिताः।
करणैश्चित्रयन्त्यास्तास्तस्या. स्युरुपरञ्जिका॥

—स॰ र॰, अ॰ सं॰, वाद्या॰, पृ॰ २४८

महर्षि भरत ने 'नवतन्त्री' विपञ्ची के वादक को 'वैपञ्चिक' कहकर 'वैणिक' को उससे भिन्न कहा है। उनके शब्द है—

तते कुतपविन्यासो गायनः सपरिग्रहः।
वैपञ्चिको वैणिकश्च वंशवादस्तथैव च॥

—भरत॰, व॰ सं॰, अ॰ २८, पृ॰ ४२०

इसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार अपने परिग्रह मे गायन (गायक) प्रधान है, उसी प्रकार तन्त्रीवादकों मे वैणिक है। वैपञ्चिक (विपञ्चीवादक) और 'चैत्रिक' (चित्रावादक) का कार्य्य 'वैणिक' के वादन का उपरञ्जनमात्र है। वैणिक का अर्थ 'मुख्य वीणा का वादक' है। शार्ङ्गदेव के अनुसार मुख्य वीणा और मत्तकोकिला समानार्थवाची शब्द है और 'मत्तकोकिला-वादक' की सज्ञा प्रधानतया 'वैणिक' है।

४६—एतेषां च स्वराणां न्यूनाधिकत्व तन्त्रीवादनदण्डेन्द्रियवैगुण्यादुपजायते।

यहाँ 'इन्द्रियवैगुण्य' शब्द ध्यान देने योग्य है। 'वधिर' या अन्य विकलेन्द्रिय व्यक्ति (जिसके हाथ इत्यादि मे विकार हो) महर्षि भरत के अनुसार सारणा का पात्र नही।

जिस वीणा पर सारणा-क्रिया की जायगी, उसे हम सुविधा के लिए 'चल वीणा' और दूसरी को अचल वीणा कहेंगे।

प्रथम सारणा

चल वीणा के 'पञ्चम' को इतना उतारा जाय कि वह अचल वीणा के 'ऋषभ' के साथ षड्ज-मध्यम-भाव से सम्बद्ध हो जाय।[४७] इस प्रक्रिया से चल वीणा का पञ्चम अपनी मूल स्थिति से अर्थात् अचल वीणा के पञ्चम की अपेक्षा जितना उतरेगा, उतना अन्तर 'प्रमाणश्रुति' है।

चल वीणा के पञ्चम को आपने जितना उतारा है, उतना ही चल वीणा के प्रत्येक स्वर को उतार दीजिए।[४८] ऐसी स्थिति मे चल वीणा का प्रत्येक स्वर अचल वीणा के स्वरों की अपेक्षा एक प्रमाणश्रुति उतर जायगा। यह 'प्रथम सारणा' है।[४९]

द्वितीय सारणा

अब चल वीणा के 'गान्धार' और 'निषाद' को इतना उतारिए कि वे क्रमशः अचल वीणा के 'ऋषभ' और 'धैवत' मे मिल जायँ।[५०] अवशिष्ट स्वरो को भी चल वीणा पर

४७–तयोरेकतरस्यां माध्यमग्रामिकीं कृत्वा पञ्चमस्यापकर्षे श्रुतिम्...।

—भरत, ब० सं०, अ० २८, पृ० ४३३

४८–तामेव पञ्चमवशात् षाड्जग्रामिकी कुर्य्यात्।

—भरत०, ब०, सं०, अ० २८, पृ० ४३३

यह क्रिया कुछ कठिन नही। चल वीणा के षड्ज को इतना उतारिए कि उसका संवाद उतरे हुए पञ्चम से होने लगे। तत्पश्चात् संवाद के आधार पर षड्ज से मध्यम, मध्यम से निषाद, निषाद से गान्धार, षड्ज से अन्तर गान्धार, अन्तर गान्धार से धैवत और धैवत से ऋषभ की स्थापना करना हम जान ही चुके है। इतना कर लेने पर 'चल-वीणा' पर षाड्जग्रामिक सप्तक फिर प्राप्त हो जायगा। चलवीणा का पञ्चम चल-वीणा के षड्ज की दृष्टि से षाड्जग्रामिक एवं अचलवीणा के षड्ज की दृष्टि से माध्यम-ग्रामिक होगा।

४९–एवं श्रुत्यपकृष्टा भवति।

—भरत० ब० सं०, अ० २८, पृ० ४३३

५०–पुनरपि तद्वदेवापकर्षाद् गान्धारनिषादवन्तावितरस्या धैवतर्षभौ (ऋषभ-धैवतौ?) प्रविशतः (द्वि)श्रुत्यधिकत्वात्।

—भरत० ब० सं०, अ० २८, पृ० ४३३

उसके नवीन 'गान्धार' और 'निषाद' को ध्यान मे रखते हुए षाड्जग्रामिक अनुपात से यथास्थान मिला लीजिए। इस द्वितीय सारणा के सम्पन्न होने पर आप देखेंगे कि चल वीणा के स्वर अचल वीणा के स्वरों की अपेक्षा दो श्रुति उतरे हुए हैं।

तृतीय सारणा

चल वीणा के 'ऋषभ' और 'धैवत' को इतना उतारिए कि वे क्रमश. अचल वीणा के 'षड्ज' और 'पञ्चम' के साथ एक-रूप हो जायँ।[५१] अन्य स्वरों को भी षाड्ज-ग्रामिक अनुपात से यथास्थान मिला लीजिए। अब आपकी चल वीणा का सप्तक अचल वीणा के सप्तक की अपेक्षा तीन श्रुति उतरा हुआ होगा।

चतुर्थ सारणा

चल वीणा के 'मध्यम', 'पञ्चम' और 'षड्ज' को इतना उतारिए कि वे क्रमश. अचल वीणा के 'गान्धार', 'मध्यम' और 'निषाद' मे मिल जायँ।[५२] अवशिष्ट स्वरो को भी षाड्जग्रामिक अनुपात मे यथास्थान मिला लीजिए, अब चल वीणा का सप्तक अचल वीणा के सप्तक की अपेक्षा चार श्रुति उतरा हुआ होगा।

पूर्वोक्त विधि से सारणाएँ करने पर चल वीणा हमे एक समय एक ही सारणा प्रदर्शित करती है, क्योकि हम उस पर प्रथम सारणा को मिटाकर दूसरी, दूसरी को मिटाकर तीसरी और तीसरी को मिटाकर चौथी सारणाएँ करते है। फलतः बाईसो श्रुतियाँ एक समय हमारे समक्ष नही आ पातीं।

परवर्ती आचार्यो ने बाईस श्रुतियाँ सिद्ध करने के लिए 'श्रुतिवीणा' का आश्रय लिया था[५३], परन्तु एक ऐसा उपाय भी है, जिससे चारों सारणाएँ एव उनके परिणाम-

---

यहाँ कुछ लोग 'तद्वत्' शब्द से भ्रम मे पड जाते है। 'तद्वत्' क्रियाविशेषण है। महर्षि पाणिनि के सूत्र "तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः" की वृत्ति देखिए।

५१—पुनस्तद्वदेवापकर्षाद् धैवतर्षभावितरस्या पञ्चमषड्जौ प्रविशतः (त्रि) श्रुत्यधिकत्वात्। —भरत, ब० सं०, पृ० ४३३

५२—तद्वत्पुनरपकृष्टायां च तस्यां पञ्चममध्यमषड्जा इतरस्यां मध्यमगान्धारनिषादवन्तः प्रवेक्ष्यन्ति चतुःश्रुत्यधिकत्वात्।

—भरत, ब० सं०, पृ० ४३३–४३४

५३—द्वे वीणे सदृशौ कार्य्ये यथा नादः समो भवेत्।
तयोर्द्वाविंशतिस्तन्त्र्यः ।

—आचार्य शार्ङ्ग०, सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० ६९

स्वरूप वाईसो श्रुतियाँ भी हमारे समक्ष रहती है और एक ही वाद्य पर सारणाएँ सम्पन्न हो जाती है।

श्रुतिदर्पण पर चतुःसारणाविधि

एक ऐसा तानपूरा लीजिए, जिसकी डाँड सपाट हो, अर्थात् वीच से उठी हुई न हो। इस तानपूरे पर पर्दे भी सपाट हो, अर्थात् वे पर्दे सितार के पर्दो की भाँति वीच से उठे हुए न हो। तानपूरे मे पाँच खूँटियाँ हों, पाँच तार एक-जैसे चढ़ा लीजिए। पर्दे सीधे रहें, अर्थात् पर्दे के प्रत्येक भाग से 'अटक' और 'घुड़च' समान दूरी पर हो। घुड़च सीधी हो, तनिक भी आडी-तिरछी न हो।

इस तानपूरे को हम अव 'श्रुतिदर्पण' कहेगे। इस पर नियमपूर्वक षड्जग्राम के अनुसार पर्दे मिला लीजिए।

'श्रुतिदर्पण' पर चढे हुए पाँचो तारो को समान ध्वनि मे मिला लीजिए।

'श्रुतिदर्पण' के वायी ओरवाले तार को हम पहला तार कहेगे, अन्य तार क्रमशः दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ तार कहलायेंगे।

मूल सप्तक

पहले तार को षड्ज इत्यादि के पर्दो पर दबाकर छेडने से जो सप्तक वोलेगा, उसे हम मूल सप्तक कहेंगे, जो पूर्वोक्त पद्धति के अचल सप्तक का काम देगा।

प्रथम सारणा

दूसरे तार को इतना उतारिए कि मूल सप्तक के ऋषभ के साथ दूसरे तार के पंचम का सवाद षड्ज-मध्यम-भाव से होने लगे। इतना करने पर आप देखेंगे कि दूसरा तार मूल सप्तक के तार की अपेक्षा 'कुछ' उतरा हुआ है, यह 'कुछ' अन्तर ही महर्षि भरत की भाषा मे प्रमाणश्रुति का अन्तर है।

किसी भी पर्दे पर पहले और दूसरे तार को दवाकर छेडा जाय, प्रमाणश्रुति का यह अन्तर दोनो तारो की ध्वनि मे स्पष्ट सुनाई देगा। अर्थात् दूसरे तार पर ध्वनित होनेवाला सप्तक मूल सप्तक की अपेक्षा एक प्रमाणश्रुति उतरा हुआ होगा।

द्वितीय सारणा

तीसरे तार को इतना उतारिए कि उसके गान्धार की ध्वनि मूल सप्तक के 'ऋषभ' की ध्वनि में मिल जाय। इतना करने पर आप देखेंगे कि तीसरे तार का 'निषाद' मूल

सप्तक के 'पञ्चम' में स्वतः मिल गया है। तीसरे तार पर बोलनेवाला षाड्जग्रामिक सप्तक अब मूल सप्तक की अपेक्षा दो श्रुति उतरा हुआ है।
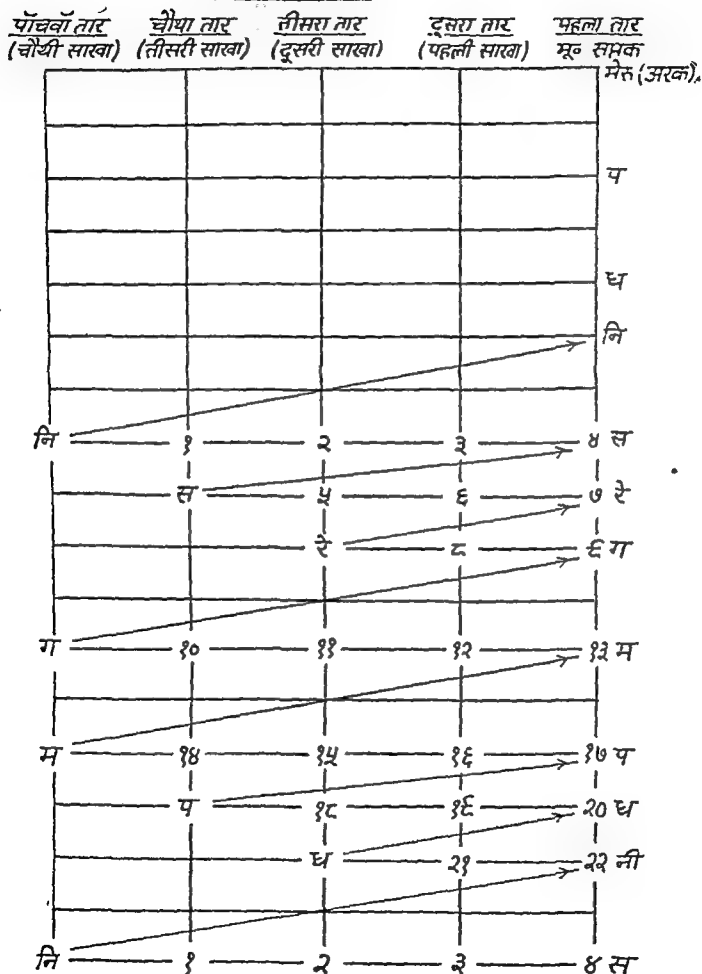
तृतीय सारणा

चौथे तार को इतना उतारिए कि उसका 'ऋषभ' मूल सप्तक के षड्ज में मिल जाय,

ऐसा करने से चौथे तार का 'धैवत' प्रथम तार के 'पञ्चम' में स्वतः मिल जायगा। चौथे तार पर मिला हुआ षाड्जग्रामिक सप्तक अब मूल सप्तक की अपेक्षा तीन श्रुति उतरा हुआ है।

चौथी सारणा

पाँचवें तार को इतना उतारिए कि उसका 'मध्यम' मूल सप्तक के 'गान्धार' मे मिल जाय। यह हो जाने पर पाँचवें तार के 'पञ्चम' और 'षड्ज' क्रमश. मूल सप्तक के 'मध्यम' और 'निषाद' मे स्वत. मिल जायँगे। इस स्थिति में पाँचवे तार पर ध्वनित होनेवाला सप्तक मूल सप्तक की अपेक्षा चार श्रुति उतरा हुआ है।

(गत पृष्ठ (ब्लाक) में निर्दिष्ट श्रुति-दर्पण-प्रस्तार पर सारणाओ के परिणाम-स्वरूप बाईसो श्रुतियाँ प्रत्यक्ष है।)

'श्रुति-दर्पण' पर प्रदर्शित श्रुति-प्रस्तार में आपको 'ऋषभ' की तीन, 'गान्धार' की दो, 'मध्यम' की चार, 'पञ्चम' की चार, 'धैवत' की तीन, 'निषाद' की दो और 'षड्ज' की चार श्रुतियाँ स्पष्ट दृष्टि-गोचर होंगी। ऋषभ सातवी, गान्धार नवी, मध्यम तेरहवी, पञ्चम सत्रहवी, धैवत बीसवी, निषाद बाईसवी और षड्ज चौथी श्रुति पर स्थित है।

मूल सप्तक के ऋषभ के साथ प्रथम सारणा के अर्थात् दूसरे तार के पञ्चम का षड्ज-मध्यम-भाव से सवाद है।

द्वितीय सारणा के गान्धार और निषाद मूल सप्तक के ऋषभ एवं धैवत से मिल गये है, अतः द्वितीय सारणा अर्थात् तीसरे तार के गान्धार और निषाद के पर्दों पर क्रमशः ऋषभ और धैवत लिखे गये हैं। मूल सप्तक के ऋषभ और धैवत के साथ समध्वनि-कता का सङ्केत तीरों के द्वारा किया गया है।

तृतीय सारणा के ऋषभ और धैवत के पर्दों पर 'स' और 'प' लिखे गये है, जो क्रमश. मूल सप्तक के षड्ज और पञ्चम के साथ उनकी समध्वनिकता के परिचायक है।

चौथी सारणा के मध्यम, पञ्चम और षड्ज के पर्दो पर क्रमशः 'ग', 'म', 'नि' अंकित है, जो क्रमशः मूल सप्तक के गान्धार, मध्यम और निषाद के साथ इन पर्दों पर निकलनेवाली ध्वनियो के सादृश्य का परिचय देते है।

श्रुतियों के परिमाण

हम यह जान चुके है कि श्रुति-दर्पण के पहले-दूसरे तार की ध्वनि का अन्तर 'प्रमाण-श्रुति' है, भविष्य मे हम इसे 'ग' अन्तर कहेगे।

श्रुति-दर्पण के दूसरे और तीसरे तार को क्रमशः धीरे से छेड़ने पर हमें 'ग' अन्तर से बड़ा अन्तर सुनाई देगा, इसे हम 'ख' अन्तर कहेंगे।

तीसरे और चौथे तार को छेड़ने पर उन दोनो की ध्वनियों में 'ख' अन्तर से भी बडा अन्तर सुनाई देगा, इसे हम 'क' अन्तर कहेगे ।

चौथे और पाँचवें तार की ध्वनि मे फिर 'ग' अन्तर सुनाई देगा, क्योकि चौथे तार के ऋषभ के साथ पाँचवे तार के पञ्चम का षड्ज-मध्यम भाव से उसी प्रकार सवाद है, जिस प्रकार पहले तार के ऋषभ का संवाद दूसरे तार के पञ्चम के साथ है।

इस बात को यो कहा जा सकता है कि पहला तार दूसरे तार की अपेक्षा 'ग' अन्तर, दूसरा तार तीसरे तार की अपेक्षा 'ख' अन्तर, तीसरा तार चौथे तार की अपेक्षा 'क' अन्तर और चौथा तार पाँचवें तार की अपेक्षा 'ग' अन्तर चढा हुआ है।

अथवा यों भी कहा जा सकता है कि पाँचवाँ तार चौथे तार की अपेक्षा 'ग' अन्तर, चौथा तार तीसरे तार की अपेक्षा 'क' अन्तर, तीसरा तार दूसरे तार की अपेक्षा 'ख' अन्तर और दूसरा तार पहले तार की अपेक्षा 'ग' अन्तर उतरा हुआ है।

(श्रुति-दर्पण पर बाईसो श्रुतियो और उनके परिमाणो को गत पृष्ठ पर देखिए।)

पूर्वोक्त प्रस्तार श्रुतियों मे पाये जानेवाले अन्तरो का क्रम दिग्दर्शित करता है।

पाँचवे तार के षड्ज के पर्दे पर मूल सप्तक का मन्द्र 'निषाद' है, प्रथम श्रुति इससे 'ग' अन्तर पर है, उसके पश्चात् दूसरी, तीसरी और चौथी श्रुतियाँ क्रमश. 'क, ख, ग' अन्तर पर स्थित है। ये षड्ज की चार श्रुतियाँ है। महर्षि भरत ने श्रुतिसंख्या षड्ज से न गिनाकर ऋषभ से गिनायी है, क्योकि 'षड्ज' के 'आधार-ध्वनि' होने के कारण एक सप्तक मे उसकी श्रुतियो की गणना निषाद के पश्चात् ही सम्भव है।

ऋषभ की तीन श्रुतियाँ

चौथे तार के ऋषभ के पर्दे पर मूल सप्तक का षड्ज बोल रहा है, उसके पश्चात् ऋषभ की तीन श्रुतियाँ (पाँचवी, छठी, सातवी) क्रमश. 'क, ख, ग' अन्तर पर स्थित है। सातवी श्रुति पर ऋषभ है।

गान्धार की दो श्रुतियाँ

तीसरे तार के गान्धारवाले पर्दे पर मूल सप्तक का ऋषभ बोल रहा है, इसके पश्चात् गान्धार की दो श्रुतियाँ (आठवी और नवी) क्रमशः 'ख, ग' अन्तरो पर स्थित है। नवी श्रुति पर मूल सप्तक का गान्धार विद्यमान है।

मध्यम की चार श्रुतियाँ

पाँचवे तार के मध्यमवाले पर्दे पर मूल सप्तक का गान्धार है। इसके पश्चात्

मध्यम की चार श्रुतियाँ (दसवी, ग्यारहवी, बारहवी, तेरहवी) क्रमशः 'ग, क, ख, ग' अन्तरो पर स्थित है। तेरहवी श्रुति पर मध्यम विद्यमान है।

पञ्चम की चार श्रुतियाँ

पाँचवें तार के पञ्चमवाले पर्दे पर मूल सप्तक का मध्यम बोल रहा है। उसके पश्चात् पञ्चम की चारो श्रुतियाँ (चौदहवी, पन्द्रहवी, सोलहवी और सत्रहवी) क्रमशः 'ग, क, ख, ग' अन्तरो पर स्थित है। सत्रहवी श्रुति पर पञ्चम है।

धैवत की तीन श्रुतियाँ

चौथे तार के धैवतवाले पर्दे पर मूल सप्तक का पञ्चम विद्यमान है, धैवत की तीन श्रुतियाँ (अठारहवी, उन्नीसवी और बीसवी) उससे क्रमशः 'क, ख, ग' अन्तर पर स्थित है। बीसवी श्रुति पर धैवत है।

निषाद की दो श्रुतियाँ

तीसरे तार के निषादवाले पर्दे पर मूल सप्तक का धैवत है, उसके पश्चात् निषाद की दो श्रुतियाँ (इक्कीसवी और बाईसवी) क्रमश. 'ख, ग' अन्तर पर स्थित है, बाईसवी श्रुति पर निषाद है।

षड्ज की चार श्रुतियाँ

पाँचवे तार के 'तार षड्ज' वाले पर्दे पर मूल सप्तक का निषाद बोल रहा है, षड्ज की चार श्रुतियाँ (पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी) उसके पश्चात् क्रमशः 'ग, क, ख, ग' अन्तरो पर स्थित है। चौथी श्रुति पर षड्ज विद्यमान है।

सारणा-पद्धति में 'अन्तर गान्धार' और 'काकली निषाद' की सिद्धि भी महर्षि भरत की उक्ति के अनुसार हो जाती है।[५४] तीव्र मध्यम यद्यपि महर्षि भरत के द्वारा नही गिनाया गया है, परन्तु मध्यम और पञ्चम का अन्तर स्वर होने के कारण इसकी उपलब्धि भी यथास्थान होती है।

अन्तर गान्धार की दो श्रुतियाँ

पाँचवे तार के मध्यमवाले पर्दे पर मूल सप्तक का गान्धार विद्यमान है, उसके पश्चात् अन्तर गान्धार की दो श्रुतियाँ (दसवी और ग्यारहवी) क्रमश 'ग-क' अन्तरो पर विद्यमान है। ग्यारहवी श्रुति पर 'अन्तर गान्धार' बोल रहा है, जिसकी ध्वनि

५४—अन्तरनिदर्शनमपि श्रुतिनिदर्शने प्रोक्तम्।

—भरत०, ब० सं०, अ० २८, पृ० ४३५

मूल सप्तक के तीव्र गान्धारवाले पर्दे पर निकलनेवाली ध्वनि से अभिन्न नही। फलतः 'अन्तर गान्धार' और 'तीव्र गान्धार' एक ही ध्वनि का बोध कराते हैं।

काकली निषाद की दो श्रुतियाँ

पाँचवें तार के तार षड्जवाले पर्दे पर मूल सप्तक का निषाद ध्वनित हो रहा है, इसके पश्चात् काकली निषाद की दो श्रुतियाँ (पहली, दूसरी) क्रमश. 'ग, क' अन्तर पर स्थित हैं। दूसरी श्रुति पर काकली निषाद ध्वनित हो रहा है। इसकी ध्वनि मूल सप्तक के तीव्र निषाद से भिन्न नहीं, अतः 'काकली निषाद' और तीव्र निषाद एक है।

पत-पञ्चम[55] (तीव्र मध्यम) की दो श्रुतियाँ

पाँचवें तार के पञ्चमवाले पर्दे पर मूल सप्तक का मध्यम स्थित है, 'पत-पञ्चम' (तीव्र मध्यम) की दो श्रुतियाँ (चौदहवीं, पन्द्रहवी) उससे क्रमशः 'ग, क' अन्तर पर है, पन्द्रहवी श्रुति पर 'पत-पञ्चम' बोल रहा है, जिसकी ध्वनि मे मूल सप्तक के तीव्र मध्यमवाले पर्दे पर बोलनेवाली ध्वनि से कोई अन्तर नही है।

पूर्वोक्त प्रस्तार पर ध्यान देने से कुछ अन्य विशेषताएँ भी दृष्टिगोचर होगी —

(अ) प्रत्येक स्वर की उपान्त्य (अन्तिम से पहली) एवं अन्त्य श्रुति क्रमशः 'ख-ग' है।

(आ) ऋषभ और धैवत की प्रथम श्रुति का परिमाण भी एक-जैसा है।

(इ) षड्ज, मध्यम और पञ्चम की श्रुतियो का क्रम एक-जैसा है, अर्थात् इन स्वरों की श्रुतियो के परिमाणो का क्रम 'ग, क, ख, ग' है।

५५—आजकल जिस स्वर की संज्ञा तीव्र मध्यम है, उसे महाराज कुम्भ ने 'पतपञ्चम' की संज्ञा दी है। श्रीकण्ठ ने इस सज्ञा को ज्यो का त्यो ग्रहण किया है।

आचार्य कल्लिनाथ का कथन है कि 'रामक्रिया' नामक क्रियाङ्ग राग मे मध्यम 'पञ्चम' की दो श्रुतियाँ ले लेता है।

इस दृष्टि से तीव्र मध्यम महाराज कुम्भ की दृष्टि मे 'पञ्चम' का और आचार्य्य कल्लिनाथ की दृष्टि मे मध्यम का विकार है।

इसी ध्वनि को सोमनाथ ने 'मृदु पञ्चम' और वेंकट मखी ने 'वराली मध्यम' कहा है।

इस सम्बन्ध मे विस्तृत विचार यथास्थान किया जायगा। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि महर्षि भरत की जिस दूसरी सारणा में अन्तर गान्धार और काकली निषाद की प्राप्ति होती है, उसी मे तीव्र मध्यम की भी उपलब्धि होती है।

*निम्नलिखित मण्डल-प्रस्तार में स्वरों की श्रुतियों के परिमाणो का क्रम दिग्दर्शित है —

मण्डल-प्रस्तार

श्रुतिपरिमाणों का क्रम

(का० नि०) स

	१	२	३	४	५	६	
	ग	क	ख	ग	क	ख	
नि २२ ग							ग ७ रे
२१ ख							ख ८
ध २० ग							ग ९ ग
१९ ख							ग १०
१८ क							क ११ (अन्तर गान्धार)
	ग	ख	क	ग	ग	ख	
	१७	१६	१५	१४	१३	१२	
	प				म		

---

*श्रुतियों के परिमाणो को जॉचने की एक विधि और है—

'ग' अन्तर—

प्रथम सारणा का पञ्चम, मूल सप्तक के ऋषभ को 'षड्ज' मानने पर उसका मध्यम होता है, जो मूल सप्तक के पञ्चम की अपेक्षा एक प्रमाणश्रुति उतरा हुआ होता है। परिणामस्वरूप मूल सप्तक के मुक्त तार की ध्वनि की अपेक्षा प्रथम सारणा के मुक्त तार की ध्वनि भी एक प्रमाणश्रुति उतरी होती है।

'ख' अन्तर—

प्रथम सारणा के ऋषभ को षड्ज मानने पर द्वितीय सारणा का पञ्चम इस नवीन षड्ज का मध्यम न होकर तीव्र गान्धार से कुछ चढ़ा हुआ रहता है। इससे सिद्ध है कि मूल सप्तक के तार की अपेक्षा प्रथम सारणा का तार जितना उतरा हुआ है, दूसरी सारणा का तार प्रथम सारणा के तार से 'ग' अन्तर की अपेक्षा अधिक उतरा हुआ है। फलतः प्रथम सारणा एव द्वितीय सारणा के तारों की ध्वनियों का अन्तर मूल सप्तक एव प्रथम सारणा के तारो की ध्वनियो मे पाये जानेवाले अन्तर की अपेक्षा अधिक है।

इस मण्डलप्रस्तार पर विचार करने से कुछ चमत्कारपूर्ण तथ्यों का दर्शन होगा–

(अ) जिन दो स्वरों में 'पड्ज-मध्यम भाव' बताया गया है, या हो सकता है, उनके नव श्रुत्यन्तर मे सदा दो 'क' अन्तर, तीन 'ख' अन्तर और चार 'ग' अन्तर होंगे।

परीक्षा कीजिए —

(१) 'स - म' :

दो 'क' अन्तर : पाँचवी और ग्यारहवीं श्रुति।
तीन 'ख' अन्तर : छठी, आठवी और बारहवी श्रुति।
चार 'ग' अन्तर : सातवी, नवी, दसवी और तेरहवी श्रुति।

(२) 'म - नि' :

दो 'क' अन्तर : पन्द्रहवी और अठारहवी श्रुति।
तीन 'ख' अन्तर : सोलहवी, उन्नीसवी और इक्कीसवी श्रुति।
चार 'ग' अन्तर : चौदहवी, सत्रहवी, बीसवी और बाईसवी श्रुति।

(३) 'प - तार - स' :

दो 'क' अन्तर : अठारहवी और दूसरी श्रुति।
तीन 'ख' अन्तर : उन्नीसवी, इक्कीसवी और तीसरी श्रुति।
चार 'ग' अन्तर : बीसवी, बाईसवी, पहली और चौथी श्रुति।

(४) 'अन्तर गान्धार - ध' :

दो 'क' अन्तर : पन्द्रहवी और अठारहवी श्रुति।
तीन 'ख' अन्तर : बारहवी, सोलहवी और उन्नीसवी श्रुति।
चार 'ग' अन्तर : तेरहवी, चौदहवी, सत्रहवी और बीसवी श्रुति।

(५) 'नि - तार ग' :

दो 'क' अन्तर : दूसरी और पाँचवी श्रुति।
तीन 'ख' अन्तर : तीसरी, छठी और आठवी श्रुति।
चार 'ग' अन्तर : पहली, चौथी, सातवी और नवी श्रुति।

'क' अन्तर—

द्वितीय सारणा के ऋषभ को पड्ज मानने पर तृतीय सारणा का पञ्चम इस नवीन पड्ज के तीव्र गान्धार से भी कुछ उतरा हुआ रहता है। फलत. यह सिद्ध है कि द्वितीय एवं तृतीय सारणाओ के मुक्त तारो की ध्वनि मे पाया जानेवाला 'क' अन्तर सर्वाधिक है।

(६) 'रे - माध्यमग्रामिक पञ्चम' :

दो 'क' अन्तर : ग्यारहवी और पन्द्रहवी श्रुति।
तीन 'ख' अन्तर : आठवी, बारहवी और सोलहवी श्रुति।
चार 'ग' अन्तर : नवी, दसवी, तेरहवी और चौदहवी श्रुति।

(७) 'ध - तार ऋषभ' :

दो 'क' अन्तर : दूसरी और पाँचवी श्रुति।
तीन 'ख' अन्तर : इक्कीसवी, तीसरी और छठी श्रुति।
चार 'ग' अन्तर : बाईसवी, पहली, चौथी और सातवी श्रुति।

महर्षि भरत ने अपने द्वारा निश्चित नौ स्वरो मे यथास्थान आनेवाले नव श्रुत्यन्तर को ही सवाद का कारण बताया है, परन्तु यह नही कहा है कि प्रत्येक श्रुति नव श्रुत्यन्तर पर स्थित श्रुति की सवादिनी होती है। बाईस श्रुतियो मे तो ऐसे नव श्रुत्यन्तरो के भी उदाहरण है, जिनमे पूर्वोक्त अन्तर सख्या न होने के कारण संवाद का अभाव है। परीक्षा कीजिए —

पाँचवीं और चौदहवी श्रुति में नौ श्रुतियो का अन्तर तो है, परन्तु परस्पर संवाद नहीं है, क्योंकि पाँचवी श्रुति के पश्चात् से चौदहवी श्रुति तक गिनने पर एक 'क' अन्तर (ग्यारहवी श्रुति पर), 'ख' अन्तर तीन बार (छठी, आठवीं और बारहवी श्रुति पर) तथा 'ग' अन्तर पाँच बार (सातवी, नवी, दसवी, तेरहवी और चौदहवीं श्रुति पर) आता है।

इस प्रकार श्रुतियों की सख्या तो नौ हो जाती है, परन्तु उनके परिमाणों की संख्या वह नहीं रहती, जो 'षड्ज-मध्यम भाव' के लिए अभीष्ट है। फलत: पाँचवीं और चौदहवी श्रुति में 'षड्जमध्यम भाव' से सवाद नही, 'श्रुतिदर्पण' पर इन दोनो श्रुतियो को छेडकर भी आप इस तथ्य को प्रमाणित कर सकते है।

मण्डल-प्रस्तार मे कई श्रुतियाँ ऐसी दिखाई देगी, जिनका सवाद उनसे नव श्रुत्यन्तर पर स्थित श्रुति के साथ नही है।

(आ) 'मण्डल-प्रस्तार' मे षड्ज-पञ्चम भाव पर विचार कीजिए, जिन दो स्वरो के त्रयोदश श्रुत्यन्तर मे 'क' अन्तर तीन, 'ख' अन्तर चार और 'ग' अन्तर छ. होते है, उन्ही दोनों स्वरो मे षड्ज-पञ्चम भाव से सवाद होता है।

(१) 'स - प' :

तीन 'क' अन्तर : पाँचवी, ग्यारहवी और पन्द्रहवी श्रुति।

चार 'ख' अन्तर : छठी, आठवी, बारहवी और सोलहवी श्रुति।
छः 'ग' अन्तर : सातवी, नवीं, दसवी, तेरहवी, चौदहवी और सत्रहवी श्रुति।

(२) 'रे - ध' :

तीन 'क' अन्तर : ग्यारहवीं, पन्द्रहवी और अठारहवी श्रुति।
चार 'ख' अन्तर : आठवी, बारहवी, सोलहवी और उन्नीसवी श्रुति।
छः 'ग' अन्तर : नवी, दसवी, तेरहवी, चौदहवी, सत्रहवी और बीसवी श्रुति

(३) 'ग - नि' :

तीन 'क' अन्तर : ग्यारहवीं, पन्द्रहवी और अठारहवी श्रुति।
चार 'ख' अन्तर : बारहवी, सोलहवी, उन्नीसवीं, इक्कीसवी श्रुति।
छः 'ग' अन्तर : दसवी, तेरहवी, चौदहवी, सत्रहवी, बीसवी और बाईसवी श्रुति।

(४) 'अन्तर - गान्धार - काकली निषाद' :

तीन 'क' अन्तर : पन्द्रहवी, अठारहवी और दूसरी श्रुति।
चार 'ख' अन्तर : सोलहवी, उन्नीसवी, इक्कीसवी और तीसरी श्रुति।
छः 'ग' अन्तर : तेरहवी, चौदहवी, सत्रहवी, बीसवी, बाईसवी और पहली श्रुति।

(५) 'म - तार षड्ज' :

तीन 'क' अन्तर : पन्द्रहवी, अठारहवी और दूसरी श्रुति।
चार 'ख' अन्तर : सोलहवी, उन्नीसवी, इक्कीसवी और तीसरी श्रुति।
छः 'ग' अन्तर : चौदहवीं, सत्रहवी, बीसवी, बाईसवीं, पहली और चौथी श्रुति।

(६) 'ध - अन्तर गान्धार' :

तीन 'क' अन्तर : दूसरी पाँचवी और ग्यारहवी श्रुति।
चार 'ख' अन्तर : इक्कीसवी, तीसरी, छठी और आठवी श्रुति।
छ· 'ग' अन्तर : बाईसवी, पहली, चौथी, सातवी, नवी और दसवी श्रुति।

(७) 'निषाद - तार मध्यम' :

तीन 'क' अन्तर : दूसरी, पाँचवी और ग्यारहवी श्रुति।
चार 'ख' अन्तर : तीसरी, छठी, आठवी और बारहवी श्रुति।
छः 'ग' अन्तर : पहली, चौथी, सातवीं, नवी, दसवी और तेरहवी श्रुति।

वाईस श्रुतियों मे नव श्रुत्यन्तर होने पर भी अनेक स्थानो पर षड्ज-मध्यम भाव का अभाव मिलता है। उसी प्रकार अनेक स्थलो मे त्रयोदश श्रुत्यन्तर होने पर भी षड्ज-पञ्चम भाव का अभाव मिलेगा।

इस वात को एक और दृष्टि से देखा जाय। षड्ज से जिन तीन श्रुतियो के अन्तर पर 'ऋषभ' स्थित है, उनके अन्तर क्रमशः 'क' 'ख' 'ग' है। यदि सातवी श्रुति पर स्थित 'ऋषभ' को थोडी देर के लिए 'षड्ज' मान लिया जाय, तो दसवी श्रुति पर इस नवीन 'षड्ज' के ऋषभ की प्राप्ति नही होगी, क्योकि आठवी, नवी और दसवी श्रुति के परिमाण क्रमश. 'ख' 'ग' 'ग' है।

सातवी श्रुति पर स्थित 'ऋषभ' से नवी श्रुति पर स्थित गान्धार का अन्तर 'ख-ग' है, परन्तु यदि हम नवी श्रुति को ऋषभ मानकर ग्यारहवी पर उसका 'गान्धार' ढूंढे, तो मिलना असम्भव है, क्योकि दसवीं और ग्यारहवीं श्रुति के परिमाण क्रमशः 'ग-क' है।

यदि हम पांचवी श्रुति को गान्धार मानकर नवी श्रुति पर उसका 'मध्यम' ढूंढें, तो उसकी प्राप्ति असम्भव है, क्योंकि छठी, सातवी, आठवी और नवी श्रुति के परिमाण क्रमश· 'ख-ग-ख-ग' है, जब कि 'गान्धार' के पश्चात् से 'मध्यम' तक प्राप्त होनेवाली दसवी, ग्यारहवी, वारहवी और तेरहवी श्रुतियो के वास्तविक परिमाण 'ग-क-ख-ग' है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी ढूंढे जा सकते है; जिनसे सिद्ध हो जायगा कि षड्जग्राम की किसी भी श्रुति को षड्ज मान लेने से अगले समस्त स्वर केवल श्रुतिसंख्या के आधार पर नही मिलेगे। अर्थात् यदि हम पाँचवी श्रुति को षड्ज मान ले, तो आठवीं पर उसका 'ऋषभ', दसवी पर 'गान्धार' और चौदहवी पर 'मध्यम' नही मिलेगा। अठारहवी पर पञ्चम मिल जायगा। क्योकि पाँचवी और अठारहवीं श्रुति में तीन 'क', चार 'ख' और छ 'ग' अन्तर होने के कारण षड्ज-पञ्चम भाव है, परन्तु इक्कीसवी पर धैवत और पहली श्रुति पर निषाद की प्राप्ति नही होगी।

कारण यह है कि वर्तमान सारणाएँ उस सप्तक को आधार मानकर की गयी है, जो षाड्जग्रामिक है और जिसका 'षड्ज' 'निषाद' से 'ग-क-ख-ग' अन्तर पर स्थित है। प्रथम श्रुति के पश्चात् से पाँचवी श्रुति तक प्राप्त होनेवाला अन्तर 'क, ख, ग, क' है, जो प्रथम श्रुति को 'निषाद' मानने पर पाँचवी श्रुति को उसकी अपेक्षा षड्ज बनाने में असमर्थ है, अत. पाँचवी श्रुति को वलात् कोई षड्ज मान भी ले, तो वर्तमान सारणा के परिणामस्वरूप प्राप्त इस श्रुति-मण्डल मे उसे अन्य अभीष्ट स्वरों की प्राप्ति नही होगी।

द्वितीय अध्याय

मूर्च्छना

मूर्च्छना की व्युत्पत्ति एवं प्रयोजन

क्रमयुक्त होने पर सात स्वर मूर्च्छना कहे जाते है।[1] 'मूर्च्छना' शब्द 'मूर्च्छ' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'मोह' और 'समुच्छ्राय' (उत्सेध, उभार, चमकना, व्यक्त होना) है[2]। मूर्च्छना शब्द में 'मूर्च्छ' धातु का अर्थ 'चमकना या उभरना' है[3]।

१– क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसंज्ञिताः।

—भरत०, ब० सं०, अ० २८, पृ० ४३५

२– मोहोच्छ्रायाभिधायी यो मूर्च्छधातुस्ततो ल्युटि।
करणार्थे मूर्च्छनेति पदमत्र समुच्छ्रये॥

—पण्डितमण्डली, भ० को०, पृ० ५०१

कुछ लोगों का कथन है कि महर्षि भरत ने सग्रहश्लोको में 'मूर्च्छना' और 'तान' का भेद बताया है। सिहभूपाल के अनुसार मतङ्ग का कथन है—

मूर्च्छनातानयोश्च भेदः प्रतिपादितो मतङ्गेन। यदाह – ननु मूर्च्छनातानयोः को भेद. ? उच्यते। मूर्च्छनातानयोर्नार्थान्तिरत्वमिति विशाखिलः। एतन्न सङ्गतम्, संग्रहश्लोके मूर्च्छनातानयोर्भेदस्य प्रतिपादितत्वात्। ननु कथं मूर्च्छनातानयोर्भेद. ? आरोहावरोहक्रमयुक्तः स्वरसमुदायो मूर्च्छनेत्युच्यते, तानस्त्वारोहक्रमेण भवतीति भेदः।

—सिहभूपाल, स० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० ११४

अर्थात्—मूर्च्छना और तान का भेद मतङ्ग ने प्रतिपादित किया है, जैसा कि कहा है–मूर्च्छना और तान में क्या भेद है ? (यदि यह प्रश्न है तो) उत्तर है कि विशाखिल ने जो कहा है कि मूर्च्छना और तान के अर्थ मे अन्तर नही, तो यह असङ्गत है, क्योकि सग्रह श्लोको में मूर्च्छना और तान का भेद प्रतिपादित किया गया है। यदि यह प्रश्न

श्रुति की 'मृदु'[४] (उतरी हुई अवस्था) को कुछ लोगो ने मूर्च्छना कहा है, कुछ लोगों का कथन है कि रागरूपी अमृत के ह्रद (सरोवर) मे गायकों और श्रोताओ के हृदय का

हो कि मूर्च्छना और तान मे भेद कैसे है ? तो उत्तर है कि आरोह एवं अवरोह के क्रम से 'मर्च्छना' होती है और आरोह क्रम से 'तान'।

प्रो० रामकृष्ण कवि ने इस सम्बन्ध मे मतङ्ग का जो पाठ उद्धृत किया है, वह सिंह भूपाल के द्वारा उद्धृत पाठ से भिन्न है और निम्नलिखित है —

ननु मूर्च्छनातानयो. को भेदः ? उच्यते, मूर्च्छनातानयोरणुत्वान्तरमिति विशाखिलः। एतच्चासङ्गतम्। भरतस्य संग्रहश्लोके मूर्च्छनातानयोर्भेदस्य प्रतिपादितत्वात्। कथम् ? मूर्च्छनारोहक्रमेण तानोऽवरोहक्रमेण भवतीति भेद'।

—मतङ्ग, भ० को०, पृ० ५०२

अर्थात्—मूर्च्छना और तान मे क्या भेद है ? उत्तर है कि मूर्च्छना और तान में अणुत्व का अन्तर जो विशाखिल ने बताया है, वह ठीक नही, क्योंकि महर्षि भरत ने संग्रह श्लोक मे मूर्च्छना और तान का भेद प्रतिपादित किया है। 'किस प्रकार से ?' मूर्च्छना आरोह-क्रम से और तान अवरोह-क्रम से होती है।

पूर्वोक्त दोनो पाठो मे पर्याप्त अन्तर है। 'भरतनाट्यशास्त्र' के प्रकाशित संस्करणों मे उस संग्रह श्लोक की प्राप्ति नही होती, जिसमें मूर्च्छना और तान का उपर्युक्त भेद प्रतिपादित किया गया हो। महर्षि भरत ने तानो को मूर्च्छनाश्रित कहकर मूर्च्छना मे से एक या दो स्वरो के लोप के पश्चात् बचे हुए रूप को औडुव या षाडव 'तान' कहा है।

३—तत्र येनैव स्वरेणोच्छ्राय. प्रवर्तते, तेनैव स्वरेण यदा समाप्तिरपि भवति तदा मूर्च्छना जायते। यथा षड्जग्रामे प्रथमाया मूर्च्छनाया 'सरिगमपधनिसे'ति स्वरसन्निवेशे सति षड्जो मूर्च्छति। —नान्यदेव, भ० को०, पृ० ५०२

अर्थात्—जिस स्वर से उच्छ्राय (आरोह) होता है, उसी स्वर से जब समाप्ति भी हो, तब मूर्च्छना होती है, जैसे, षड्जग्राम मे प्रथम मूर्च्छना का स्वर सन्निवेश '**सरिगमपधनिस**' होने पर षड्ज मूर्च्छित (उभरा हुआ) होता है।

आचार्य शार्ङ्गदेव सात स्वरो के क्रमपूर्वक आरोह और अवरोह को मूर्च्छना मानते हैं, उस दशा मे 'सरिगमपधनिधपमगरेस' अवस्था मे 'षड्ज' मूर्च्छना का आरम्भक एवं समापक होने के कारण उभरता है।

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
मूर्च्छनेत्युच्यते............. ।

—स० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १०३–१०४

४—श्रुतेर्मार्दवमेव स्यान्मूर्च्छनेत्याह तुम्बुरुः। —हरिपाल, भ० को०, पृ० ५००

निमग्न होना ही मूर्च्छना'[5] है, परन्तु भरत-सङ्गीत में 'मूर्च्छना' का अर्थ सात स्वरों का क्रमपूर्वक प्रयोग ही है।

मूर्च्छनाएँ चार प्रकार की होती हैं, परन्तु इन चतुर्विध मूर्च्छनाओं के रूपो के विषय मे दो मत हो गये हैं।

एक पक्ष का कथन है—'मूर्च्छनाओ के चार प्रकार हैं, पूर्णा, षाडवा, औडुविता, साधारणा।[6]

५—गायतां शृण्वताञ्चापि भवेद्रागामृते ह्रदे ।
मनसो मज्जनं यत्स्यान्मूर्च्छनेत्याह कोहलः॥ —हरिपाल, भ० को०, पृ० ५००

६—यह पक्ष दत्तिल एवं मतङ्ग का है। सिंह भूपाल का कथन है—

मतङ्गदत्तिलौ तु मूर्च्छनानामन्यथा चातुर्विध्यमवादिष्टाम्। यदाह मतङ्ग—'तत्र सप्तस्वरा मूर्च्छना चतुर्विधा पूर्णा षाडवौडुविता साधारणी चेति। तत्र सप्तभिः स्वरैः या गीयते सा पूर्णा, षड्भिः स्वरैः या गीयते सा षाडवा, पञ्चभिः स्वरैः या गीयते सौडुविता, काकल्यन्तरैः स्वरैः या गीयते सा साधारणी' इति। दत्तिलोऽप्याह—

........................।
........................।
सर्वास्ताः पञ्चषट्पूर्णसाधारणकृताः स्मृताः ।
—सिंह भूपाल, स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० ११४

अर्थात्—मतङ्ग और दत्तिल ने मूर्च्छनाओ की चतुर्विधता और ही प्रकार से बतायी है। मतङ्ग का कथन है—सप्तस्वरा मूर्च्छना के पूर्णा, षाडवा, औडुविता और साधारणी (अन्तरकाकलीयुक्त) ये चार प्रकार है। सात स्वरो से गायी जानेवाली पूर्णा, छः स्वरोंवाली षाडवा, पॉच स्वरोवाली औडुविता तथा काकलीनिषाद एवं अन्तरगान्धार से युक्त साधारणी है।

दत्तिल ने भी कहा है कि वे (मूर्च्छनाएँ) पञ्चस्वरा, षट्स्वरा, पूर्णा और साधारणकृता होती हैं।

इस मत का आधार महर्षि भरत के नाट्यशास्त्र मे पाया जानेवाला यह पाठ कहा जा सकता है—

एवमेता. प्रक्रमयुताः पूर्णा. षाडवितौडुवितीकृताः साधारणकृताश्चेति चतुर्विधाश्चतुर्दश मूर्च्छनाः। .. —भरत०, व० स०, अ० २८, पृ० ४३५

अर्थात्—क्रमयुक्त ये मूर्च्छनाएँ पूर्ण, षाडवित, औडुवित एवं साधारणकृत चार प्रकार की हैं।

दूसरे पक्ष का कथन है —मूर्च्छनाएँ चार प्रकार की होती हैं, शुद्धा, अन्तरसहिता, काकलीसहिता, अन्तरकाकली सहिता।[७]

आचार्य शार्ङ्गदेव, सिंह भूपाल या कुम्भ के समक्ष महर्षि भरत का यह पाठ नही था। सिंह भूपाल ने इस मत को मतङ्ग और दत्तिल का बताया है, महर्षि भरत का नही। कुम्भ ने तो इस मत को भरतविरोधी एवं असङ्गत बताते हुए इसका खण्डन किया है।

हमारी दृष्टि से नाट्यशास्त्र में पाया जानेवाला पूर्वोक्त पाठ प्रक्षिप्त है।

७ – यह मत आचार्य शार्ङ्गदेव, पण्डितमण्डली एव कुम्भ इत्यादि का है और महर्षि भरत के अनुसार प्रतीत होता है। महर्षि का कथन है —

क्रमयुक्ताः स्वरास्सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसञ्ज्ञिताः।
षट्पञ्चकस्वरास्तासां षाडवौडुविताः स्मृताः॥
साधारणकृताश्चैव काकलीसमलंकृताः।
अन्तरस्वरसयुक्ता मूर्च्छना ग्रामयोर्द्वयोः॥

—भरत०, ब० सं०, अ० २८, पृ० ४३५

अर्थात्—क्रमयुक्त सात स्वर मूर्च्छना कहलाते है। उन मूर्च्छनाओ के षट्स्वर षाडव और पञ्चस्वर औडुवित की उत्पत्ति होती है। साधारणकृत, काकलीयुक्त, एवं अन्तरसयुक्त मूर्च्छनाएँ भी दोनो ग्रामो मे होती हैं।

यहाँ षाडवित और औडुवित शुद्ध (अविकृत स्वर) मूर्च्छनाओ से उत्पन्न होनेवाले रूप है, जिनकी सख्या चौरासी और नाम 'तान' है। ये मूर्च्छनाओ के भेद नही।

षाडवित एव औडुवित रूप शुद्ध मूर्च्छनाओ से ही बनते हैं, विकृत स्वरोवाली मूर्च्छनाओं से नही, इसी लिए मूर्च्छना के शुद्ध रूप के साथ षाडवित और औडुवित की चर्चा की गयी है। महर्षि भरत के द्वारा उपदिष्ट चौरासी ताने शुद्ध मूर्च्छनाओं से ही बनती है। यही बात आचार्य शार्ङ्गदेव ने कही है —

तानाः स्युर्मूर्च्छनाः शुद्धाः षाडवौडुवितीकृताः।

—सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० ११५

अर्थात्—शुद्ध मूर्च्छनाएँ षाडव या औडुवित किये जाने पर 'तान' कहलाती है।

कुछ और आचार्य भी यही कहते है —

एकद्विस्वरलोपेन षाडवौडुवितीकृता.।
ताना. स्युर्मूर्च्छना शुद्धाः ग्रामद्वयमुपाश्रिताः॥

—पण्डितमण्डली, म० को०, पृ० ५०१

न चैतेषां मूर्च्छनात्वमेषु यत्स्वरलोपनम्।
....

हमें दूसरा पक्ष मान्य है, क्योकि 'औडुवित' और 'पाडवित' अवस्था को महर्षि भरत ने 'तान' और सम्पूर्ण अवस्था को मूर्च्छना कहा है। सप्तस्वरता मूर्च्छना का प्रधान लक्षण है।

पड्ज-ग्राम मे सात मूर्च्छनाएँ होती है। उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्धषड्जा, मत्सरीकृता, अश्वक्रान्ता और अभिरुद्गता।[८] इनके आरम्भिक स्वर क्रमश. षड्ज, निपाद, धैवत, पञ्चम, मध्यम, गान्धार और ऋषभ है।[९]

अर्थात्—[१०]

१. उत्तरमन्द्रा	स	रे	ग	म	प	ध	नि
२. रजनी	नि़	स	रे	ग	म	प	ध
३. उत्तरायता	ध़	नि़	स	रे	ग	म	प
४. शुद्धषड्जा	प़	ध़	नि़	स	रे	ग	म
५. मत्सरीकृता	म़	प़	ध़	नि़	स	रे	ग
६. अश्वक्रान्ता	ग़	म़	प़	ध़	नी़	स	रे
७. अभिरुद्गता	रे़	ग़	म़	प़	ध़	नि़	स

तस्मात्सप्तस्वरैर्युक्ता मूर्च्छनोक्ता मनीपिभिः।
पट्पञ्चस्वरकास्तानाः भिद्यन्तेऽतः पृथक् ततः।
.....................पाडवौडुवितीकृता.।
पृथक् चतुरशीतिः स्युरेवं पट्त्रिंशता युतम्।
शतत्रयं भवेयुस्ते न चैवं मुनिसम्मतम्।
तानाश्चतुरशीतिः स्युरिति तद्वचनं यतः।
विकृतस्वरलोपोऽतो नात्र विद्भिश्चिकीर्पितः।
प्रामाण्यान्मुनिवाक्यस्य शुद्धा एवात्र सम्मताः॥

—कुम्भ, भ० को०, पृ० २४४

८—आदावुत्तरमन्द्रा स्याद्रजनी चोत्तरायता। चतुर्थी शुद्धषड्जा च पञ्चमी मत्सरीकृता॥ अश्वक्रान्ता तथा षष्ठी सप्तमी चाभिरुद्गता। षड्जग्रामाश्रिता ह्येता विज्ञेया. सप्त मूर्च्छनाः॥ —भरत० व० स०, पृ० ४३४

९—आसा षड्जनिपादधैवतपञ्चममध्यमगान्धारर्षभाद्या. स्वराः। —भरत०, व० स०. पृ० ४३४

१०—तत्र षड्जग्रामे षड्जेनोत्तरमन्द्रा, निषादेन रजनी, धैवतेनोत्तरायता, पञ्चमेन शुद्धषड्जा, मध्यमेन मत्सरीकृता, गान्धारेणाश्वक्रान्ता, ऋषभेणाभिरुद्गता इति। —भरत, व० सं०, पृ० ४३४

मध्यमग्राम में भी सात मूर्च्छनाएँ हैं, सौवीरी, हारिणाश्वा, कलोपनता, शुद्ध-मध्या, मार्गी, पौरवी और हृष्यका।[11] इनके आरम्भक स्वर क्रमशः मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, निषाद, धैवत, पञ्चम हैं।[12]

अर्थात् —[13]

१. सौवीरी	म	प	ध	नि	स	रे	ग
२. हारिणाश्वा	ग	म	प	ध	नि	स	रे
३. कलोपनता	रे	ग	म	प	ध	नि	स
४. शुद्धमध्या	स	रे	ग	म	प	ध	नि
५. मार्गी	नि़	स	रे	ग	म	प	ध
६. पौरवी	ध़	नी़	स	रे	ग	म	प
७. हृष्यका	प़	ध़	नि	स	रे	ग	म

एक मूर्च्छना की सिद्धि दो प्रकार से होती है। षड्ज-ग्राम में यदि गान्धार की दो श्रुतियाँ चढ़ाकर उसे 'धैवत' मान लिया जाय, तो उसमें मध्यम-ग्राम की सभी शुद्ध मूर्च्छनाएँ मिल जायंगी।[14]

नवतन्त्री पर ग्रामसिद्धि के समय भी यह सत्य स्पष्ट किया जा चुका है। मण्डल-प्रस्तार मे इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

११—सौवीरी हारिणाश्वाथ स्यात्कलोपनता तथा।
शुद्धमध्या तथा चैव मार्गी स्यात् पौरवी तथा॥
हृष्यका चेति विज्ञेया सप्तमी द्विजसत्तमाः।
मध्यमग्रामजा ह्येता विज्ञेयाः सप्त मूर्च्छना॥
—भरत, व० सं०, पृ० ४३४–४३५

१२—आसां मध्यमगान्धारर्षभषड्जनिषादधैवतपञ्चमा आनुपूर्व्याद्याः स्वरा.।
—भरत०, व० सं०, पृ० ४३५

१३—अथ मध्यमग्रामे-मध्यमेन सौवीरी, गान्धारेण हारिणाश्वा, ऋषभेण कलोपनता, षड्जेन शुद्धमध्यमा, निषादेन मार्गी, धैवतेन पौरवी, पञ्चमेन हृष्यका इति।
—भरत०, व० सं०, पृ० ४३५

१४—द्विविधैकमूर्च्छनासिद्धि.। तथा द्विश्रुतिप्रकर्षाद् धैवतीकृते गान्धारे मूर्च्छना-ग्रामयोरन्यतरत्वं षड्जग्रामे।
—भरत०, व० सं०, (का० सं०), अ० २८, पृ० ४३५

इस मण्डल-प्रस्तार में आपको दोनों ग्राम दृष्टिगोचर होगे। मध्यम-ग्रामीय स्वर त्रिकोणों मे दिखाये गये है।

ग्यारहवी श्रुति भरतोक्त अन्तरगान्धार का स्थान है, जहाँ मध्यमग्राम का 'धैवत' है।

इस प्रकार हम देखते है कि षड्जग्राम के अन्तरगान्धार को धैवत मान लेने पर षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना ही मध्यमग्राम की प्रथम मूर्च्छना वन जाती है।

इस वात को यो भी कहा जा सकता है कि मध्यमग्राम के धैवत को दो श्रुति उतार कर उसे 'गान्धार' की संज्ञा दे देने पर मध्यमग्रामीय प्रथम मूर्च्छना ही षड्जग्रामीय प्रथम मूर्च्छना वन जायगी।[१५] इस क्रिया मे मध्यमग्रामीय निषाद, धैवत द्वारा परित्यक्त दो श्रुतियाँ ले लेने के कारण उत्कर्षयुक्त होकर षड्जग्रामीय मध्यम वन जाता है।

१५—मध्यमग्रामेऽपि धैवतमार्दवात् निषादोत्कर्षाद् द्वैविध्यं भवति।

—भरत०, व० स०, अ० २८, पृ० ४३५

द्विग्रामीय मण्डल-प्रस्तार भी हमें बताता है कि एक ग्राम का जो स्वर इस क्रिया के परिणामस्वरूप दूसरे ग्राम के जिस स्वर का स्थान ग्रहण करता है, उसके साथ उस स्वर का संवाद होता है। बदली हुई संज्ञावाले स्वर मे भी श्रुतियाँ प्राय. उतनी ही होती है, जितनी श्रुतियाँ कि पूर्वसंज्ञावाले स्वर मे होती है।[१६] मध्यम-ग्राम के पञ्चम और धैवत में चार श्रुतियों का अन्तर होता है,[१७] जब षड्जग्रामीय ऋषभ की संज्ञा मध्यमग्रामीय पञ्चम हो जाती है, तब षड्जग्रामीय गान्धार की दो श्रुतियाँ चढा देने से अन्तर-गान्धारवाली श्रुति पर मध्यमग्रामीय चतु श्रुतिक धैवत प्राप्त हो जाता है।[१८] षड्जग्रामीय मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद, षड्ज भी मध्यमग्रामीय निषाद, षड्ज, ऋषभ, गान्धार एवं षड्ज बन जाते हैं।[१९]

निम्नलिखित सारणी मे परस्पर प्रतिनिधित्व-जन्य सवाद स्पष्ट है। षड्जग्राम के स्वर का स्थान ग्रहण करनेवाले मध्यमग्रामीय स्वरो के साथ षड्ज-ग्रामीय स्वरो का षड्ज-मध्यम भाव से संवाद है।

ग्रामद्वय-बोधक सारणी

षड्जग्राम से मध्यमग्राम

षड्ज-मध्यमभाव (नवश्रुत्यन्तरसंवाद)	षड्ज-ग्रामीय संज्ञाएँ	मध्यमग्रामीय संज्ञाएँ	श्रुतिसंख्या (मध्यम-ग्रामीय)	मध्यमग्राम मे प्राप्त श्रुतिक्रम
षड्ज-मध्यम	स	म	४	'ग, क, ख, ग'
ऋषभ-पञ्चम	रि	प	३	'क, ख, ग'
अन्तरगान्धार-धैवत	अ० गा०	ध	४	'ख, ग, ग, क'
मध्यम-निषाद	म	नि	२	'ख, ग'
पञ्चम-षड्ज	प	स	४	'ग, क, ख, ग'
धैवत-ऋषभ	ध	रे	३	'क, ख, ग'
निषाद-गान्धार	नि	ग	२	'ख,ग'

१६—तुल्यश्रुत्यन्तरत्वात् संज्ञान्यत्वम्। —भरत०, ब० सं० अ० २८, पृ० ४३५

१७—चतुःश्रुतिकमन्तरं पञ्चम-धैवतयोः। " " " "

१८—तद्वद्गान्धारोत्कर्षाच्चतुःश्रुतिकमेव भवति। " " " "

१९—शेषाश्चापि मध्यमपञ्चमधैवतनिषादषड्जर्षभा मध्यमादित्वं (निषादादित्वं ?) प्राप्नुवन्ति। —भरत०, ब० सं०, अ० २८, पृ० ४३५

जिन दो स्वरो में वीस श्रुतियों का अन्तर हो, वे परस्पर विवादी होते हैं[२०] और कदापि परस्पर प्रतिनिधित्व नही करते। ग्रामद्वयवोधक श्रुतिमण्डलप्रस्तार से यह स्पष्ट है कि ऋषभ 'गान्वार' से और धैवत 'निपाद' से वीसवीं श्रुति पर स्थित है, इसी लिए 'गान्वार-ऋषभ' परस्पर विवादी हैं और 'निपाद-धैवत' भी।

शुद्ध गान्धार और धैवत परस्पर ग्यारह श्रुतियों के अन्तर पर स्थित होने के कारण संवादी नही हैं, फलत. पड्जग्राम से मध्यमग्राम वनाने में गान्वार को दो श्रुति चढाकर धैवत के साथ उसका नव श्रुत्यन्तर सवाद वनाना पड़ता है, तव वह 'अन्तरगान्वार' संज्ञा-परिवर्तन होने पर मध्यमग्रामीय धैवत वनता है।

अन्तरगान्धार का एक महत्त्व और भी है, अन्तर स्वर होने के कारण वह हमें 'श्रुति' की प्राप्ति कराता है।

ग्रामसिद्धि मे हम देख चुके हैं कि हमे पड्ज से मध्यम, मध्यम से निषाद और निपाद से गान्वार की प्राप्ति हो जाती है। धैवत की प्राप्ति हमें तव होती है, जव हम पड्ज का आश्रय पुनः लेकर अन्तर गान्धार की सिद्धि स्वतन्त्र रूप से करते हैं। फलत. गान्धार से धैवत और धैवत से ऋषभ की प्राप्ति होती है।

ऋपभ की प्राप्ति होने पर ही प्रथम सारणा सम्भव होती है, क्योकि मध्यमग्रामीय पञ्चम का निर्माण ऋपभ के साथ उसका संवाद करने पर ही सम्भव होता है और 'प्रमाणश्रुति' की प्राप्ति होती है। इसी लिए अन्तर स्वर 'श्रुति' तक पहुँचानेवाले कहे गये हैं।[२१]

'श्रुति' की प्राप्ति का एक उपाय और भी है, परन्तु पड्जान्तर-भाव का आश्रय हमे उस अवस्था मे भी लेना पडता है। पञ्चम से षड्जान्तर-भाव के आधार पर काकली-निपाद की सिद्धि, उससे पड्ज-मध्यम-भाव के आधार पर अन्तरगान्धार की सिद्धि और तत्पश्चात् धैवत और ऋषभ की सिद्धि करने पर प्रमाणश्रुति की प्राप्ति सम्भव है, परन्तु यह द्रविड-प्राणायाम है।

पड्जान्तर भाव के आधार पर मध्यम से धैवत और निषाद से ऋपभ की सीधी सिद्धि भी सम्भव है। तात्पर्य यह है कि 'प्रमाणश्रुति' की प्राप्ति के लिए पड्जान्तर भाव का आश्रय हमे लेना ही पडता है।

२०–विवादिनस्तु ये तेपा स्याद् विंशतिकमन्तरम्।
—भरत०, व० सं०, अ० २८, पृ० ४३२

२१–जातिरागं श्रुतिञ्चैव नयन्ते चान्तरस्वराः।
—भरत, व० सं०, अ० २८, पृ० ४३७

गान्धार से-षड्जान्तर-भाव के आधार पर भी हमें त्रिश्रुतिक पञ्चम प्राप्त हो सकता है, क्योंकि त्रिश्रुतिक पञ्चम गान्धार के पश्चात् सात श्रुतियो के अन्तर पर है।

तान —

मूर्च्छनाओं पर आश्रित तानें चौरासी हैं, उनमे उनचास षाडव और पैंतीस औडुव है। (शुद्ध मूर्च्छनाओ की संख्या सात होने के कारण) षड्जग्राम में षाडव मूर्च्छनाओ का लक्षण सात प्रकार का है। जैसे, षड्जग्राम मे षड्ज, ऋषभ, पञ्चम और निषाद से रहित चार तानें हैं।[22]

मध्यमग्राम में षड्ज, ऋषभ और गान्धार से हीन तीन तानें हैं। इस प्रकार सब मूर्च्छनाओं मे की जानेवाली ये (षाडव) तानें उनचास होती है,[23] जो निम्न-लिखित है —

उत्तरमन्द्रा —

१.	×	रे	ग	म	प	ध	नि
२.	स	×	ग	म	प	ध	नि
३.	स	रे	ग	म	×	ध	नि
४.	स	रे	ग	म	प	ध	×

रजनी —

५.	नी	×	रे	ग	म	प	ध
६.	नी	सा	×	ग	म	प	ध
७.	नी	सा	रे	ग	म	×	ध
८.	×	सा	रे	ग	म	प	ध

उत्तरायता —

९.	ध	नी	×	रे	ग	म	प
१०.	ध	नी	स	×	ग	म	प

२२–मूर्च्छनासंश्रितास्तानाश्चतुरशीतिः। तत्र एकोनपञ्चाशत् षट्स्वरा, पञ्च-त्रिशत् पञ्चस्वराः। लक्षणं तु षट्स्वराणां सप्तविधम्। यथा षड्जर्षभगान्धार-हीनाश्चत्वारस्ताना षड्जग्रामे।

—भरत०, व० सं०, अ० २८, पृ० ४३७

२३–मध्यमग्रामे तु षड्जर्षभगान्धारहीनास्त्रयस्ताना.। एवमेते सर्वासु मूर्च्छनासु क्रियमाणा भवन्त्येकोनपञ्चाशत्तानाः।

—भरत०, व० सं०, अ० २९, पृ० ४२६

११. ध नी स रे ग म ×
१२. ध × स रे ग म प

शुद्ध षड्जा —

१३. प ध नी × रे ग म
१४ प ध नी सा × ग म
१५. × ध नी सा रे ग म
१६. प ध × सा रे ग म

मत्सरीकृता —

१७. म प ध नी × रे ग
१८. म प ध नी सा × ग
१९. म × ध नी सा रे ग
२०. म प ध × सा रे ग

अश्वक्रान्ता —

२१. ग म प ध नी × रे
२२. ग म प ध नी स ×
२३. ग म × ध नी स रे
२४. ग म प ध × स रे

अभिरुद्गता —

२५. रे ग म प ध नी ×
२६. × ग म प ध नी स
२७. रे ग म × ध नी स
२८. रे ग म प ध × स

सौवीरी (मध्यमग्राम) —

२९ म प ध नी × रे ग
३०. म प ध नी स × ग
३१. म प ध नी स रे ×

हारिणाश्वा —

३२. ग म प ध नी × रे
३३. ग म प ध नी स ×
३४. × म प ध नी स रे

कलोपनता —

३५. रे ग म प ध नी ×
३६. × ग म प ध नी स
३७. रे × म प ध नी स

शुद्धमध्या —

३८. × रे ग म प ध नि
३९. स × ग म प ध नि
४०. स रे × म प ध नि

मार्गी —

४१. नी × रे ग म प ध
४२. नी सा × ग म प ध
४३. नी सा रे × म प ध

पौरवी —

४४. ध नी × रे ग म प
४५. ध नी स × ग म प
४६. ध नी स रे × म प

ह्रष्यका —

४७. प ध नी × रे ग म
४८. प ध नी स × ग म
४९. प ध नी स रे × म

पाँच स्वरवाली तानो का लक्षण पाँच ही प्रकार का है। जैसे, पड्जग्राम में "पड्ज-पञ्चम-हीन', 'ऋषभ-पञ्चम-हीन' और 'गान्धार-निपाद-हीन' तीन तानें (एक मूर्च्छना में) होती है। मध्यमग्राम (की एक मूर्च्छना) मे 'गान्धार-निपाद-हीन' और 'ऋपभ-धैवत-हीन' दो तानें होती है। इस प्रकार सब मूर्च्छनाओ मे बनायी जानेवाली औडुव ताने पैंतीस होती है, पड्जग्राम मे इक्कीस और मध्यमग्राम मे चौदह ।[२४] इनके रूप निम्नलिखित है —

२४–पञ्चस्वराणां तु पञ्चविधमेव लक्षणम्। यथा पड्जपञ्चमहीना ऋपभ-पञ्चमहीना गान्धारनिपादहीना इति त्रयस्तानाः पड्जग्रामे। मध्यमग्रामे तु गान्धारनिपादवद्धीनावृषभधैवतहीनाविति द्वौ तानौ। एवं पञ्चस्वराः

उत्तरमन्द्रा —

१.	×	रे	ग	म	×	ध	नि
२.	स	×	ग	म	×	ध	नि
३.	स	रे	×	म	प	ध	×

रजनी —

४.	नी	×	रे	ग	म	×	ध
५.	नी	स	×	ग	म	×	ध
६.	×	स	रे	×	म	प	ध

उत्तरायता —

७.	ध	नी	×	रे	ग	म	×
८.	ध	नी	स	×	ग	म	×
९.	ध	×	स	रे	×	म	प

शुद्धषड्जा —

१०.	×	ध	नी	×	रे	ग	म
११.	×	ध	नी	स	×	ग	म
१२.	प	ध	×	स	रे	×	म

मत्सरीकृता —

१३.	म	×	ध	नी	×	रे	ग
१४.	म	×	ध	नी	स	×	ग
१५.	म	प	ध	×	स	रे	×

अश्वक्रान्ता —

१६.	ग	म	×	ध	नी	×	रे
१७.	ग	म	×	ध	नी	स	×
१८.	×	म	प	ध	×	स	रे

अभिरुद्गता —

१९.	रे	ग	म	×	ध	नी	×
२०.	×	ग	म	×	ध	नी	स
२१.	रे	×	म	प	ध	×	स

सर्वासु मूर्च्छनासु क्रियमाणास्ताना. पञ्चत्रिंशद् भवन्ति । षड्जग्रामे एकविंशति-र्मध्यमग्रामे चतुर्दश । —भरत, व० सं०, अ० २८

सौवीरी (मध्यमग्राम) —

२२.	म	प	ध	×	स	रे	×
२३.	म	प	×	नी	स	×	ग

हारिणाश्वा —

२४.	×	म	प	ध	×	स	रे
२५.	ग	म	प	×	नि	स	×

कलोपनता —

२६.	रे	×	म	प	ध	×	स
२७.	×	ग	म	प	×	नि	स

शुद्धमध्या —

२८.	स	रे	×	म	प	ध	×
२९.	स	×	ग	म	प	×	नि

मार्गी —

३०.	×	स	रे	×	म	प	ध
३१.	नि	स	×	ग	म	प	×

पौरवी —

३२.	ध	×	स	रे	×	म	प
३३.	×	नि	स	×	ग	म	प

हृष्यका —

३४.	प	ध	×	स	रे	×	म
३५.	प	×	नि	स	×	ग	म

इस प्रकार उनचास पाडव तानो और पैंतीस औड़ुव तानो को जोड़ने से तानो की सख्या चौरासी होती है।[२५]

पड्जग्राम मे धैवत, मध्यमग्राम में पञ्चम एवं दोनो ग्रामों में मध्यम का लोप नही होता। मध्यम का लोप कदापि न होने के कारण उसे 'अविलोपी' या 'अविनाशी' कहा गया है।[२६]

२५–एवमेत एकत्र गम्यमानाश्चतुरशीतिर्भवन्ति। —भरत, व० सं०, पृ० ४३६

२६–न मध्यमस्य नाशस्तु कर्तव्यो हि कदाचन। सप्तस्वराणां प्रवरो ह्यनाशी चैव मध्यमः॥ —भरत०, व० सं०, अ० २८, पृ० ४४२

पञ्चमं मध्यमग्रामे पड्जग्रामे तु धैवतम्। अलोपिनं विजानीयात्सर्वत्रैव तु मध्यमम्॥ —दत्तिल मुनि, सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, सिह० पृ० १०३

मूर्च्छनाओं का प्रयोजन

हम यह देख चुके हैं कि 'मूर्च्छनाएँ' तानो को जन्म देती हैं, परन्तु मूर्च्छनाओ और तदाश्रित तानों का प्रयोजन कुछ और भी है। इसे भली भाँति जानने के लिए प्राचीन वीणाओं के विषय में कुछ जान लेना आवश्यक है।

प्राचीन काल मे दो प्रकार की वीणाएँ होती थी —

(१) वे, जिनमे एक तार पर तीनों सप्तकों के इक्कीसो स्वर प्रत्यक्ष किये जाते थे।

(२) वे, जिनमे प्रत्येक स्वर के प्रत्यक्षीकरण के लिए अलग-अलग तार होते थे।

प्रथम प्रकार की वीणाओ में आदिम वीणा[२७] 'एकतन्त्री' में एक तार होता था, जैसा कि उसके नाम से प्रकट है। एकतन्त्री वीणा के दूसरे नाम 'ब्रह्मवीणा',[२८] 'घोषक'[२९], 'घोषा'[३०] भी हैं। एकतन्त्री वीणा मे पर्दे नही होते थे, जिस प्रकार आज 'सारङ्गी' या 'सरोद' मे पर्दे नही होते। जिस प्रकार आज 'विचित्र वीणा' में स्वरो की सारणा वट्टे से की जाती है, उसी प्रकार एकतन्त्री में स्वरो की सारणा बाँस की बनी हुई एक बारह अंगुल की सलाई से की जाती थी, जिसे 'कम्रिका' कहा जाता था।[३१]

एकतन्त्री में पर्दे न होने के कारण सूक्ष्म से सूक्ष्म ध्वनियाँ सरलतापूर्वक निकाली जा सकती थी,[३२] यह सुविधा उन वीणाओं में न थी, जिनमे प्रत्येक स्वर के लिए अलग-अलग तार थे। एकतन्त्री पर तीनों सप्तको का प्रत्यक्षीकरण पूर्णतया सम्भव था।

२७—प्रकृतिस्सर्ववीणानामेषा श्रीशार्ङ्गिणोदिता।
—आचार्य शार्ङ्ग०, सं० र०, अ० सं०, वाद्या०, पृ० २३७

२८—इयं ब्रह्मवीणेत्यपि कथ्यते। —नान्यदेव, भ० को०, पृ० ८९

२९—घोषकश्चैकतन्त्रिका। —आ० शार्ङ्ग०, सं० र०, अ० सं०, वाद्या०, पृ० २४८

३०—इदमेकतन्त्र्या वीणाया नामान्तरम्। —श्रीकण्ठ, भ० को०, पृ० १९४

३१—शलाका वेणुनिर्वृत्तां द्वादशाङ्गुलमात्रिकाम्।
वामहस्तकनिष्ठाया पृष्ठे विन्यस्य तत्परम्॥
संवेष्ट्यानामिकाङ्गुल्या तर्जन्यङ्गुष्ठकस्ततः।
सम्पीड्य गाढमनया वादयेदखिलान् स्वरान्॥
—हरिपाल, भ० को०, पृ० ४२७

३२—श्रुतयोऽथ स्वरा मूर्च्छास्ताना नानाविधास्तथा।
एकतन्त्रीकवीणाया सर्वमेतत्प्रतिष्ठितम्॥
समुदायोऽस्ति नान्यत्र मतङ्गोऽप्याह तत्तथा।
... एकतन्त्र्यां स्वयमेवास्ति सरस्वतीति॥ —नान्यदेव, भ० को०, पृ० ८९

'मत्त-कोकिला' वीणा तीनो सप्तको अर्थात् स्थानों की दृष्टि से पूर्ण थी। इसमे इक्कीस तार होते थे। सात-सात तारो पर क्रमश: एक-एक सप्तक मिला रहता था।

'जाति' या 'राग' के वादन मे मन्द्रस्थान मे जाने की परावधि और तारस्थान में जाने की परावधि 'मत्तकोकिला' और 'एकतन्त्री' मे प्राप्त हो सकती थी।

कल्पना कीजिए कि किसी 'जाति' या 'राग' मे 'पड्ज' अंश स्वर है तो मन्द्र षड्ज[33] उस 'जाति' मे मन्द्रस्थान मे जाने की अन्तिम अवधि तथा पड्ज से सप्तम अर्थात् निपाद तारस्थान मे जाने की अन्तिम अवधि था।[34] मन्द्र और तार स्थान की ये दोनो पराकाष्ठाएँ 'मत्तकोकिला' पर उस समय सरलतापूर्वक सम्भव है, जब कि तीनो सप्तको मे 'षड्जादि' मूर्च्छना उस पर मिली हुई हो।

इसी प्रकार 'ऋषभ' अशवाली 'जाति' के वादन मे मन्द्र और तार स्थान मे भरतोक्त पराकाष्ठा की प्राप्ति तभी सम्भव थी, जब मत्तकोकिला के इक्कीस तार ऋषभादि (रे, ग, म, प, ध, नि, स—रे, ग, म, प, ध, नि, स—रे, ग, म, प, ध, नि, स) मूर्च्छना मे मिले हो। एक 'जाति' के 'अश' स्वर कई हो सकते थे और उनके अनुसार मूर्च्छना परिवर्तित होती थी। मत्तकोकिला वीणा मे मन्द्र एवं तार स्थान की पराकाष्ठाओं का मिलना सम्भव था। मन्द्र-तार-नियमों मे विकल्प भी किया गया था। इस सम्बन्ध में 'मन्द्र' स्थान की अवधि 'न्यास' और 'अपन्यास'[35] स्वर को भी मान लिया गया और तारस्थान मे अश स्वर से चौथे या पाँचवें स्वर[36] को भी तारावधि मान लिया गया। फलत: मन्द्र और तारावधियो मे सकोच हो गया।

अस्तु, इस प्रकार हम देखते है कि 'जाति' या 'राग' के प्रयोग मे मन्द्र और तार सप्तक में प्रयोज्य अवधियो का निर्णायक 'अंश'[37] स्वर है। मूर्च्छनाओं का आश्रय लेने से

३३—मन्द्रस्त्वशपरो नास्ति। —भरत०, ब० स०, अ० २८, पृ० ४४३

३४—सप्तमाद् वा नात. परमिहेष्यते। —भरत०, सं० र०, अ० स०, स्वरा०, कल्लि० पृ० १८५

३५—त्रिविधा मन्द्रगतिः, अंशपरा न्यासपरा अपन्यासपरा च।
—भरत०, ब० सं०, अ० २८, पृ० ४४३

३६—अंशात्तारगतिं विद्यादाचतुर्थस्वरादिह।
आपञ्चमात्सप्तमाद् वा नात. परमिहेष्यते॥
—भरत०, सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, कल्लि०, पृ० १८५

३७—रागश्च यस्मिन् वसति यस्माच्चैव प्रवर्तते।
नेता च तारमन्द्राणां योऽत्यर्थमुपलभ्यते॥

मन्द्र और तार अवधियो की प्राप्ति हो जाती है और 'वादक' एवं श्रोता को सुविधा या सुख की प्राप्ति होती है।[३८] किसी विशेप जाति के लिए विशेप मूर्च्छना की बात महर्पि भरत के विधान के अनुसार नही उठती। जातिविशेष में प्रयोज्य मन्द्र और तार अवधियो के विकल्प के अनुसार स्थापनीय मूर्च्छनाओ मे 'विकल्प' वादक कर सकता था।

पश्चाद्वर्ती आचार्यों ने एक जाति के लिए एक 'मूर्च्छनाविशेष' का निर्देश किया, क्योंकि महर्पि भरत के पश्चात् मन्द्रावधि[३९] और तारावधि[४०] वाले नियमो में शिथिलता आ गयी थी और वादक को यह स्वतन्त्रता मिल गयी थी कि वह इन दोनों स्थानोमें इच्छापूर्वक (जहाँ तक चाहे) जाय।[४१]

फलत. एक नियम निश्चित किया गया कि 'जाति' में अशवाहुल्य (अशों की बहुलता) को देखकर मूर्च्छना का निश्चय वुद्धिमानो को स्वयं कर लेना चाहिए,[४२] अर्थात् जाति में निर्दिष्ट अनेक अंशस्वरों को देखते हुए ऐसी मूर्च्छना मिलानी चाहिए कि किसी भी स्वर को अंश मानकर जाति का वादन किया जाय, तो यथासम्भव मन्द्र एव तार स्वर मिल सकें।

इस वात का परिणाम यह हुआ कि विशेप जाति के लिए आचार्यो ने विशेप मर्च्छना निर्दिष्ट की, परन्तु इसका परिणाम वैसा सन्तोपप्रद नही हुआ, जैसा कि होना चाहिए था, तथा पश्चाद्वर्ती अन्य आचार्यों ने जातिवादन के समय मूर्च्छना निश्चित करने का कार्य वादको पर छोड़ दिया।

इस विपय पर कुछ विस्तृत विचार की आवश्यकता को देखते हुए हम मतङ्ग के मूर्च्छनासम्वन्धी मत एवं उस पर अन्य आचार्यो की प्रतिक्रिया देखेंगे।

ग्रहापन्यासविन्यासर्संन्यासन्यासयोगत॰　　।
अनुवृत्तश्च यश्चेह सोऽशः स्याद् दशलक्षण. ॥
—भरत०, सं० र०, अ० स०, स्वरा०, कल्लि०, पृ० १८२

३८—इत्थं प्रयोक्तुः श्रोतु. सुखार्थ तानमूर्च्छनातत्त्वम्। मूर्च्छनाप्रयोजनमपि स्थानप्राप्ति.। —भरत०, व० सं०, अ० २८, पृ० ४३६

३९—ततोऽर्वाक् कामचारिता। —शार्ङ्गदेव, स० र०, स्वरा०, अ० सं०, पृ० १८६

४०—अर्वाक् तु कामचारः स्यात्। —शार्ङ्गदेव, स० र०, स्वरा०, अ० स०, पृ० १८४

४१—उक्तावधेरर्वाङ न्यूनताया कामचारिता गातुरिच्छयाऽशक्त्या वाऽप्रवर्तमानत्वम्।
—कल्लिनाथ, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १८६-१८७

४२—ज्ञात्वा जात्यशवाहुल्यं निर्देग्या मूर्च्छना वुधै.।
—कश्यप, स० र०, अ० सं०, रागा०, कल्लि०, पृ० ३२

द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद

प्राचीन आचार्य, अर्थात् महर्षि भरत और उनके अनुयायी, मूर्च्छनाओ का प्रयोजन कण्ठ तथा तन्त्रीवाद्यो पर जातिविशेष या रागविशेष मे प्रयोज्य मन्द्र, मध्य एवं तारस्थानो की प्राप्ति मानते थे, परन्तु मतङ्ग ने मूर्च्छना मे राग की सिद्धि भी ढूंढ़नी चाही ।[४३] उनका तात्पर्य था कि मूर्च्छना मे मन्द्र तथा तारस्थान के भी कुछ स्वर सम्मिलित होने चाहिए। मन्द्र और तार स्वरो के दर्शन से ही राग की सिद्धि हो सकती है, फलत: मूर्च्छना मे बारह स्वर होने चाहिए ।[४३]

इस दृष्टिकोण से आचार्य मतङ्ग ने महर्षि भरत की मूर्च्छनाओं मे पहले या पीछे कुछ अन्य स्वर जोड़े। परिणामत मतङ्ग की मूर्च्छनाओ का स्वरूप निम्नलिखित[४४] हो गया—

१. उत्तरमन्द्रा	ध	नी	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स	रे	ग
२. रजनी	नी	स	रे	ग	म	प	ध	नी	स	रे	ग	म
३. उत्तरायता	स	रे	ग	म	प	ध	नी	स	रे	ग	म	प
४. शुद्धषड्जा	रे	ग	म	प	ध	नी	स	रे	ग	म	प	ध
५. मत्सरीकृता	ग	म	प	ध	नी	स	रे	ग	म	प	ध	नि
६. अश्वक्रान्ता	म	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
७. अभिरुद्गता	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स	रे

मध्यमग्राम[४५]

१. सौवीरी	नि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स	रे	ग	म
२. हारिणाश्वा	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प

४३—मूर्च्छते येन रागो हि मूर्च्छनेत्यभिसञ्ज्ञिता । —मतङ्ग, भ० को०, पृ० ५०१

यद्यप्याचार्य्यैः सप्तस्वरमूर्च्छना. प्रतिपादिता: । स्थानत्रितयप्राप्त्यर्थं द्वादशस्वररेव मूर्च्छना. प्रयुक्ता ।......एव च सति रागसिद्धिः स्यात् ।

—मतङ्ग, भ० को०, पृ० २८९

४४—तेन 'धनिसरेगमपधनिसरेग' इत्युत्तरमन्द्रा । 'निसरिगमपधनिसरेगम' इति रजनी । 'सरिगमपधनिसरिगमप' इत्युत्तरमन्द्रा । एवं क्रमात् शुद्धषड्जा, मत्सरीकृता, अश्वक्रान्ता, अभिरुद्गता च जायन्ते । —मतङ्ग, भ० को०, पृ० २८९

४५—मध्यमग्रामे तु एवमेव 'निसरेगमपधनिसारेगम' सौवीरी । 'सरिगमपधनि-

३. कलोपनता	रे	ग	म	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प	ध
४. शुद्धमध्या	ग	म	प	ध	नी	स	रे	ग	म	प	ध	नी
५. मार्गी	म	प	ध	नी	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
६. पौरवी	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स	रे
७. हृष्यका	ध	नी	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स	रे	ग

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि महर्षि भरत की मूर्च्छनाओं का क्रम अवरोहोन्मुख है, अर्थात् उनकी षाड्जग्रामिक मूर्च्छनाएँ क्रमशः 'स, नि, ध, प, म, ग, रे,' तथा माध्यमग्रामिक मूर्च्छनाएँ क्रमशः 'म, ग, रे, स, नि, ध, प' से आरम्भ होती हैं। परन्तु मतङ्ग की मूर्च्छनाओं का क्रम आरोहोन्मुख है, अर्थात् उनकी द्वादशस्वर-मूर्च्छनाएँ षड्जग्राम में क्रमशः 'ध, नि, स, रे, ग, म, प' और मध्यमग्राम में 'नी, स, रे, ग, म, प, ध' से आरम्भ होती हैं।

इस क्रम-विरोध के परिणामस्वरूप महर्षि भरत की अश्वक्रान्ता और हृष्यका मूर्च्छनाओं के पूर्ण रूप मतङ्ग की मूर्च्छनाओं में नहीं मिलते। द्वादशस्वर-मूर्च्छनाओं में स्थूलाक्षरों में मुद्रित स्वर महर्षि भरत की मूर्च्छनाओं का मूल रूप प्रकट करते हैं।

पश्चाद्वर्ती आचार्यों ने 'द्वादश-स्वर-मूर्च्छनावाद' का खण्डन करते हुए उस पर निम्नलिखित आक्षेप किये—[४६]

(क) मूर्च्छना का लक्षण क्रमशः आरोह-अवरोह है, द्वादशस्वर 'उत्तरमन्द्रा' का आरम्भिक स्वर धैवत है, जो किसी ग्राम के मूल सप्तक का आदिम स्वर नहीं। फलतः उत्तरमन्द्रा का धैवतादित्व किसी क्रमसम्बन्धी सिद्धान्त पर आश्रित नहीं। मध्यमग्रामीय द्वादशस्वर 'सौवीरी' का निषादादित्व भी इसी प्रकार अकारण है।

सप्तस्वर मूर्च्छनाओं में आरोह की समाप्ति के पश्चात् हमें अग्रिम स्वर अगले सप्तक में वही मिलता है, जो मूर्च्छना का आरम्भिक स्वर है, इस प्रकार क्रम बना रहता

सरेगमप' हारिणाश्वा। 'रिगमपधनिसरेगमपध' कलोपनता। एवं शुद्धमध्या मार्गी, पौरवी, हृष्यका ऊह्याः। —मतङ्ग० भ० को०, पृ० २८९

४६—अत्र या मूर्च्छनाः प्राह द्वादशस्वरसम्भवाः।
मतङ्गोऽस्य मत नैव सुन्दरं प्रतिभाति मे॥
अत्रैव कोहलाचार्य्यो नन्दिकेश्वर एव च। मतङ्गमनुसृत्यैवोचतुस्तदिह वर्ण्यते॥
द्वादशस्वरसम्पन्ना ज्ञातव्या मूर्च्छना बुधैः। अत्र प्रतिसमाधत्ते खुम्भाणकुलनन्दन.॥
—कुम्भ०, भ० को०, पृ० २८९

है। परन्तु द्वादशस्वर मूर्च्छनाओं में आरोह की समाप्ति पर अगला स्वर मूर्च्छना के आरम्भिक स्वर के अतिरिक्त ही मिलता है, फलतः क्रमभङ्ग होता है।[४७]

(ख) द्वादशस्वरमूर्च्छनावाद की स्थापना का आधार यह है कि बारह स्वरों मे जाति या राग का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। यह आधार ठीक नही, क्योंकि 'नन्दयन्ती' जाति का रूप तब तक स्पष्ट नही होता, जब तक उसमें मन्द्र, मध्य एवं तार 'ऋषभ' का प्रयोग न हो। मन्द्र ऋषभ से तार ऋषभ तक स्वरों की सख्या पन्द्रह होने के कारण किसी भी द्वादशस्वर मूर्च्छना की सीमा में 'नन्दयन्ती' की सिद्धि नही हो सकती।[४८] फलत. द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद व्यर्थ है।

(ग) षाडवित जाति मे बारह स्वरो का अर्थ दो सप्तक और औडुवित जातियो मे प्रायः ढाई सप्तक होता है। अतः द्वादशस्वरमूर्च्छना का लक्षण स्वरसंख्या के आधार पर उन स्थितियो मे भी घटित होने के कारण द्वादशस्वरमूर्च्छना तीनों सप्तको को घेरने लगेगी। यदि इस अतिव्याप्ति-दोष से बचने के लिए षाडवित और औडुवित जातियों मे लुप्तस्वरों की भी गणना की जाय, तो लोप्य स्वरो को धारण करने के कारण मूर्च्छना कुछ 'जातियो' या 'रागो' की जननी नही रहती।[४९]

(घ) महर्षि भरत की उत्तरमन्द्रा में 'स-प', 'रे-ध', 'ग-नि' मे षड्ज-पञ्चम-भाव और 'स-म' मे षड्ज-मध्यम-भाव है। इसी प्रकार उनकी माध्यमग्रामिक सौवीरी मे 'म-नि', 'ध-रे', 'नि-ग' और 'स-म' मे षड्ज-मध्यम-भाव है तथा 'प-रे' मे षड्ज-पञ्चम-भाव। अर्थात् षड्जग्राम की आधारभूत प्रथम मूर्च्छना मे षड्ज-पञ्चम-भाव एवं मध्यमग्राम की मूलभूत प्रथम मूर्च्छना मे षड्ज-मध्यम-भाव का प्राधान्य है। द्वादश-स्वर षाड्जग्रामिक प्रथम मूर्च्छना धैवतादि 'उत्तरमन्द्रा' मे आदिम स्वर धैवत के साथ मूर्च्छना का पाँचवाँ स्वर 'गान्धार' संवाद नही करता, इसी प्रकार ऋषभ, जो 'पञ्चम' से पाँचवाँ स्वर है, पञ्चम से सवाद नही करता। यदि यह कहा जाय कि द्वादश-स्वर-मूर्च्छना 'उत्तरमन्द्रा' मे 'ध-रे', 'प-स', 'नि-ग' मे षड्ज-मध्यम-भाव-संवाद मिल जाता

४७—क्रमात्स्वराणामारोहावरोहौ मूर्च्छनेति यत्।
लक्षण तद् विहन्येत क्रमादारोहणाद् ऋते॥ —कुम्भ, भ० को०, पृ० २८९

४८—यदुक्त जातिभाषादितारमन्द्रादिसिद्धये।
द्वादशस्वरगुम्फेन मूर्च्छना स्यात्प्रयोजिका।
नन्दयन्त्यां तदव्याप्ते. तत्पञ्चदशसम्भवात्॥ —कुम्भ०, भ० को०, पृ० २८९

४९—षाडवौडुवितस्यातिव्याप्तिलोप्यादिसम्भवात्। —कुम्भ०, भ० को०, पृ० २८९

है, तो यह युक्ति बलिष्ठ नहीं, क्योकि इस दशा में भी द्वादशस्वर 'उत्तरमन्द्रा' में षड्ज-पञ्चम-भाव का वह प्राधान्य नही रहता, जो षड्जग्राम की मूल मूर्च्छना के लिए अनिवार्य है।

इसी प्रकार द्वादशस्वर निषादादि 'सौवीरी' मूर्च्छना मे गान्धार को कोई परवर्ती और धैवत को कोई पूर्ववर्ती स्वर ऐसा न मिलेगा, जो षड्ज-मध्यम-भाव से सवाद करता हो, फलतः मध्यमग्राम के लिए आवश्यक षड्ज-मध्यम-भाव मध्यम-ग्रामीय द्वादशस्वर प्रथम मूर्च्छना मे न मिलेगा।[५०]

(ङ) सप्तस्वर 'उत्तरमन्द्रा' तथा 'सौवीरी' मे संवाद का क्रम उनके उच्चारण मे एक विशिष्ट रञ्जन उत्पन्न करता है। संवादक्रम का विघात होने से द्वादशस्वर उत्तरमन्द्रा एवं सौवीरी के उच्चारण मे वैसा रञ्जन नहीं रहता।[५१]

(च) 'जाति' या 'राग' के निर्माण में कुछ स्वरो का लङ्घन, ईषत्स्पर्श करना पडता है, यह क्रिया मूर्च्छना में क्रमभङ्ग करती है, अत. मूर्च्छनाओ का प्रयोजन कूट तानो का निर्माण इत्यादि है, वे रागो की जननी नही। फलतः उनका सप्तस्वर होना ही उचित है।[५२]

इन्ही सब कारणो से मतङ्ग के पश्चाद्वर्ती अनेक आचार्यो ने द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद का खण्डन किया।[५३]

५०—विसवादिसमावेशाद् रक्तिभङ्गो यत. स्मृत.। —कुम्भ०,भ०,को०, पृ० २८९

५१—न तावत्क्रमतोच्चारे रक्ति कुत्रापि जायते। —कुम्भ०, भ० को०, पृ० २८९

५२—ईषत्स्पर्शाल्लङ्घनाद्यै. क्रमभङ्गस्य शासनात्।
कूटतानोपयोगित्वं मुख्यमासा प्रयोजनम्॥
न रागजनिरेपातश्चार्वी सप्तस्वरेरिता॥ —कुम्भ०, भ० को०, पृ० २८९

५३—आचार्य अभिनवगुप्त ने द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद का खण्डन किया है। प्रो० रामकृष्ण कवि का कथन है—
अत्र (यन्मतङ्गेन विवृता) द्वादशस्वरमूर्च्छना सा अभिनवादिभिरनादृता।
—भ० को०, पृ० ४२४

पुन. एक अन्य स्थल पर उनका कहना है—
He (Kumbha) entered into Sastric discussions so well mastered by Abhinava. —भूमिका, भ० को०, पृ० १९

फलत हमने यहाँ कुम्भ के मत का उल्लेख किया है। नान्यदेव ने जातिलक्षणो मे उनकी मूर्च्छनाओ का निर्देश नही किया।

वादन में मूर्च्छनाजन्य सौकर्य—

मतङ्ग मुनि के 'द्वादशस्वरमूर्च्छनावाद' का खण्डन अनेक आचार्यों ने भले ही किया हो, परन्तु वादन-सौकर्य के लिए मूर्च्छना का उपयोग सभी को मान्य रहा है। इस वादन-सौकर्य को भली भाँति देख लिया जाय।

चाहे प्राचीन एकतन्त्री हो या आज का सितार, उस पर मेरु और घुडच के ठीक मध्य भाग मे मुक्त तार से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि से द्विगुण ध्वनि निकलेगी। तार के मध्य भाग मे निकलने के कारण ही इसे 'मध्यम' कहा जाता है, इसका अर्थ सप्तक का मध्यम स्वर नही। इस 'मध्यम' स्वर को मूर्च्छनाओ का आरम्भक स्वर कहा गया है,[५४] मध्य सप्तक[५५] का आरम्भक स्थान यही है, इससे पूर्व मुक्त तार तक सम्पूर्ण मन्द्र सप्तक की प्राप्ति होती है।

प्राचीन काल मे इसी स्थान को पड्ज मानकर पाड्जग्रामिक उत्तरमन्द्रा एवं मध्यम मानकर माध्यमग्रामिक सौवीरी का आरम्भ होता था।

कुम्भ ने कहा है कि यदि 'मूलभूत ऊर्ध्वतन्त्री' (बाज का तार) तथा पार्श्वतन्त्री (बडी चिकारी ?) पड्ज मे और 'ह्रस्वा तन्त्री' (छोटी चिकारी) पञ्चम मे मिली हों, तो पड्जग्राम होता है।[५६]

नान्यदेव एवं प्रस्तुत प्रकरण पर आचार्य अभिनवगुप्त की टीकाएँ अमुद्रित होने के कारण यहाँ 'भरतकोश' के आधार पर कुम्भ का मत उद्धृत किया गया है।

आचार्य शार्ङ्गदेव ने मतङ्ग के मत के अनुसार जातियो की मूर्च्छना का निर्देश किया है, परन्तु मूर्च्छना की द्वादशस्वरता उन्हे भी मान्य नही हुई, उन्होंने संगीतरत्नाकर मे मूर्च्छनाएँ सप्तस्वर मानी है, द्वादशस्वर-मूर्च्छनाओ की चर्चा तक उन्होंने नही की।

५४—मध्यमस्वरेण वैणेन मूर्च्छनानिर्देशो भवति ..

—भरत०, व० स०, अ० २८, पृ० ४३६

५५—मतङ्गोऽपि—'मध्यसप्तकेन मूर्च्छनानिर्देश. कार्य्यो मन्द्रतारसिद्ध्यर्थम्' इति।

—सं० र०, अ० स०, स्वरा०, कल्लि०, पृ० १०४

मध्यस्थानस्थषड्जेन मूर्च्छनारभ्यतेऽग्रिमा।

—आ० शार्ङ्ग०, सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० १०५

५६—मौलीर्व्वतन्त्रिका पार्श्वतन्त्र्यौ द्वे षड्जगे यदि।
ह्रस्वा पञ्चमगा चेत्स्यात् पड्जग्रामो भवेदयम्॥

—मतङ्ग किन्नरी लक्षण, भ० को०, पृ० ४५५

ऊर्ध्वतन्त्री (बाज का तार) यदि मध्यम मे मिली हो और पार्श्वतन्त्रियां (चिकारियाँ) क्रमशः पड्ज एव मध्यम मे मिली हों, तो मध्यमग्राम होता है।[५७]

अतः यह स्पष्ट है कि पड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना मे तार के मध्य मे निकलने-वाली ध्वनि 'मध्य पड्ज' और मध्यमग्राम की प्रथम मूर्च्छना में 'मध्य मध्यम' कहलाती थी तथा पड्जग्रामीय सप्तक का आरम्भ 'पड्ज' तथा मध्यमग्रामीण सप्तक का आरम्भ मध्यम से होता था।

मतङ्ग-किन्नरी

पड्ज-ग्राम		मध्यम-ग्राम		
मेरु	स	मेरु	म	मन्द्र स्थान
पर्दे—१	रे	पर्दे—१	प	
२	ग	२	ध	
३	म	३	नि	
४	प	४	स	
५	ध	५	रे	
६	नि	६	ग	
७	स	७	म	मध्य स्थान
८	रे	८	प	
९	ग	९	ध	
१०	म	१०	नि	
११	प	११	स	
१२	ध	१२	रे	
१३	नि	१३	ग	
१४	स	१४	म	तार स्थान
१५	रे	१५	प	
१६	ग	१६	ध	
१७	म	१७	नि	
१८	प	१८	स	

मतङ्ग की जिस वीणा में तारो के मिलाने का क्रम पूर्वनिर्दिष्ट है, वह उनकी

५७—ऊर्ध्वतन्त्री यदि भवेन्मध्यमस्वरयोगिनी ।
तत्पार्श्वे तन्त्रिकाद्वन्द्वं षड्जमध्यमगं यदि ॥
मध्यमग्रामगा ज्ञेया तदेयं किन्नरी बुधैः ॥

—वही, भ० को०, पृ० ४५५

'किन्नरी' है। इस 'किन्नरी' में अठारह सारिकाएँ (पर्दे) हैं। एक बाज का तार और दो चिकारियाँ हैं।

मतङ्ग की इस वीणा में उन्नीस स्वरों की प्राप्ति सम्भव है, एक स्वर मुक्त अर्थात् मेरुसस्थ तार पर तथा अठारह स्वर अठारह पर्दों पर उपलब्ध होते हैं।[५८] (उपर्युक्त सारणी में यह स्थिति दिखलायी गयी है।)

मतङ्ग-किन्नरी मे षड्जग्राम से मध्यमग्राम बनाने के लिए दूसरे, नवें और सोलहवें पर्दों पर स्थित तीनो सप्तकों के गान्धारो को जब अन्तरगान्धार बना दिया जायगा, तब वे मेरु पर निकलनेवाली ध्वनि को 'मध्यम' मानने पर मध्यमग्रामीय धैवत बन जायेंगे।

इस समय जो स्थिति है, उसमे षड्जग्रामीय 'षड्जादि' अथवा मध्यमग्रामीय 'मध्यमादि' मूर्च्छना से किन्नरी की सारणा की गयी है। मेरु से छठे पर्दे तक मन्द्रस्थान (सप्तक), सातवें से तेरहवें तक मध्यस्थान तथा चौदहवें से अठारहवे तक तारस्थान (के पाँच स्वर) है।

सातवाँ पर्दा मेरु और घुड़च के ठीक मध्य भाग में होने के कारण "वीणा का 'मध्यम' स्वर" (सप्तक का मध्यम स्वर नही) है और मध्यसप्तक का आरम्भिक स्थान भी है। किन्नरी पर कोई भी मूर्च्छना मिलायी जाय, सातवें पर्दे पर उस मूर्च्छना का आरम्भिक स्वर स्थापित करना होगा, फलतः उस स्वर का मन्द्र रूप हमें मुक्त तार की ध्वनि पर प्राप्त हो जायगा।

मतङ्ग की किन्नरी मे इस समय जो 'मूर्च्छना' मिली हुई है, उस पर षाड्जग्रामिक तार धैवत या निषाद अथवा माध्यमग्रामिक तार ऋषभ या गान्धार की प्राप्ति अन्तिम पर्दे पर मीड से होती है।

यदि मूर्च्छना का आरम्भ 'गान्धार' से हो, अर्थात् सातवे पर्दे पर निकलनेवाली ध्वनि को 'गान्धार' मानकर अन्य पर्दों को अग्रिम स्वरो की श्रुतिसंख्या के अनुसार उतार-चढाकर यथास्थान स्थापित कर लिया जाय. तो किन्नरी के सत्रहवें पर्दे पर तार धैवत और अठारहवें पर्दे पर निषाद की प्राप्ति हो जायगी, तार षड्ज और ऋषभ अन्तिम पर्दे पर मीड द्वारा मिलेंगे। इसी लिए मूर्च्छना का प्रयोजन स्थान-प्राप्ति कहा गया है।[५९]

५८—अष्टादशाथवा दण्डपृष्ठे न्यस्य यथायथम् ॥ —मतङ्ग, भ० को०, पृ० ४५५

५९—मूर्च्छनाप्रयोजनमपि स्थानप्राप्तिः।

—भरत०, व० सं०, (का० सं०) अ० २८, पृ० ४३६

निष्कर्ष यह है कि वादक को पहले यह सोच लेना चाहिए कि उसे मन्द्र एवं तार-स्थानों में किस मन्द्रतम और तारतम स्वर का उपयोग करना है। यह निश्चय हो जाने पर सातवे तार के पर्दे से निकलनेवाली ध्वनि को मध्यसप्तक का वही स्वर मानना चाहिए, जिस स्वर तक मन्द्रस्थान मे जाना है, फलतः मुक्त तार पर उस स्वर की मन्द्र अवस्था मिल जायगी। कल्पना कीजिए कि हमें किसी राग मे मन्द्र ऋषभ से तार धैवत तक उन्नीस स्वरों का प्रयोग करना है, तो हमे सातवे पर्दे की ध्वनि को मध्य सप्तक का ऋषभ मानकर अन्य पर्दो की (इस प्रकार आवश्यकतानुसार उतार-चढ़ाव कर) स्थापना कर लेनी चाहिए कि आठवें इत्यादि पर्दो पर गान्धार इत्यादि परवर्ती स्वर एवं छठे इत्यादि पूर्ववर्ती पर्दो पर यथाक्रम षड्ज इत्यादि पूर्ववर्ती स्वर बोलने लगे।

इस क्रिया के परिणामस्वरूप मुक्त तार पर 'मन्द्र ऋषभ' और अठारहवे पर्दे पर 'तार धैवत' की प्राप्ति होने लगेगी।

यदि आपको किसी राग मे मन्द्र मध्यम से तार मध्यम या पञ्चम तक पन्द्रह या सोलह स्वरो का ही उपयोग करना है, तो आपका काम ऋषभादि मूर्च्छना से भी चल सकता है और षड्जादि से भी, क्योंकि आपके अभीष्ट स्वर इन्ही दो मूर्च्छनाओ में ही नही; षड्जादि, ऋषभादि, गान्धारादि और मध्यमादि मूर्च्छनाओ मे भी मिल जायँगे। एक मूर्च्छना की स्थापना का परिणाम किन्नरी पर उन्नीस स्वरों की प्राप्ति होता है, आपको जब केवल पन्द्रह या सोलह स्वर चाहिए, तो वे स्वभावत. कई मूर्च्छनाओं में मिल सकेंगे।

जाति के साथ विशेष मूर्च्छना का निर्देश

विशेष जाति की विशेष मूर्च्छना का निर्देश मतङ्ग ने किया है। उनका यह निर्देश इसी सिद्धान्त के आधार पर है।

एक जाति मे 'अंश' स्वर कई हो सकते है। मन्द्र और तार अवधि का नियामक 'अंश' स्वर होता है। 'न्यास' और 'अपन्यास' स्वर भी मन्द्र अवधि के नियामक होते हैं, फलत. मतङ्ग ने विचारपूर्वक जाति के विभिन्न अंश स्वरो को देखते हुए जातिविशेष के लिए ऐसी मूर्च्छना निश्चित की, कि उसके अनुसार सारणा करके बजाने पर जाति के शुद्ध एव विकृत रूपो का वादन उस एक ही मूर्च्छना मे सम्भव हो सके।

ऐसी स्थिति मे हमे जाति के विभिन्न रूपों मे मन्द्रस्थानीय अंश, न्यास या अपन्यास स्वर की प्राप्ति हो जाती है और तारस्थान में अश स्वर के पश्चात् कभी एक या

अनेक स्वर प्राप्त हो जाते हैं। किसी विकृत रूप के वादन में मन्द्रस्थानीय स्वर भी एक-दो ही मिलते हैं।

जातिविशेष के लिए मूर्च्छनाविशेष के निश्चय का परिणाम ही यह हुआ कि मन्द्र एव तार स्थान में अवधिसम्बन्धी नियमो का पालन पूर्णतया सम्भव न हुआ और यह मान लिया गया कि मन्द्रस्थान एवं तारस्थान में जाना, न जाना या किसी विशेष स्वर तक जाना प्रयोक्ता की इच्छा पर है।

जहाँ तक महर्षि भरत का सम्बन्ध है, उनके अनुसार जाति के प्रत्येक रूप के लिए ऐसी मूर्च्छना निश्चित की जानी चाहिए, जिसका आरम्भक अभीष्ट अश स्वर हो, फलतः मन्द्र, मध्य एव तार स्थान के सम्पूर्ण स्वर मिलेंगे। मत्तकोकिला-जैसे वाद्य मे प्रथम, अष्टम एवं पन्द्रहवे तार को अभीष्ट अश स्वर की संज्ञा देकर अन्य तारो को श्रुतिसंख्या के अनुसार उतार-चढ़ाकर स्थापित कर लेना चाहिए। इस क्रिया के परिणामस्वरूप मन्द्रावस्था मे अश स्वर मिलेगा, जो मन्द्रस्थान की अन्तिम अवधि है और तारस्थान मे तार अंश से सप्तम स्वर इक्कीसवे तार पर मिलेगा, जो तारस्थान की अन्तिम अवधि है।

महर्षि भरत ने वीणा के 'मध्यम' (वीणा के मध्य में स्थित, एकतन्त्री वीणा में मेरु एव घुडच के मध्य भाग में तार पर निकलनेवाली ध्वनि) से मूर्च्छना स्थापित करने का निर्देश एकतन्त्री के सम्बन्ध में किया है, जिसमे वादन-क्रिया एक तार पर होती है, अतः मध्य सप्तक वही से आरम्भ होता है। मत्तकोकिला इत्यादि वीणाओं मे मूल मध्यम सप्तक का आरम्भ आठवें तार से होने के कारण सारणा क्रिया का आधार आठवाँ तार ही होगा।

यदि कोई व्यक्ति मत्तकोकिला के मध्यम (बीचवाले अर्थात् ग्यारहवें) तार से मध्य सप्तक का आरम्भ करने की चेष्टा करे, तो मध्य सप्तक की समाप्ति सत्रहवें तार पर होगी, शेष चार तारों पर तार-सप्तक के केवल चार स्वर मिलेंगे, मन्द्र सप्तक का आरम्भक स्वर चौथे तार पर बोलेगा और आरम्भिक तीन तार व्यर्थ होगे। फलतः मत्तकोकिला का यह लक्षण भी व्यर्थ होगा कि उस पर तीनो स्थानो की प्राप्ति होती है। अतः मत्तकोकिला मे मूर्च्छना के आरम्भक तार पहला, आठवाँ और पन्द्रहवाँ तार हैं। 'उत्तरमन्द्रा' मे आठवे तार पर 'मध्य षड्ज'[६०] और 'सौवीरी' मे 'मध्य मध्यम' रहता है।

६०—मत्तकोकिलवीणायां तन्त्र्यो यास्तास्वनुक्रमात्।
स्वराः षड्जादयः सप्त सप्त भूत्वा तथा स्थिताः॥

तन्त्रीवाद्यों पर मूर्च्छनाओं की स्थापना का प्रकार

मूर्च्छनाओ की स्थापना के विषय मे महर्षि भरत का मत है—"मूर्च्छनाओं की (केवल प्रथम मूर्च्छना की नहीं) स्थापना 'वीणा के मध्यम स्वर (सप्तक के मध्यम स्वर से नही) से होनी चाहिए, क्योकि 'मध्यम' अविनाशी स्वर है।"[६१]

उत्तरमन्द्रा या सौवीरी आदि मूर्च्छनाओ मे तो 'मध्यम' अविनाशी या अविलोपी है ही, 'वीणा का मध्यम स्वर' (मेरु और घुड़च के ठीक मध्य मे तार पर निकलने वाला स्वर) भी अविनाशी है, क्योकि कोई भी मूर्च्छना मिलायी जाय, तन्त्री के ठीक मध्य भाग मे स्थित सातवाँ पर्दा अपना स्थान कभी नही छोड़ता। मेरुसस्थ अर्थात् मुक्त तार पर निकलनेवाली ध्वनि को 'स, रि, ग, म, प, ध, नि' कोई भी सज्ञा दी जाय सातवे पर्दे पर ठीक उसकी द्विगुण ध्वनि बोलेगी, फलत मूर्च्छनाओं की सारणा क्रिया मे किन्नरी के अन्य सभी पर्दे कभी न कभी नीचे ऊपर सरकाने पड़ते है, परन्तु सातवाँ और चौदहवाँ पर्दा क्रमशः मुक्त तार पर उत्पन्न होनेवाली ध्वनि के द्विगुण एव चतुर्गुण रूप के जनक होने के कारण कभी नहीं सरकाने पड़ते।

'मतङ्गकिन्नरी' के वर्णन मे कुम्भ का कथन है—

"**सारणा-भेद** का आश्रय लेने से वादनक्रिया के तार का योग जिस स्वर से होता है, उसी स्वर के अनुसार मुक्त तार का नामकरण होता है, फलतः मूर्च्छना-रहस्य से अवगत व्यक्ति (वाज के तार के विभिन्न नामकरणो के परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली)

मध्यसप्तकषड्जेन मूर्च्छनारभ्यते ऽग्रिमा।

. . ..

मध्यस्थमध्यमेनाद्या मध्यमग्राममूर्च्छना॥

—पण्डितमण्डली, भ० को०, पृ० ५०१

६१—मध्यमस्वरेण वैणेन मूर्च्छनानिर्देशो भवत्यनाशित्वात्।

—भरत०, ब० स०, अ० २८, पृ० ४३६

आचार्य कल्लिनाथ ने 'रत्नाकर' मे इस प्रकरण पर की हुई टीका मे 'वैणेन' के स्थान पर भरत-नाट्यशास्त्र का पाठ '**वैणवेन**' बताया है, जो वेणु की दृष्टि से ठीक है—'यः सामगानां प्रथम स वेणोर्मध्यमस्वर.' में भी यही बात बतायी गयी है, जिसका परिणाम 'वेणु' पर तीनो स्थानों की अभीष्ट स्वरसख्या की प्राप्ति है। प्राचीन वेणु-वाद्यो मे छिद्रों को आवश्यकतानुसार अर्धमुद्रित इत्यादि अवस्थाओ मे लाकर सारणा-क्रिया होती थी।

उस-उस मूर्च्छना का अभ्यास करे। (मुक्त तार से निकलनेवाली ध्वनि का नामकरण जिस स्वर के आधार पर हो उसका ध्यान रखते हुए उपयुक्त अन्तर पर) षड्ज की स्थापना उसकी **श्रुतिसंख्या** की दृष्टि से करनी चाहिए। इसके पश्चात् वीणा की डाँड पर (अभीष्ट = ग्राम के अनुसार) **स्वरप्रबन्ध** को जन्म देनेवाली सारिकाओं की **स्थापना** यथास्थान करनी चाहिए। स्वच्छमानस व्यक्ति उन सारिकाओं पर इष्ट राग (जिसके लिए सारणा-क्रिया की गयी है) का आलाप निपुणतापूर्वक करे।"[६२]

अन्य लोग भी षड्ज के स्थान पर स्थित निषाद आदि स्वरों से अन्य अन्य रजनी इत्यादि षाड्जग्रामिक मूर्च्छनाएँ तथा मध्यम के स्थान पर स्थित गान्धार इत्यादि से मध्यमग्राम की हारिणाश्वा इत्यादि अन्य मूर्च्छनाएँ मानते हैं।[६३]

६२—येन येन स्वरेणैवं योगस्तन्त्र्याः प्रतन्यते।
सारणाभेदमाश्रित्य सा स्यात्तत्स्वराह्वया॥
ता ता च मूर्च्छनामस्यामभ्यसेत् तद्विदग्रणीः।
स्वस्थाने प्रकृतीकृत्य षड्जं स्वश्रुतिपेशलम्॥
स्वरप्रबन्धनाः स्थाप्या दण्डपृष्ठेऽथ सारिकाः।
तास्विष्टराग निपुणमालपेत् स्वच्छमानसः॥ —मतङ्ग, भ० को०, पृ० ४५५

६३—षड्जस्थानस्थितैर्न्याद्यैः रजन्याद्याः परे विदुः।
हारिणाश्वादिका गाद्यैः मध्यमस्थानसस्थितैः॥
षड्जादीन्मध्यमादींश्च तदूर्ध्वं सारयेत् क्रमात्॥
—आचार्य्य शार्ङ्गदेव, स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० १०७

आचार्य शार्ङ्गदेव की उपर्युक्त पंक्तियों पर आचार्य कल्लिनाथ का कथन है—

"ननु षड्जमध्यमस्थानयोरेव निषादगान्धारादिप्रयोगे सति षड्जग्राम उत्तरमन्द्रारजन्यादीनां कथं परस्पर भेदो मध्यमग्रामे च सौवीरीहारिणाश्वादीना च कथमन्योन्यंभेद इत्याशक्य परिहरिष्यन्नाह—**षड्जादीन्मध्यमादींश्चेति। तदूर्ध्वमिति।** रजन्यादिकायां षड्जस्थानस्थापितनिषादादेर्हारिणाश्वादिकाया मध्यमस्थानस्थापितगान्धारादेश्च पर षड्जादीन्मध्यमादींश्च स्वरान् **सारयेत्, स्वस्वश्रुतिसंख्यापर्य्यालोचनया श्रुत्यन्तराणि प्रापयेदित्यर्थः।**"

—स० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १०७

अर्थात्—षड्ज एवं मध्यम के स्थान पर निषाद, गान्धार इत्यादि का प्रयोग करने से षड्जग्रामीय उत्तरमन्द्रा और रजनी इत्यादि में तथा मध्यमग्रामीय सौवीरी-

पड्ज के स्थान पर स्थापित निपाद आदि से ऊपर पड्ज इत्यादि तथा मध्यम के स्थान पर स्थित गान्धार आदि के पश्चात् मध्यम आदि स्वरो की **सारणा** (स्वरो की श्रुतिसख्या के अनुसार) क्रमपूर्वक करनी चाहिए ।

'पण्डितमण्डली' के भी शव्द है—

"पड्ज और मध्यम के स्थान पर निषाद आदि एवं गान्धार आदि स्वरों की स्थापना करनी चाहिए, उनके वाद पड्ज और मध्यम इत्यादि स्वरो की सारणा 'वुद्धिमान्' व्यक्ति को करनी चाहिए ।"[६४]

सितार पर आज जितने पर्दे वँधे हुए है, उनमे से विकृत स्वरो के पर्दो को यदि निकाल दिया जाय तो सप्तकवोधक पर्दे केवल तेरह रह जायँगे । तेरह स्वर इन पर्दो

हारिणाश्वा इत्यादि में परस्पर भेद कैसे रहेगा ? इस आशंका को दूर करने की इच्छा से आचार्य्य शार्ङ्गदेव ने 'पड्जादीन्मध्यमादीश्च' इत्यादि पंक्ति लिखी है । इस पक्ति में 'तदूर्ध्वं' इत्यादि का तात्पर्य्य यह है कि रजनी इत्यादि मे पड्ज के स्थान पर स्थापित निपाद इत्यादि स्वरो एवं हारिणाश्वा इत्यादि मे पड्ज के स्थान पर स्थापित गान्धार इत्यादि स्वरों के पश्चात् पड्ज इत्यादि और मध्यम इत्यादि स्वरो की **'सारणा'** करनी चाहिए, अर्थात् उन-उन स्वरो को उन-उनकी संख्या के अनुसार श्रुत्यन्तरों तक पहुँचाकर स्थापित करना चाहिए ।"

६४–पड्जमध्यमयो. स्थाने न्याद्या गाद्या यथाक्रमात् ।
तदूर्ध्वं **सारयेत्** पड्जमध्यमादीन् स्वरान् सुधीः ॥

इस स्पष्टीकरण के पश्चात् निम्नलिखित **भ्रम** दूर हो जाने चाहिए—

(क) आधुनिक 'सितार' या 'वीणा' पर पर्दो के जो अन्तर एवं नाम है, तथा इन पर्दो का जो क्रम है, वे अनादि काल से चले आ रहे है ।

(ख) सितार पर जो पर्दा आज मध्यस्थानीय षड्ज का वोधक है, वही महर्षि भरत का 'वैण मध्यम स्वर' या मतङ्ग के 'मध्यसप्तक का षड्ज' है ।

(ग) सितार पर 'मन्द्र पञ्चम' का पर्दा प्राचीनो का पड्ज है और वहाँ से शुद्ध पड्जा मूर्च्छना सदा से आरम्भ होती रही है ।

(घ) शार्ङ्गदेव या अन्य आचार्य्य उत्तरमन्द्रा के सात स्वरों को जैसे का तैसा रखकर उन्ही स्वरो पर रजनी इत्यादि तथा सौवीरी के सातो स्वरो को विना इधर-उधर सरकाये उसी अवस्था मे हारिणाश्वा इत्यादि की सिद्धि करते थे, फलत. विभिन्न मूर्च्छनाओ मे स्वरो की श्रुतिसंख्या मे परिवर्तन होता था ।

पर और चौदहवाँ स्वर मुक्त तार पर बोलेगा। इस प्रकार आज सितार पर मध्यम से आरम्भ होनेवाले केवल दो सप्तको (चौदह स्वरो) की प्राप्ति होती है।

वादको ने अपनी सुविधा के लिए मध्यमादि मन्द्रसप्तक के अन्तिम तीन स्वर स, रे, ग तथा मध्यमादि मध्यसप्तक के आरम्भिक चार स्वर म, प, ध, नि को लेकर 'स, रे, ग, म, प, ध, नि' षड्जादि मध्यसप्तक मान लिया है, परिणामतः बाज के तार पर उन्हे मन्द्रस्थान मे इस नवीन षड्जादि मध्यसप्तक के म, प, ध, नि और तारसप्तक के 'स, रे, ग' मिल जाते है।[६५]

आधुनिक वादक जब मन्द्र मध्यम से मन्द्रस्थान मे जाना चाहते है, तब उन्हे अन्य तारो का आश्रय लेना पडता है, जो मन्द्र पञ्चम या षड्ज इत्यादि मे मिले होते है, जब 'तार गान्धार' से ऊपर जाना होता है तब तार गान्धार के पर्दे पर तार को दबाकर खीचना पडता है।

सितार पर जो पर्दे होते है, वे वीणा के तारो की भाँति सपाट न होकर वक्र (बीच मे ऊपर को उठे हुए) होते है, फलतः मन्द्र पञ्चम या मन्द्र षड्ज के तारो से बाज का काम लेने पर उन तारो को पर्दो पर दबाकर मीडना पडता है, क्योकि बाज के तार का अन्तर पर्दो से जितना होता है, उतना अन्य तारो का नही। अतः विलम्बित लय की तानें तो मन्द्र षड्ज या मन्द्र पञ्चम के तारो पर जा सकती है, परन्तु द्रुत लय की तानो के लिए ये तार अनुपयोगी होते है।

सितार पर यदि किन्नरी की भाँति अठारह पर्दे बाँधने हो, तो सितार के तूंबे की बनावट मे इस प्रकार अन्तर करना होगा कि डाँड पर आज की तार गान्धार के पश्चात् पाँच और ऐसे पर्दे बाँधे जा सकें, जिन पर अग्रिम 'म, प, ध, नि, स' निकल सके।

यह सम्भव है। आधुनिक सितार पर तार गान्धार के पश्चात् मध्यम और 'पञ्चम' के दो पर्दे बाँधे जा सकते है। पञ्चम के पर्दे पर तार को मीडकर अग्रिम षड्ज की प्राप्ति होती है।

'एकतन्त्री' वीणा में पर्दे न होने के कारण यह क्रिया अत्यन्त सरल थी।

६५—'आधुनिक वीणा' और 'सितार' पर पर्दो के वर्तमान क्रम और नामकरण कुछ बहुत अधिक प्राचीन नही, इस संबंध मे विस्तृत विचार अन्यत्र किया जायगा।

यहाँ हम यह मानकर सितार पर मूर्च्छनाओं की स्थापनाओं का प्रकार दे रहे है कि उस पर किन्नरी की भाँति अठारह पर्दे बँधे हुए है—

उत्तरमन्द्रा—

```
मेरु         ० स  (स) - - - - - (स)
पर्दे—        १ रे - |  - - - - - - |  - - - (म)
             २ ग - ↓  - - - (म) - |  - - - ↑
मन्द्रस्थान    ३ म  (म) - (स) - ↑ - ↓ - (स) - |
             ४ प - - - | - | - (प) - ↓ - | - (स)
             ५ ध  (स) - ↓ - | - - - - (अ.गा.) (स) |
             ६ नि - | - (म) - (स) -(स) - - - - - - ↓
             ७ स - ↓ - - - - - - | (स)- -(स) - (म)
             ८ रे (म) (स)        ↓   |    |
             ९ ग - - | - (स)   (म)  ↓    |
मध्यस्थान     १० म - - | - | - (स)  (म)     ↓
            ११ प - - ↓ - | -  |        (प)
            १२ ध - - (प) - ↓ - | - (स)
            १३ नि - - - (प) - ↓ - | - (स)
            १४ स - - - - - प - ↓ - | - (स) - (स)
            १५ रे - - - - - - - - (म) - ↓ - | - |
तारस्थान      १६ ग - - - - - - - - - - (म) ↓ - |
            १७ म - - - - - - - - - - - - म - ↓
            १८ प - - - - - - - - - - - - - - (प)
```

मन्द्रस्थान मे 'धैवत' की सिद्धि षड्जान्तर-भाव के आधार पर 'मध्यम' को षड्ज मानकर की गयी है, 'म-ध', 'नि-रे' मे षड्जान्तरभाव यथास्थान बताया जा चुका है। अन्य सभी स्वरो की सिद्धि का आधार षड्ज-मध्यम-भाव है।

मूर्च्छना (आरोहावरोहयुक्त क्रम) के उत्तर (अन्तिम) भाग मे षड्जग्राम का मन्द्रतम स्वर होने के कारण इस मूर्च्छना का नाम 'उत्तरमन्द्रा' है।*

---

* षड्जे तूत्तरमन्द्रा स्यान्मन्द्रश्चात्रोत्तरस्वरः। तस्मादुत्तरमन्द्रेयम्.......॥

—नान्य०, भ० को०, पृ० ७१

रजनी—

```
मेरु—      ० नि  (स)  (स)    (स)
पर्दे—      १ सा - |  -  | -(प)  ↓   -  -  (स)
           २ रे - ↓  -  |  ↑ - अ गा  (स) -  |
           ३ ग - (म)    ↓  |    -  -  |  -  |
           ४ म  -  -(प) (स)   -  -  |  -  ↓
           ५ प - (स)  -  -  -  -  -  ↓  -(प)
           ६ ध -  | -(स)  -  -  -  -(प)
           ७ नि - ↓ - | - (स)
           ८ स  (म) ↓   | (स)(स)
           ९ रे -  - म - ↓  | - | -(स)
          १० ग -  -  - - म  ↓ - | -  |
          ११ म -  -  -  - - म - ↓ - | - (स)
          १२ प -  -  -  -  - - प - ↓ -  | -(स)
          १३ ध -  -  -  -  -  - - (प) - ↓ - | -(स)
          १४ नि -  -  -  -  -  -  -  - (म)- ↓ - | -(स)
          १५ स -  -  -  -  -  -  -  -  - - म - ↓ - | -(स)
          १६ रे -  -  -  -  -  -  -  -  -  -  - - म  ↓  |
          १७ ग -  -  -  -  -  -  -  -  -  -  -  - - (म)  ↓
          १८ म -  -  -  -  -  -  -  -  -  -  -  -  -   म
```

मन्द्र सप्तक मे निषाद को षड्ज मानकर षड्जान्तर-भाव के आधार पर ऋषभ की सिद्धि की गयी है। अन्य स्वरो की स्थापना मे षड्ज-मध्यम-भाव या षड्ज-पञ्चम-भाव का आश्रय लिया गया है।

उत्तरमन्द्रा मे पहला पर्दा ऋषभ का उत्पादक होने के कारण मेरु से 'क, ख, ग' अन्तर पर मिला होता है। रजनी मे मेरु पर निषाद स्थित होने के कारण उससे 'ग, क, ख, ग' अन्तर पर स्थित चतुश्रुति षड्ज प्राप्त करने के लिए मूल मूर्च्छना उत्तरमन्द्रा के पहले पर्दे को घुडच की ओर 'ग' अन्तर सरकाना पडेगा।

दूसरा पर्दा जो उत्तरमन्द्रा मे गान्धार का जनक होने के कारण मेरु से 'क, ख, ग, ख, ग' अन्तर पर स्थित था, रजनी मे ऋषभ का जनक होने के कारण मेरु से 'ग, क, ख, ग, क, ख, ग,' अन्तर (सात श्रुतियो का अन्तर) प्राप्त करने के लिए घुड़च की ओर 'ग-क' अन्तर सरकाना पड़ेगा।

तीसरा पर्दा वही रखना होगा, क्योकि यह मेरु से नौ श्रुतियों के अन्तर पर स्थित

है। उत्तरमन्द्रा में यह मेरु पर बोलनेवाले षड्ज की अपेक्षा मध्यम का जनक था और रजनी में यही पर्दा मेरु पर बोलनेवाले निषाद से नव श्रुत्यन्तर पर स्थित गान्धार का जनक है।

चौथा पर्दा उत्तरमन्द्रा में मेरु पर बोलनेवाले षड्ज का पञ्चम था, रजनी में भी वह अपने स्थान पर स्थित रहकर मध्यम का जनक होगा, क्योंकि 'निषाद-मध्यम' में षड्ज-पञ्चम-भाव है।

पाँचवाँ पर्दा उत्तरमन्द्रा में धैवत का जनक होने के कारण चौथे पर्दे से 'क, ख, ग, अन्तर पर स्थित था, रजनी में इस पर्दे पर 'पञ्चम' उत्पन्न करने के लिए इसे एक 'ग' अन्तर चढाना होगा।

छठा पर्दा उत्तरमन्द्रा मे मेरु से अठारह श्रुतियो (क, ख, ग, ख, ग, ग, क, ख, ग, ग, क, ख, ग, क, ख, ग, ख, ग) के अन्तर पर स्थित था और उस पर निषाद की उत्पत्ति होती थी। रजनी मे उस पर धैवत उत्पन्न करने के लिए मेरु से उसे बीस श्रुतियो के अन्तर पर रखना होगा। फलतः उसे दो श्रुति चढ़ाना होगा।

सातवे पर्दे पर निषाद स्वतः मिल जायगा, क्योंकि मुक्त तार पर स्थित मन्द्र निपाद का द्विगुण मध्य निषाद इस पर स्वतः बोलेगा।

रजनी की स्थापना का जो प्रकार षड्जान्तर-भाव, षड्ज-मध्यम-भाव एवं षड्ज-पञ्चम-भाव के आधार पर प्रदर्शित किया गया है, उस प्रकार से सभी पर्दे यथास्थान आ जायँगे।

मेरु से क्रमशः नौ एवं तेरह श्रुतियों के अन्तर पर स्थित तीसरे और चौथे पर्दे के अतिरिक्त सभी पर्दे इस मूर्च्छना की सारणा करने में उत्तरमन्द्रा वाले स्थानों से हट जाते हैं, फलतः उत्तरमन्द्रा और इस मूर्च्छना मे दिन-रात जैसा अन्तर हो जाने के कारण ही सम्भवतः इसे 'रजनी' कहा गया है। मध्य और तार स्थान के पर्दे भी मन्द्र स्थान के पर्दों मे विकार के परिणामस्वरूप यथोचित रूप में सरकेंगे।

उत्तरायता—

```
मेरु—   ० ध   स
पर्दे—   १ नि - | -  (स) - (स) (स)
        २ स - ↓ -  ↑  - | - | -(प)- (स)
        ३ रे - म -(अ.गा.)- ↓ - | - ↑ - | -(स)
        ४ ग (स)- - - - म - ↓ - | - | - |
        ५ म - | (स) - - - -(प)-(स)- ↓ - |
        ६ प - | - | - - - - - - - - -(प)- ↓
        ७ ध - ↓ - |-(स) - - - - - - - - - -(प)
        ८ नि (प)- ↓ - | (स)
        ९ स - (प) ↓ | (स)(स)
       १० रे - - -(म) ↓ | | (स)
       ११ ग - - - -(म) ↓ | |
       १२ म - - - - - -म ↓ | (स)
       १३ प - - - - - - -प- ↓ -| (स)
       १४ ध - - - - - - - - - प -↓ | (स)
       १५ नि - - - - - - - - - - -म ↓ | (स)
       १६ स - - - - - - - - - - - (म) ↓ |
       १७ रे - - - - - - - - - - - - (म) ↓
       १८ ग - - - - - - - - - - - - - -(म)
```

इस मूर्च्छना की स्थापना में तीसरा पर्दा अपने स्थान पर ही रहेगा। उत्तरमन्द्रा में स्थापित पर्दों की स्थिति की अपेक्षा अन्य पर्दों की स्थिति में परिवर्तन होगा। पहला, चौथा और पाँचवाँ पर्दा (क्रमशः एक श्रुति, दो श्रुति और एक श्रुति) मेरु की ओर सरक जायँगे, तथा दूसरा और छठा पर्दा घुड़च की ओर एक-एक श्रुति सरकेंगे।

मूर्च्छना का उत्तर (अवरोह का अन्तिम) भाग (मेरु और प्रथम पर्दे का अन्तर) इस मूर्च्छना में 'आयत' (अतिशयपूर्वक यमनयुक्त, दृढ़ अथवा पहले पर्दे से घुड़च का अन्तर कम) हो जाने के कारण ही इसका नाम सम्भवत. 'उत्तरायता'* है। मध्य और तार स्थान के पर्दे भी यथास्थान हटेंगे।

---

* उत्तरोत्तरतश्चास्यामायतो हि स्वरो यतः।
तेनेयं मूर्च्छना प्रोक्ता धैवते चोत्तरायता॥

—नान्य०, म० को०, ७१

शुद्धषड्जा—

```
मेरु—  ० प (स)
पर्दे—  १ ध -|- - - - - - (प)
       २ नि -↓ - -(म) -(स) - ↑ (स)
       ३ स -म (स) ↑ - ↓ - |
       ४ रे - - | - | (अ.गा.) स - ↓ (स)
       ५ ग - - ↓ - - - - (म)
       ६ म - -(म) (स)
       ७ प - - - | (स)
       ८ ध - - - ↓ | - -(स) - -(प)
       ९ नि - - -(म) ↓ - - | (स)
      १० स - - - - (म) - ↓ | (स)(स)
      ११ रे - - - - - - -(म) ↓ | - | (स)
      १२ ग - - - - - - - - -(म) ↓ - | - |
      १३ म - - - - - - - - - - (म) ↓ - | (स)
      १४ प - - - - - - - - - - - (प) ↓ | (स)
      १५ ध - - - - - - - - - - - - (प) ↓ | (स)
      १६ नि - - - - - - - - - - - - - (म) ↓ |
      १७ स - - - - - - - - - - - - - - -(म) ↓
      १८ रे - - - - - - - - - - - - - - - - म
```

इस मूर्च्छना की स्थापना में उत्तरमन्द्रा की स्थिति की अपेक्षा चौथा पर्दा मेरु की ओर एक श्रुति सरकेगा तथा पाँचवाँ पर्दा दो श्रुति।

रजनी और उत्तरायता में षड्ज प्राप्त करने के लिए क्रमशः पहले और दूसरे पर्दे को उत्तरमन्द्रा के स्थान से सरकाना पडता है, परन्तु इस मूर्च्छना की सारणाक्रिया में तीसरे पर्दे की मूल शुद्ध अवस्था पर ही 'षड्ज' प्राप्त हो जाता है, फलतः इस मूर्च्छना का नाम 'शुद्धषड्जा'* है।

मध्य और तार स्थान के पर्दे भी मन्द्र स्थान के अनुसार हटेंगे।

---

* शुद्ध. स्यात्तत्र षड्जस्तु शुद्धषड्जा ततः स्मृता।
पञ्चमेन स्वरेणेयं देवता स्यात्पितामहः॥
—नान्यदेव, भ० को०, पृ० ६७१

मत्सरीकृता—

```
मेरु — ० म   स
पर्दे — १ प -  |  -  -  -  -  -  -  -  -  -  -(प)
      २ ध -  ↓  -  -  -  - (प)              ↑
      ३ नि  म   (स)  -(स) ↑-  -(स)          |
      ४ स   -  - ↑  -   | |-  - | -(प)  (स) (स)
      ५ रे  -  -(अ.गा.) - ↓ (स)    |   ↑       |
      ६ ग   -  -  -  -(म)   |     ↓   |       |
      ७ म  (स)-  -  -  -    |   -(प) -(स)     ↓
      ८ प - | -(स)-  -  -   ↓   -  -  -  -  -(प)
      ९ ध - ↓ - | -  (स)- (प)
     १० नि  (म) ↓ -   | - (स)
     ११ स   -  -म -   ↓ - | -(स) (स)
     १२ रे  -  -  -  - म - ↓ -  | - | -(स)
     १३ ग   -  -  -  -  - म     ↓   |   |
     १४ म   -  -  -  -  -  -  म - ↓ -  | -(स)
     १५ प   -  -  -  -  -  -  -  - प   ↓  | -(स)
     १६ ध   -  -  -  -  -  -  -  -  -  - प  ↓   |
     १७ नि  -  -  -  -  -  -  -  -  -  - -(म)  ↓
     १८ स   -  -  -  -  -  -  -  -  -  -  -  -(म)
```

इस मूर्च्छना में केवल पहले और दूसरे पर्दे को, उत्तरमन्द्रा की स्थिति की अपेक्षा, क्रमश. एक और दो श्रुति (घुडच की ओर) सरकाना पड़ता है, अन्य सभी पर्दे जैसे के तैसे रहते हैं।

केवल पहले और दूसरे पर्दे के विकार से उत्तरमन्द्रा के प्रति इस मूर्च्छना का हलका-सा मात्सर्य प्रकट होने के कारण सम्भवत. इसका नाम मत्सरीकृता है।*

अन्य स्थानो (सप्तकों) मे पर्दे यथोचित रूप मे सारणाक्रिया के परिणामस्वरूप हट जायँगे।

---

* मध्यमालापसरणे सा भवेन्मत्सरीकृता।

—नान्य०, भ० को०, पृ०४५८

अश्वक्रान्ता—

```
मेरु— ० ग    (स)
पर्दे— १ म   - | -(प)-(स)
     २ प   - |  - ↑ - | -(प)
     ३ ध   -↓ - | - | - ↑   - - - - - - - - - - - - - -(प)
     ४ नि  (प)(स)  ↓ - | -(स)  -                         ↑
     ५ स   - - |  (प)(स) - ↑   -(स)  - - - - - - - - -   |
     ६ रे   - - ↓  - - |  (अ गा.) | (स) - - - - - - - - (स)
     ७ ग   - -(म)      ↓
     ८ म   - - - -  (म) (स)       ↓
     ९ प   - - - - - - - | -  -(प) ↓ - -(स)
    १० ध   - - - - - - -↓- -  (प)- - | -(स)
    ११ नि  - - - - - - -म- - -  (स) ↓    |
    १२ स   - - - - - - - - - - -  |  -म -↓ -(स)(स)
    १३ रे   - - - - - - - - - - -  ↓  - -(म)- |  | (स)
    १४ ग   - - - - - - - - - - - -म - - - ↓   |   |
    १५ म   - - - - - - - - - - - - - - - म ↓   | (स)
    १६ प   - - - - - - - - - - - - - - - -प  ↓   |
    १७ ध   - - - - - - - - - - - - - - - - -प   ↓
    १८ नि  - - - - - - - - - - - - - - - - - -(म)
```

इस मूर्च्छना मे चौथे पर्दे के अतिरिक्त सभी पर्दे* उत्तरमन्द्रा की स्थिति की अपेक्षा (अश्व की गति (क्रमण) के समान) घुडच की ओर बढ़ते है, सम्भवत. इसी लिए इस मूर्च्छना का नाम 'अश्वक्रान्ता' है।

अन्य सप्तको के पर्दे भी मन्द्र स्थान की स्थिति के अनुसार अपने स्थान से हटेंगे।

---

* भरतकालीन वीणाएँ सारिकाहीन होती थी। इसलिए एकतंत्री वीणा पर मूर्च्छनाओं की अन्वर्थता समझने के लिए 'पर्दे' के स्थान पर तन्त्री का वह 'स्थान' समझना चाहिए, जिस स्थान पर अभीष्ट स्वर की अभिव्यक्ति होती हो।

अभिरुद्गता—

मेरु—	०	रे	(स)
पर्दे—	१	ग	- | - - - - -(म)
	२	म	- | -(स) -(स) -↑ (स)
	३	प	- ↓ -↑ -↑ -| -| -(प)
	४	ध	-(प) (अ.गा.)-| -| -| -↑- (स)
	५	नि	- - - - - (म) -(स)-↓ -|- |
	६	स	- - - - - - - -| (प)- (स)- ↓-(स)
	७	रे	- - - - - - - -↓ - - | -(म) | (स)
	८	ग	- - - - - - - -म - - | - - -|
	९	म	-(स) (स)- - - - - - (म)- - ↓ -|
	१०	प	-| -|- - - - - - - - - - प -↓
	११	ध	-↓ -|- - (स)- - - - - - - - (प)
	१२	नि	-(म) -↓- - | -(स)
	१३	स	- - -(प) - ↓ - | -(स) (स)
	१४	रे	- - - - - म - ↓ - | - | -(स)
	१५	ग	- - - - - - -(म)- ↓ - | |
	१६	म	- - - - - - - - म - ↓ |
	१७	प	- - - - - - - - - (प) ↓
	१८	ध	- - - - - - - - - - - -(प)

इस मूर्च्छना में उत्तरमन्द्रा की स्थिति की अपेक्षा पहला और पाँचवा पर्दा मेरु की ओर तथा दूसरा, तीसरा और छठा पर्दा घुड़च की ओर बढते है। इस मूर्च्छना में पर्दे परस्पर 'अभिरोध' करते दिखाई देते है, फलतः इसका नाम अभिरुद्गता (अभि+रुध्+गता) है।

मध्य और तार स्थान के पर्दे भी यथोचित रूप मे सरकेंगे।

माध्यमग्रामिक मूर्च्छनाएँ

सौवीरी

उत्तरमन्द्रा के गान्धार को दो श्रुति चढ़ाने के पश्चात् उसे 'धैवत' की संज्ञा देने अर्थात् अन्तरगान्धार-युक्त उत्तरमन्द्रा के 'सरिगमपधनि' को 'म, प, ध, नि, स, रे, ग' की सज्ञा देने से 'सौवीरी' की सिद्धि हो जाती है।

उत्तरमन्द्रा से 'सौवीरी' के निर्माण की प्रस्तुत योजना सम्भवत. सौवीर देश के निवासियो ने की, फलत. इसका नाम 'सौवीरी' है।

हारिणाश्वा

अन्तरगान्धार-युक्त रजनी के 'नि, स, रे, ग, म, प, ध' को क्रमशः 'ग, म, प, ध, नि, स, रे' की सञ्ज्ञा दे देने से 'हारिणाश्वा' की सिद्धि होती है।

इस मूर्च्छना में सौवीरी की स्थिति की अपेक्षा पहला, तीसरा और पाँचवाँ पर्दा घुड़च की ओर बढ़ते हैं। पाँचवे का पश्चाद्वर्ती छठा पर्दा भी घुड़च की ओर बढ़ता है।

यह गति पहले पर्दे से उछलकर तीसरे, और तीसरे से उछलकर पाँचवे पर जाती दिखाई देती है, बीच मे दूसरे और चौथे पर्दे का स्पर्श तक इस गति मे नही होता। जिस प्रकार हिरन चौकड़ी भरते समय उछलता हुआ दौडता है और अगले-पिछले पैरो के मध्य स्थान का परित्याग-सा करता चलता है, वैसा ही प्रकार पहले, तीसरे और पाँचवे पर्दे की 'गति' मे दृष्टिगोचर होता है। पाँचवे पर्दे के पश्चात् यह उल्लंघन नही रहता और वह गति अगले पर्दे (छठे) पर भी दिखाई देकर 'अश्वगति' जैसी हो जाती है। फलतः इस मूर्च्छना का नाम 'हारिणाश्वा' है।

मध्य और तार स्थान के पर्दे भी इसी प्रकार यथास्थान सरकेंगे।

कलोपनता

अन्तरगान्धार-युक्त 'उत्तरायता' के 'ध, नि, स, रे, ग, म, प' को 'रे, ग, म, प, ध, नि' की संज्ञा दे देने से 'कलोपनता' मूर्च्छना की सिद्धि होती है।

सौवीरी की स्थिति की अपेक्षा इस मूर्च्छना मे पहला, दूसरा और पाँचवाँ पर्दा मेरु की ओर सरकाने पडते हैं। घुड़च की ओर केवल छठा पर्दा चतु:श्रुति षड्ज की सिद्धि के लिए एक श्रुति सरकाना पड़ता है, अत इसका नाम 'कलोपनता' है। अन्य स्थानो के पर्दे भी यथास्थान सरकेंगे।

शुद्ध मध्या

अन्तरगान्धार-युक्त 'शुद्धषड्जा' मूर्च्छना 'प, ध, नि, स, रे, ग, म' को क्रमश. 'स, रे, ग, म, प, ध, नि' की सञ्ज्ञा दे देने से 'शुद्धमध्या' की सिद्धि होती है।

हारिणाश्वा और कलोपनता मे मध्यम की सिद्धि के लिए सम्बद्ध पर्दो को सरकाना पड़ता है, परन्तु इस मूर्च्छना मे 'मध्यम' तीसरे पर्दे की अविकृत अवस्था मे ही मिल जाता है, फलत. इसका नाम 'शुद्धमध्या' है।

शुद्धमध्या मे दूसरा और चौथा पर्दा सौवीरी की स्थिति की अपेक्षा मेरु की ओर सरकेंगे। अन्य सप्तको में भी अभीष्ट पर्दे यथास्थान सरकेंगे।

मार्गी

अन्तरगान्धार-युक्त मत्सरीकृता मूर्च्छना के 'म, प, ध, नि, स, रे, ग' को क्रमशः 'नि, स, रे, ग, म, प, ध' की संज्ञा दे देने से 'मार्गी' मूर्च्छना की सिद्धि होती है।

इस मूर्च्छना मे 'सौवीरी' की स्थिति की अपेक्षा पहले पर्दे तथा छठे पर्दे को घुउच की ओर क्रमश एक और दो श्रुति चढ़ाना पडता है।

सौवीरी की स्थिति से इसकी स्थापना का 'मार्ग' सरलतापूर्वक मिल जाने के कारण अथवा सारणा मे मृग-जैसी गति होने के कारण यह मूर्च्छना 'मार्गी' कहलाती है।

पौरवी

अन्तरगान्धार-युक्त 'अश्वक्रान्ता' मूर्च्छना के 'ग, म, प, ध, नि, स, रे' को क्रमशः 'ध, नि, स, रे, ग, म, प' की सज्ञा दे देने से पौरवी की सिद्धि होती है।

किसी पौरव व्यक्ति अथवा 'जन' से किसी प्रकार सम्बद्ध होने के कारण इसकी संज्ञा 'पौरवी' है।

हृष्यका

अन्तरगान्धार-युक्त 'अभिरुद्गता' के 'रे, ग, म, प, ध, नि, स' को क्रमश. 'प, ध, नि, स, रे, ग, म' की संज्ञा दे देने से 'हृष्यका' की सिद्धि होती है। यह मूर्च्छना 'पञ्चम' से आरम्भ होकर 'पञ्चम' पर ही समाप्त होती है, जिसकी प्रधानता 'हास्य' एवं शृंगार में विनियोज्य है। 'नन्दयन्ती' (प्रसन्न करती हुई) नामक जाति में मतङ्ग ने इसी मूर्च्छना का प्रयोग किया है, इस प्रकार हर्षविधायिका होने के कारण सम्भवतः इसका नाम 'हृष्यका' है।

तृतीय अध्याय

जाति-लक्षण

रञ्जन और अदृष्ट अभ्युदय को जन्म देते हुए विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकार के सन्निवेश से युक्त होने पर 'जाति' कहे जाते हैं। दस लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर-सन्निवेश 'जाति' कहलाता है।[1]

जातियाँ श्रुति, ग्रह, स्वर इत्यादि के समूह से जन्म लेती है, इसलिए 'जातियाँ' कहलाती है, जातियो से 'रस' की प्रतीति उत्पन्न या आरम्भ होती है। अथवा 'राग' इत्यादि के जन्म का कारण होने से विशिष्ट-स्वरसन्निवेश 'जाति' की संज्ञा ले लेता है अथवा ये जातियाँ मनुष्यों की 'ब्राह्मणत्व' इत्यादि जातियों के समान है।[2]

जातियों के भेद

षाड्जी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, षड्जोदीच्यवती, षड्जकैशिकी और षड्जमध्या षड्जग्रामाश्रित सात जातियाँ है। गान्धारी, मध्यमा, गान्धारोदीच्यवा, पञ्चमी, रक्त-गान्धारी, गान्धारपञ्चमी, मध्यमोदीच्यवा, नन्दयन्ती, कार्मारवी, आन्ध्री तथा कैशिकी मध्यम-ग्रामाश्रित ग्यारह जातियाँ है। इस प्रकार जातियो की संख्या अठारह है।[3]

१—तत्र केयं जातिर्नाम ? उच्यते—स्वरा एवं विशिष्टसन्निवेशभाजो रक्तिमदृष्टाभ्युदयं च जनयन्तो जातिरित्युक्ताः। कोऽसौ सन्निवेश इति चेत्, जातिलक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेशः। —आचार्य अभिनवगुप्त, भ० को०, पृ० २२७

२—श्रुतिग्रहस्वरादिसमूहाज्जायन्त इति जातयः। अतो जातय इत्युच्यन्ते। यस्माज्जायते रसप्रतीतिरारभ्यत इति जातयः। अथवा सकलस्य रागादेः जन्महेतुत्वाज्जातय इति। यद्वा जातय इव जातयः, यथा नराणां ब्राह्मणत्वादयो जातयः। —मतङ्ग, भ० को०, पृ० २२७

३—षाड्जी चैवार्षभी चैव धैवती सनिषादिनी।
षड्जोदीच्यवती चैव तथा वै षड्जकैशिकी॥

इन अठारह में सात जातियो के नाम सात स्वरों पर है। वे दो प्रकार की है, शुद्ध और विकृत। षड्जग्राम मे षाड्जी, आर्षभी, धैवती और निषादवती (नैषादी) शुद्ध है। शुद्ध जातियाँ वे है, जिनमे कोई स्वर कम नही होता और नामस्वर ही जिनमे अश, ग्रह और न्यास होता है। न्यासस्वर के अतिरिक्त एक, दो या अनेक लक्षणो मे विकार होने पर ये जातियाँ विकृत कहलाने लगती है। फलत. जो शुद्ध है, वही विकृत भी हो जाती है।[४]

शुद्ध जातियो मे मन्द्रस्वर नियमपूर्वक न्यास होता है, परन्तु विकृत जातियो में यह नियम शिथिल भी हो जाता है। अठारह जातियो में ग्यारह जातियाँ दो या कई जातियो के ससर्ग के कारण विकृत हो जाती हैं। परस्पर संयोग से इन जातियो का निर्माण होता है।[५]

षाड्जी और मध्यमा के सयोग से '**षड्जमध्यमा**'; गान्धारी और षाड्जी के योग से **षड्जकैशिकी**; षाड्जी, गान्धारी और धैवती के योग से **षड्जोदीच्यवा**; षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा और धैवती के योग से **गान्धारोदीच्यवती**; गान्धारी, पञ्चमी, मध्यमा और धैवती से **मध्यमोदीच्यवती**; गान्धारी, पञ्चमी और सप्तमी (नैषादी) के योग से **रक्तगान्धारी**; गान्धारी और आर्षभी से **आन्ध्री**; आर्षभी, पञ्चमी और

षड्जमध्या तथा चैव षड्जग्रामसमाश्रया।
गान्धारी मध्यमा चैव गान्धारोदीच्यवा तथा॥
पञ्चमी रक्तगान्धारी तथा गान्धारपञ्चमी।
मध्यमोदीच्यवा चैव नन्दयन्ती तथैव च।
कर्मारवी च विज्ञेया तथान्ध्री कैशिकी तथा॥

—भरत०, ब० सं०, पृ० ४३९

४—एतासामष्टादशानां सप्त स्वराख्याः। ताश्च द्विविधाः शुद्धा विकृताश्च। तत्र शुद्धा. षड्जग्रामे षाड्जी आर्षभी धैवती निषादवती च। गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी चेति मध्यमग्रामे। शुद्धा अन्यूनस्वरा. स्वरांशग्रहन्यासाः। एषामन्य-तमेन द्वाभ्यां बहुभिर्वापि लक्षणैर्विक्रियामुपगता न्यासवर्जं विकृतसंज्ञा भवन्ति। तेन ता एव शुद्धास्ता एव च विकृता.। —भरत, ब० सं०, पृ० ४३९

५—न्यासविधावप्यासां मन्द्रो नियमाद् भवति शुद्धासु विकृतास्वनियमात्। तत्रैका-दश संसर्गजा विकृता.। परस्पर संयोगादेकादश निर्वर्तयन्ति। यथा—

शुद्धा विकृताश्चैव हि समवायाज्जातयस्तु जायन्ते।
ता एव शुद्धविकृता भवन्ति चैकादशान्यासु॥

गान्धारी से **नन्दयन्ती**; नैषादी, आर्षभी और पञ्चमी के संसर्ग से **कार्मारवी**; गान्धारी और पञ्चमी के मिश्रण से **गान्धारपञ्चमी**; तथा षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी एवं नैषादी के मिश्रण से **कैशिकी** जाति का निर्माण होता है।[६]

इन जातियों में से चार जातियाँ सदा सप्तस्वरा, दस पञ्चस्वरा और चार षट्स्वरा होती हैं।[७]

मध्यमोदीच्यवा, षड्जकैशिकी, कार्मारवी तथा गान्धारपञ्चमी सदा सप्तस्वरा होती हैं; षाड्जी, आन्ध्री, गान्धारोदीच्यवा और नन्दयन्ती षट्स्वरा और अवशिष्ट दस जातियाँ पञ्चस्वरा भी होती हैं। जिन्हें पञ्चस्वरा कहा गया है, वे कभी षट्स्वरा और जिन्हें षट्स्वरा कहा गया है, वे कभी पञ्चस्वरा भी होती हैं।[८]

६—स्यात् षड्जमध्यमायां निर्वृत्ता षड्जमध्यमा जाति.।
गान्धारीषाड्जीभ्यां संयोगात् षड्जकैशिकी वापि ॥
षाड्जीगान्धारीभ्या धैवत्याश्चापि या विनिष्पन्ना।
संसर्गाद् विज्ञेया सा षड्जोदीच्यवा जाति.॥ —भरत०, ब० स०, पृ० ४४१
षाड्जीगान्धारीभ्या धैवत्याश्चापि मध्यमायाश्च।
गान्धारोदीच्यवा स्यान्निर्वृत्ता नामतो जाति.॥ —भरत०, का० स०, पृ० ३२३
गान्धारपञ्चमाभ्यां मध्यमया विरचिता च धैवत्या।
जातिस्तु मध्यमोदीच्यवेति सद्भिः सदा ज्ञेया॥
गान्धारीपंचम्यो सप्तम्याश्चैव रक्तगान्धारी।
गान्धार्य्यार्षभीभ्यामान्ध्री सञ्जायते जातिः॥
योनिस्तु नन्दयन्त्यास्त्वार्षभी पञ्चमी सगान्धारी।
कार्म्मारवी निषादी सार्षभी पञ्चमी कुर्य्युः॥
गान्धारीपञ्चम्योर्योगाद् गान्धारपञ्चमी जाति.।
धैवत्यार्षभीभ्यां हीना खलु कैशिकी कुर्य्युः॥ —भरत०, ब० स०, पृ० ४४१

७—आभ्यां चतस्रो नियमाज्ज्ञेयाः सप्तस्वरा बुधै.।
दश पञ्चस्वरा ज्ञेयाश्चतस्रश्चैव षट्स्वराः॥ —भरत०, ब० स०, पृ० ४४१

८—मध्यमोदीच्यवा चैव तथा वै षड्जकैशिकी।
कार्म्मारवी च सम्पूर्णा तथा गान्धारपञ्चमी॥
षड्जान्ध्री नन्दयन्ती च गान्धारोदीच्यवा तथा।
चतस्रः षट्स्वरा ज्ञेयाः पञ्चवस्तुस्वरा दश॥
यास्ताः पञ्चस्वराः प्रोक्ता याश्चैव षट्स्वरा. स्मृता.।
कदाचिदौडुवीभूता. कदाचित् षाडवीकृताः॥ —भरत०, ब० सं०, पृ० ४४१

भरत-सम्प्रदाय में यह नियम है कि 'अश' स्वर के सवादी स्वर का लोप कभी नही होता, फलत कुछ जातियो में स्वरविशेप का अशत्व उनकी पाडव या औडुव अवस्था का बाधक हो जाता है। पाडव या औडुव अवस्था के बाधक अशस्वर षाडवद्वेषी या औडुवद्वेपी कहलाते हैं।

पड्जमध्यमा जाति का षाडव प्रकार निपाद के लोप से बनता है। यदि निपाद ही उस जाति में अशस्वर हो, तो उसकी पाडवावस्था असम्भव है। इस जाति की औडुवावस्था 'निपाद-गान्धार' के लोप से होती है। निपादाश अवस्था में षाडव बनाने के लिए निषाद के सवादी गान्धार का लोप असम्भव है।[९]

मध्यमग्रामीय गान्धारी, रक्तगान्धारी और कैशिकी जातियो का षाडव रूप ऋषभ के लोप से होता है। मध्यमग्राम मे ऋषभ-पञ्चम सवाद है, फलतः इन तीन जातियो की पाडवावस्था मे पचम अंशस्वर कभी नही होता, पञ्चम के 'अंश' होने पर ऋषभ का लोप असम्भव है।[१०]

षाड्जी में 'निषाद' का लोप इस जाति को षाडव बनाता है, फलतः इस जाति में गान्धार के अशस्वर होने पर उसके संवादी निषाद का लोप असम्भव है।[११]

पड्जोदीच्यवती मे ऋषभ का लोप उसे षाडव बनाता है, फलतः धैवत के अंश-स्वर होने पर ऋषभ का लोप असम्भव है।[१२]

अत पड्जमध्यमा मे निपाद, गान्धारी, रक्तगान्धारी और कैशिकी मे पञ्चम (तीन जातियों में), षाड्जी मे गान्धार और पड्जोदीच्यवती मे धैवत अश होने पर षाडवद्वेषी हो जाते हैं।[१३]

गान्धारी मे पड्ज-मध्यम-पञ्चम-निपाद, रक्त-गान्धारी में पड्ज-मध्यम-

---

९—षट्स्वरी सप्तमे त्वंशे नेष्यते षड्जमध्यमा।
सवादिलोपाद् गान्धारस्तत्रैव न भविष्यति ॥ —भरत०, ब० सं०, पृ० ४४१

१०—गान्धारी-रक्तगान्धारी-कैशिकीना तु पञ्चमम्।
—भरत, ब० सं०, पृ० ४४१

११—षाड्जायाञ्चैव गान्धारमनंशं विद्धि षाडवे।
—भरत०, ब० सं०, पृ० ४४१

१२—षड्जोदीच्यवत्याश्चैव धैवतांशे न षाडवम्।
—भरत०, ब० सं०, पृ० ४४२

१३—संवादिलोपात्सप्तैते षाट्स्वर्य्ये तु विवर्जिताः। —भरत०, का० सं०, पृ० ३२४
षाट्स्वर्य-वर्जित इन स्वरों की संख्या छः होती है, मध्यम सदा षाडवद्वेषी होता है, सम्भवतः महर्षि ने उसे जोड़कर समस्त षाडवद्वेषी स्वर सात माने हैं।

पञ्चम-निषाद, षड्जमध्यमा मे गान्धार-निषाद, पञ्चमी में ऋषभ और कैशिकी मे धैवत स्वर औडुवावस्था में लुप्त नही होते ।[१४]

जातियों में सभी स्वरो का लोप विहित है, परन्तु मध्यम का लोप कभी नही करना चाहिए । सातों स्वरो मे मध्यम अविनाशी स्वर है । साम गान करनेवालो ने भी गान्धर्व कल्प में मध्यम का विधान अनाशी रूप मे किया है ।[१५]

जाति के दस लक्षण

जाति के दस लक्षण अंश, ग्रह, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, वहुत्व, पाडव और औडुवित हैं ।[१६]

(१) अंशस्वर

जिस स्वर में राग रहता है, जिस स्वर से **प्रवर्तित होता है**, जो **तार** और **मन्द्र** अवधि का **नेता**, नियामक या प्रदर्शक है, जिसका प्रयोग **अधिक** पाया जाता है, **ग्रह**, **अपन्यास**, **विन्यास**, **संन्यास** एवं **न्यास** आदि के योग से जिसका पुनः-पुन. अनुवर्तन होता है, वह इन दस (स्थूलाक्षरों में निर्दिष्ट) लक्षणों से युक्त स्वर 'अंश' कहलाता है ।[१७]

१४–गान्धारीरक्तगान्धार्यौ षड्जमध्यमपञ्चमाः ।
सप्तमश्चैव विज्ञेयः येषु* चौ(नौ)डुवितं भवेत् ॥
द्वौ षड्जमध्यमांशौ तु गान्धारोऽथ निपादवान् ।
ऋपभश्चैव पञ्चम्यां कैशिक्याञ्चैव धैवतः ॥
एवं हि द्वादशैते स्युः वर्ज्याः पञ्चस्वरे सदा ।
तास्वनौडुविता नित्यं कर्तव्या जातयो बुधै. ॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ४४२

१५–सर्वस्वराणां नाशस्तु विहितस्त्वथ जातिपु ।
न मध्यमस्य नाशस्तु कर्तव्यो हि कदाचन ॥
सप्तस्वराणां प्रवरो ह्यनाशी चव मध्यमः ।
गान्धर्वकल्पेऽभिमतः सामगैश्च महर्षिभिः ॥
—भरत०, का०, सं०, पृ० ३२४

१६–ग्रहांशौ तारमन्द्रौ च न्यासापन्यास एव च ।
अल्पत्वञ्च बहुत्वञ्च पाडवौडुविते तथा ॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ४४३

१७–रागश्च यस्मिन् वसति यस्माच्चव प्रवर्तते ।
नेता च तारमन्द्राणां योऽत्यर्थमुपलभ्यते ।

* (सप्तमी चैव विज्ञेया यासु ?)

षाड्जी में षड्ज, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत; **आर्षभी** में ऋषभ, निषाद, धैवत; **गान्धारी** में षड्ज, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाद; **मध्यमा** में षड्ज, ऋषभ, मध्यम, पञ्चम, धैवत; **पञ्चमी** में ऋषभ, पञ्चम; **धैवती** में ऋषभ, धैवत; **नैषादी** में निषाद, ऋषभ, गान्धार; **षड्जकैशिकी** में षड्ज, गान्धार, पञ्चम; **षड्जोदीच्यवती** में षड्ज, मध्यम, धैवत, निषाद; **षड्जमध्यमा** में षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद; **गान्धारोदीच्यवा** में षड्ज, मध्यम; **रक्तगान्धारी** में षड्ज, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाद; **कैशिकी** में षड्ज, गाधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद; **मध्यमोदीच्यवा** में पञ्चम; **कार्मारवी** में ऋषभ, पञ्चम, धैवत, निषाद; **गान्धारपञ्चमी** में पञ्चम; **आन्ध्री** में ऋषभ, गान्धार, पञ्चम, निषाद और **नन्दयन्ती** में पञ्चम स्वर को अंशावस्थाएँ प्राप्त होती है।[१८]

ग्रहापन्यास-विन्यास—सन्यास—न्यासयोगतः।
अनुवृत्तश्च यश्चेह सोऽशः स्याद् दशलक्षणः॥
—भरत०, रत्नाकर की टीका मे कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत

१८–मध्यमोदीच्यवायास्तु नन्दयन्त्यास्तथैव च।
तथा गान्धारपञ्चम्याः पञ्चमोऽशो ग्रहस्तथा।
धैवत्याश्च तथैवाशौ विज्ञेयौ धैवतर्षभौ।
पञ्चम्यास्तु ग्रहावंशौ भवत पञ्चमर्षभौ।
गान्धारोदीच्यवायास्तु ग्रहाशौ षड्जमध्यमौ।
आर्षभ्या तु निषादस्तु तथा चर्षभधैवतौ।
निषाद्या च निषादस्तु गन्धारश्चर्षभस्तथा।
तथा च षड्जकैशिक्यां षड्जगान्धारपञ्चमा.।
तिसृणामपि जातीना ग्रहास्त्वशास्तु कीर्तिता.।
षड्जश्च मध्यमश्चैव निषादो धैवतस्तथा।
षड्जोदीच्यवतीजातेर्ग्रहास्त्वंशाश्च कीर्तिताः।
पञ्चमश्चर्षभश्चैव निषादो धैवतस्तथा।
कर्मारव्या बुधैरशा ग्रहाश्च परिकीर्तिताः।
गान्धारश्चर्षभश्चैव पञ्चमोऽथ निषादवान्।
चत्वारोऽशा भवन्त्यान्ध्र्या ग्रहाश्चैते तथैव हि।
ऋषभश्चैव षड्जश्च मध्यम. पञ्चमस्तथा।
मध्यमाया ग्रहा ज्ञेया अंशाश्चैव सधैवता.।
निषादषड्जगान्धारा मध्यमः पञ्चमस्तथा।

इस प्रकार कुल अंशस्वर तिरसठ[१९] हो जाते हैं, जो निम्नस्थ सारणी में स्पष्ट है–

जाति	अंशस्वर	संख्या
१. षाड्जी	स, ग, म, प, ध	५
२. आर्षभी	रे, नि, ध	३
३. गान्धारी	स, ग, म, प, नि	५
४. मध्यमा	स, रे, म, प, ध	५
५. पञ्चमी	रे, प	२
६. धैवती	रे, ध	२
७. नैषादी	नि, रे, ग	३
८. षड्जकैशिकी	स, ग, प	३
९. षड्जोदीच्यवती	स, म, ध, नि	४
१०. षड्जमध्यमा	स, रे, ग, म, प, ध, नि	७
११. गान्धारोदीच्यवा	स, म	२
१२. रक्तगान्धारी	स, ग, म, प, नि	५
१३. कैशिकी	स, ग, म, प, ध, नि	६
१४. मध्यमोदीच्यवा	प	१
१५. कार्मारवी	रे, प, ध, नि	४
१६. गान्धारपञ्चमी	प	१
१७. आन्ध्री	रे, ग, प, नि	४
१८. नन्दयन्ती	प	१
	योग	६३

गान्धारीरक्तगान्धार्योर्ग्रहांशाः परिकीर्तिताः ।
षड्जाया षड्जगान्धारौ मध्यमः पञ्चमस्तथा ।
धैवतस्यापि विज्ञेया ग्रहाश्चांशाः प्रकीर्तिताः ।
कैशिक्याञ्च ऋषभहीना ग्रहांशाः षट्स्वराः स्मृताः ।
सर्वस्वरग्रहांशाश्च विज्ञेयाः षड्जमध्यमा ।
एवं त्रिषष्टिर्विज्ञेया ग्रहाश्चांशाश्च जातिषु । भरत०, ब० सं०, पृ० ४४४-४४५

१९–द्वैग्रामिकीणां जातीनां सर्वासामपि नित्यशः ।
त्रिषष्टिरंशा विज्ञेयास्तासाञ्चैव तथा ग्रहाः ॥
—भरत०, ब० सं०, पृ० ४४४

(२) ग्रहस्वर

अंशस्वर ही समस्त जातियों के 'ग्रह' स्वर होते हैं।[20] प्रवृत्ति अर्थात् प्रयोग या गान-वादन में जो स्वर अंश होता है, वही 'ग्रह' माना जाता है।[21] जातियों के गान-वादन का आरम्भ अंशस्वर से ही होता है, उस अवस्था में 'अंश' स्वर ही 'ग्रह' कहलाता है। गान-वादन का 'ग्रहण' (आरम्भ) अंशस्वर से होने के कारण ही उसे 'ग्रह' कहते हैं।

(३) तारगति

जाति-प्रयोगों में अंशस्वर से चौथे, पाँचवे या सातवें स्वर तक तारस्थान में जाना चाहिए, इससे ऊँचा जाना जाति-प्रयोग में अभीप्ट नहीं।[22] जाति-विशेष में अंश-विशेष से मूर्च्छना का आरम्भ होने के कारण मूर्च्छना के तार-स्थान में अंशस्वर से सातवे स्वर की ही सत्ता सम्भव है, क्योंकि इससे आगे अति तार स्वर आयेगा, जिसका प्रयोग भरत-सम्प्रदाय में नहीं।

(४) मन्द्रगति

मन्द्रगति तीन प्रकार की है, 'अंश' तक, 'न्यास' तक या 'अपन्यास' तक[23]। अवरोहोन्मुख अवस्था में अंशस्वर से पश्चात् मन्द्र नहीं होता, क्योंकि तीनों स्थानों में आरम्भ-स्वर 'अंश' ही होता है। मन्द्रगति की अवधि 'न्यास' और 'अपन्यास', ये दो

२०—ग्रहास्तु सर्वजातीनामंशवत् परिकीर्तिता.।
यः प्रवृत्तौ भवेदंश. सोऽसौ ग्रहविकल्पित.॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ४४२

२१—ग्रहस्तु सर्वजातीनामंश एव हि कीर्तित.।
यत्प्रवृत्तौ भवेद् गानं सोऽंशो ग्रहविकल्पितः॥
—भरत०, का० सं०, पृ० ३२४

२२—अंशात्तारगतिं विद्यादाचतुर्थस्वरादिह।
आ पञ्चमात्सप्तमाद् वा नात. परमिहेप्यते।
—भरत०, रत्नाकर की कल्लिनाथ टीका में उद्धृत (अडयार-संस्करण)
अंशाक्षरैर्गतिं विद्यादाचतुर्थस्वरादिह।
आ पञ्चमात्सप्तमाद् वा नात. परमिहेष्यते।
—भरत०, रत्नाकर की कल्लिनाथ टीका (आनन्दाश्रम संस्क०)

२३—त्रिविधा मन्द्रगति.—अंशपरा, न्यासपरा, अपन्यासपरा च।
—भरत०, व० सं०, पृ० ४४३

स्वर भी, विहित है। हाँ, गान्धार के न्यास स्वर होने पर अवरोहात्मक गति में उसके पश्चाद्वर्ती ऋषभ का प्रयोग भी देखा जाता है। उदाहरणतया 'नन्दयन्ती' जाति में गान्धार न्यास स्वर है, परन्तु उसमे मन्द्रगान्धार से, अवरोहात्मक रूप मे पश्चाद्वर्ती ऋषभ का प्रयोग भी देखा जाता है।[२४]

(५) न्यास-स्वर

जिस स्वर पर 'अङ्ग' (गीत या वाद्य-प्रवन्ध) की समाप्ति होती हो, वह 'न्यास' कहलाता है। 'न्यास' स्वर इक्कीस हैं।[२५]

एक स्वर कई जातियो मे न्यासस्वर हो सकता है और अवस्था-भेद से एक जाति मे कई 'न्यास' स्वर भी हो सकते हैं। फलतः न्यासस्वरों की संख्या इक्कीस हो जाती है।

निम्नस्थ सारणी मे यह स्थिति स्पष्ट है—

न्यासस्वर	जाति	संख्या
षड्ज	षाड्जी, षड्जमध्यमा	२
ऋषभ	आर्षभी	१
गान्धार	गान्धारी, रक्तगान्धारी, षड्जकैशिकी, आन्ध्री, कैशिकी, नन्दयन्ती	६
मध्यम	मध्यमा, षड्जमध्यमा, षड्जोदीच्यवा, गान्धारोदीच्यवा, मध्यमोदीच्यवा	५
पञ्चम	पञ्चमी, गान्धारपञ्चमी, कैशिकी, कार्मारवी	४
धैवत	धैवती	१
निषाद	कैशिकी, नैषादी	२
	योग	२१

२४—मन्द्रस्त्वशपरो नास्ति न्यासे तु द्वौ व्यवस्थितौ।
गान्धारन्यासलिङ्गेन दृष्टमृषभसेवनम्॥
—भरत०, रत्नाकर टीका मे कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत

२५—'एकविंशतिविधो न्यासो ह्यङ्गसमाप्तौ.....
न्यासो ह्यङ्गसमाप्तौ स चैकविंशतिविधो विधातव्यः।
—भरत०, व० सं०, पृ० ४४३

(६) अपन्यास स्वर

जिस स्वर पर 'अङ्ग' (गीत या वाद्य-प्रबन्ध) के मध्य की समाप्ति होती हो, वह 'अपन्यास' कहलाता है।[२६] एक जाति के अपन्यास स्वर कई हो सकते हैं तथा एक स्वर कई जातियो मे अपन्यास स्वर हो सकता है। फलतः अपन्यास स्वर के छप्पन प्रकार हो जाते है।[२७] कभी-कभी ऋषभ को भी 'कैशिकी' जाति का अपन्यास स्वर माना जाता है, उस दशा मे अपन्यास स्वरो की संख्या सत्तावन हो जायगी।[२८]

निम्नलिखित सारणी मे अपन्यास स्वर के समस्त प्रकार स्पष्ट हैं—

अपन्यास स्वर	जातियाँ	संख्या
षड्ज	षड्जकैशिकी, षड्जोदीच्यवा, षड्जमध्यमा, गान्धारी, गान्धारोदीच्यवा, मध्यमा, मध्यमोदीच्यवा, कैशिकी	८
ऋषभ	षड्जमध्यमा, आर्षभी, गान्धारपञ्चमी, पञ्चमी, धैवती, नैषादी, कार्मारवी, मध्यमा, आन्ध्री	९
गान्धार	षाड्जी, षड्जमध्यमा, कैशिकी, आन्ध्री, नैषादी	५
मध्यम	गान्धारी, मध्यमा, षड्जमध्यमा, धैवती, नैषादी, कैशिकी	६
पञ्चम	षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, षड्जमध्यमा, गान्धारपञ्चमी, पञ्चमी, कैशिकी, आन्ध्री, नन्दयन्ती, कार्मारवी, षड्ज-कैशिकी	११
धैवत	षड्जोदीच्यवा, आर्षभी, गान्धारोदीच्यवा, मध्यमोदी-च्यवा, षड्जमध्यमा, मध्यमा, धैवती, कैशिकी, कार्मारवी	९
निषाद	षड्जकैशिकी, आर्षभी, षड्जमध्यमा, पञ्चमी, नैषादी, कैशिकी, आन्ध्री, कार्मारवी	८
	योग	५६

२६—तद्वदपन्यासोऽप्यङ्गमध्ये......

—भरत०, व० सं०, पृ० ४४३

२७—'षट्पचाशत्संख्योऽङ्गमध्येऽपन्यास एव स्यात्।

—भरत०, व० सं०, पृ० ४४३

२८—'अपन्यासः कदाचिच्च ऋषभोऽपि भवेदिह।

—भरत०, व० सं०, पृ० ४५२

(७) अल्पत्व

स्वरो का अल्पत्व दो प्रकार से होता है, 'लङ्घन' से या 'अनभ्यास' से ।[२९] स्वर का ईषत् स्पर्श भी 'लङ्घन' है और उसका परित्याग भी ।[३०] स्वर-विशेप की अनावृत्ति (एक से अधिक वार न लगाना) 'अनभ्यास' कहलाती है । जिन स्वरो के लोप से जाति-विशेप के पाडव या औडुव प्रकार वनते हों, वे उस जाति मे 'लोप्य' स्वर कहलाते हैं । उस जाति की सम्पूर्णावस्था में भी लोप्य स्वरो का प्रयोग अल्प होता है । जिस जाति मे जो स्वर 'अंश' नही होते, वे उस जाति के 'अनंश' स्वर कहलाते हैं । लोप्य स्वरों का ईषत्स्पर्श भी होता है और अनभ्यास, अनंश या लोप्य स्वरो का ।[३१]

(८) बहुत्व

स्वर-विशेष का पूर्ण रूप से स्पर्श करते हुए उसकी पुनः पुन. आवृत्ति बहुत्व का एक प्रकार है और स्वर-विशेष का अपरित्याग वहुत्व का दूसरा प्रकार है । अल्पत्व का उलटा होने के कारण ही वहुत्व भी दो प्रकार का है । वहुत्व मे जातिविशेष के अन्य वली (अंशो तथा उनके सवादी एवं अनुवादी) स्वरों का भी सञ्चार (आरोहावरोह मे पुन. पुनः प्रयोग) होता है ।[३२]

(९) षाडवित

'अन्तरमार्ग' को प्राप्त, गाये हुए अनश स्वरो में लंघन एवं अनभ्यास से एक बार यथा-जाति उच्चारण षाडवित (और औडुवित) है ।[३३]

'षट्' का अर्थ छ· और 'अव्' का अर्थ रक्षण है । जाति, राग इत्यादि के 'अव'

२९–द्विविधमल्पत्वम्—लङ्घनादनभ्यासाच्च ।

—भरत०, व० सं०, पृ० ४४३

३०–ईषत्स्पर्शो लङ्घन स्यात् ।

—सं० रत्ना०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १९०

३१–ईषत्स्पर्शो लङ्घनं स्यात्प्रायस्तल्लोप्यगोचरम् ।
अनभ्यासस्त्वनशेषु प्रायो लोप्येष्वपीष्यते ॥ " "

३२–तद्वद् बहुत्वमल्पत्वविपर्ययाद् द्विविधमेवान्येषां बलिनां सञ्चारः ।

—भरत०, व० सं०, पृ० ४४३

३३–तत्र पाडवौडुवितत्वकरणमं (मनं ?) शानां गीतानामन्तरमार्गमुपगताना स्वराणा लङ्घनादनभ्यासाच्च सकृदुच्चारणं यथाजाति ।

—भरत०, व० सं०, पृ० ४४३

'रक्षक' 'पट्' स्वर 'पडव' (पट्+अव) कहलाते है। पडव स्वरो मे व्यक्त होने के कारण ही पट्स्वर गीत पाडव कहलाते है।[३४]

चार नित्य सम्पूर्ण जातियो के अतिरिक्त चौदह जातियो का पाडवीकरण होता है। इन चौदह जातियो के समस्त अशस्वरो का योग चौवन है। सात पाडवद्वेपी स्वरो को इस सख्या मे से घटा देने पर षाडवित प्रकार सैतालीस रह जाते है। इसी लिए कहा गया है, षट्स्वर षाडवित चतुर्दशविध है, जिनके (उप) प्रकार सैतालीस होते है।[३५]

(१०) औडुवित

उडु का अर्थ (नक्षत्र) और 'वा' का अर्थ 'गमन करना' है। 'उडु' जिसमे 'वान' करे, वह 'उडुव' कहलाता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश मे आकाश (उडुव) का स्थान पॉचवॉ है, अत पॉचवी सख्या 'औडुवी' कहलाती है। सात स्वरो मे नियमानुसार दो स्वरो का लोप होने पर अवशिष्ट पॉच स्वर 'औडुव' कहलाते है। सम्पूर्ण अवस्था को औडुव अवस्था मे परिणत करना ही औडुवित या औडुवीकरण है।[३६]

आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी, धैवती, नैषादी, षड्जोदीच्यवा, षड्जमध्यमा, रक्तगान्धारी और कैशिकी, इन दस जातियो मे औडुवित प्रयोग होता है।

दस औडुवित जातियो के अशस्वरो का योग बयालीस है, इनमे से बारह औडुवद्वेपी स्वरो की सख्या घटा देने पर वे अशस्वर तीस बचते है,जो औडुवित प्रकारो की सख्या

३४—पडवन्ति प्रयोग ये स्वरास्ते पाडवा मता'। पट्स्वर तेपु जातत्वाद् गीतं पाडवमुच्यते॥
—रत्नाकर, स्वरा०, अ० सं०, पृ० १९१

३५—पट्स्वरं पाडवितं चतुर्दशविधं सप्तचत्वारिंशत्प्रकारम्। पूर्वोक्तविधान यथाजात्यंशप्रकारैरिति॥
—भरत०, ब० सं०, पृ० ४४४

३६—वान्ति यान्त्युडवोऽत्रेति व्योमोक्तमुडुवं बुधैः।
पञ्चमं तच्च भूतेपु पञ्चसंख्या तदुद्भवा॥
औडवी सास्ति येपा च स्वरास्ते त्वौडुवा मता.।
ते सञ्जाता यत्र गीते तदौडुवितमुच्यते।
तत्सम्बन्धादौडुवं च पञ्चस्वरमिदं विदुः॥
—रत्नाकर, स्वरा०, पृ० १९२

भी 'तीस' कर देते हैं। इसी लिए कहा गया है कि प्रयोगज्ञो को औडुवित दशविध समझना चाहिए, जिसके प्रकार तीस हैं।[३७]

महर्पि भरत के दस जातिलक्षणो की व्याख्या उपर्युक्त है। अन्तरमार्ग, सन्यास और विन्यास को महर्पि ने पृथक् लक्षण न मानकर इनका अन्तर्भाव दस लक्षणो मे किया है। शार्ङ्गदेव ने इन तीनो को पृथक् गिनकर 'जाति-लक्षण' तेरह वताये है।[३८]

(१) अन्तरमार्ग

न्यास, अपन्यास, विन्यास, ग्रह और अंश के स्थान के अतिरिक्त, वीच-वीच मे अश, ग्रह, अपन्यास, विन्यास एवं सन्यास स्वरों के साथ अल्प स्वरो की विचित्रता उत्पन्न करनेवाली सङ्गति, जो कही अनभ्यास और कही लंघन द्वारा हो, 'अन्तरमार्ग' कहलाती है, जो प्राय: विकृत जातियों में होती है।[३९]

(२) संन्यास

गीत की प्रथम 'विदारी' को समाप्त करनेवाला अंश का संवादी या अनुवादी स्वर सन्यास कहलाता है। 'विदारी' का अर्थ 'गीतखण्ड' है।[४०]

३७–पञ्चस्वरमौडुवितं विज्ञेय दशविधं प्रयोगज्ञै.।
त्रिशत्प्रकारविहितं पूर्वोक्तं लक्षणं त्वस्य ॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ४४४

३८–यद्यपि भरतमतङ्गादिभि: संन्यासविन्यासयोर्विदार्याश्रितत्वादपन्यासेऽन्तर्भावेणान्तरमार्गस्याप्यशाद्यवयवानामन्योन्यसंघटनात्मकस्याशादिसम्बन्धाधीनसिद्धे: पृथगुद्देशो नापेक्षित इति दशकं जातिलक्षणमित्युक्तम्, तथापि संन्यासविन्यासयो. पृथगवयवत्वेनान्तरमार्गस्य तु सत्स्वशादिष्ववयवेषु तेन विना प्रयोगासिद्धेस्तस्यावश्यकत्वाल् लक्षणेषु पृथगुद्दिश्य त्रयोदशेत्युक्तं ग्रन्थकारेण।
—आचार्य कल्लिनाथ, सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० १८१

३९–न्यासादिस्थानमुज्झित्वा मध्ये मध्येऽल्पतायुजाम्।
स्वराणां या विचित्रत्वकारिण्यंशादिसङ्गतिः।
अनभ्यासै. क्वचित् क्वापि लङ्घनैरेव केवलै.।
कृता सान्तरमार्गः स्यात् प्रायो विकृतजातिपु ॥
—आचार्य शार्ङ्गदेव, सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १९१

४०–अंशाविवादी गीतस्याद्यविदारीसमाप्तिकृत्।
—आचार्य शार्ङ्गदेव, सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १८९

(३) विन्यास

जो स्वर विदारी के खण्डरूप पदों अर्थात् शब्दो के अन्त में रहता है, वह 'विन्यास' कहलाता है।[४१]

स्थायी स्वर

महर्षि भरत ने इस परिभाषा की चर्चा की है, परन्तु नाट्यशास्त्र के अट्ठाईसवें अध्याय मे यह शब्द नही आया है। गान-क्रिया मे 'इकतारे' या तानपूरे पर 'अंश' स्वर निरन्तर गूँजता रहता था। तन्त्रीवाद्यो मे चिकारियाँ 'अंश' स्वर मे मिलायी जाती थी।[४२] निरन्तर गूँजते रहने के कारण ही 'अंश' स्वर 'स्थायी स्वर' कहलाता था। प्राचीन सम्प्रदाय का लोप हो जाने के कारण हम आज प्रत्येक 'स्थायी स्वर' को षड्ज कहने लगे है, फलत. स्थायी स्वर से अगले स्वरों को हम आज 'ऋषभ' इत्यादि की सज्ञा दे डालते है।

'उपोहन' क्रिया मे 'स्थायी' स्वर को ही आधार स्वर मानकर अग्रिम स्वरों की यथास्थान स्थापना की जाती थी।[४३] 'ध्रुवा'[४४] इत्यादि के गान मे राग के प्रकाशन के लिए 'झण्टुम्'[४५] इत्यादि वर्णो (अक्षरो) का स्थायिस्वराश्रित परिग्रह तथा 'लघु'

४१– ..अंशाविवाद्येव विन्यास. स तु कथ्यते।
यो विदारीभागरूपपदप्रान्तेऽवतिष्ठते ॥
—आचार्य शार्ङ्गदेव, सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १८९

४२–गान्धाराद्यंशत्वमपि स्वस्थानस्थितानामेव। तेषां स्थायित्वकरणमपि वीणाया-मुपतन्त्रीणां स्वनादसाम्यापादनमिति रहस्यम्।
—आचार्य कल्लिनाथ, स० र०, स्वरा०, अ० सं०, पृ०२०३

४३–उपोह्यन्ते समासव्यासतः पदकालतालमभिहिता. स्वरा यस्मिन् अङ्गे तत् तथोक्तम्।
—आचार्य अभिनवगुप्त, ना० शा०, बडोदा, द्वि० संस्क०, चतुर्थ अ०, पृ० १८५

४४–गेय पदविशेष 'ध्रुवा' कहलाते है, जिनका विस्तृत परिचय यथास्थान दिया जायेगा।

४५–कुछ निरर्थक अक्षर या अक्षरसमूह ब्रह्मप्रोक्त शुष्काक्षर कहलाते है, वहिर्गीत या निर्गीत प्रयोग मे इनका प्रयोग सार्थक शब्दो के स्थान पर होता है। उपोहन क्रिया मे गेय छन्द की गति, यति, लघु आदि अक्षरो का अनुकरण करनेवाला निरर्थक छन्द भी इनसे वन जाता है।

इत्यादि काल के परिज्ञान के लिए ताल का परिग्रह 'उपोहन' कहलाता है[४६]। 'उपोहन' से गीत की प्रवृत्ति (आरम्भ) होती है और वह स्थायिस्वराश्रित होता है।[४७] फलतः महर्षि भरत के अनुसार भी गीत का प्रवर्तक स्थायी स्वर 'अंश स्वर' ही है।

आचार्य शार्ङ्गदेव ने स्थायी स्वर की परिभाषा करते हुए कहा है कि जिस पर राग का उपवेशन (अधिष्ठान) किया जाय, वह स्थायी स्वर कहलाता है।[४८] फलतः स्थायी स्वर राग का 'स्थान' है,[४९] वही राग में प्रयोज्य सप्तक का आरम्भक स्वर होता है।[५०]

जातियों के लक्षण

जातियाँ ब्रह्महत्या के पातक से भी मुक्ति दिलानेवाली मानी गयी हैं, इसी लिए उनमे मनमाना परिवर्तन नही किया जा सकता। जिस प्रकार ऋक्, यजु और साम मे परिवर्तन नही किया जा सकता, उसी प्रकार वेदसम्मित जातियों मे परिवर्तन असम्भव

४६–उपोहनं नाम–ध्रुवादिगानेषु रागप्रकाशनार्थं स्थायिस्वराश्रयणेन झण्टुमादिवर्ण-परिग्रहो लघ्वादिकालपरिज्ञानाय तालपरिग्रहश्च।
—आचार्य कल्लिनाथ, स० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० ३१

४७–उपोह्यन्ते स्वरा यस्मात् तस्माद् गीतं प्रवर्तते।
तस्मादुपोहनं ज्ञेयं स्थायिस्वरसमाश्रयम्॥
—नाट्यशास्त्र, का० सं०, ३१ अ०, पृ० ३६०

४८–(अ) यत्रोपवेश्यते रागः स्थायी स्वरः स कथ्यते।
—आचार्य शार्ङ्ग०, सं० र०, अ० सं०, प्रकीर्णका०, पृ० १७६

(आ) यत्र यस्मिंस्तत्तद्रागांशभूते षड्जादिष्वन्यतमे स्वरे राग उपवेश्यते स्थाप्यते स स्वरो रागस्थितिहेतुत्वात् स्थायीति कथ्यते।
—आचार्य कल्लिनाथ, स० र०, अ० सं०, प्रकी०, पृ० १७६

४९–स्थायिन रागस्थितं स्थानमित्यर्थः।
—आचार्य कल्लिनाथ, सं० र०, अ० स०, वाद्या०, पृ० २९६

५०–अस्यां स्थायिनमारभ्य गणयेत् सप्तकद्वयम्।
—आचार्य शार्ङ्गदेव, सं० र०, अ० सं०, वाद्या०, पृ० २८३

अस्यां किन्नर्यां स्थायिनमंशस्वरमारभ्य सप्तकद्वय गणयेत्।
—आचार्य कल्लिनाथ, सं० र०, अ० सं०, वाद्या०, पृ० २८३

एवं अवाञ्छनीय है।[५१] पवित्रता-प्रिय हिन्दू जाति ने इसी लिए जातियों के रूप को अक्षुण्ण रखा है।

पहले कहा जा चुका है कि मतङ्ग ने जातियो की सीमा में सकोच करके बारह स्वरों को जातिरूप की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त मान लिया था, पर जातियो के अन्य लक्षणो मे कोई परिवर्तन न तो उनके काल में हुआ था न शार्ङ्गदेव के काल में।

भरत की जाति-परम्परा अक्षुण्ण रही, केवल मन्द्रसीमा और तारसीमा मे सकोच हुआ। उसका कारण ऐसे वाद्यो का निर्माण था, जिनमे चौदह सारे होने के कारण एक तार पर तीन सप्तको का वजना सम्भव नही था। कुछ लोगो का विचार है कि मतङ्ग किन्नरी वीणा के आविष्कारक हैं,[५२] यदि यह सत्य है, तो उन्हे वार-वार तारों को सरकाने के झंझट से वचने के लिए जातियो की मन्द्रावधि एवं तारावधि मे संकोच करना पडा होगा। कहा जाता है कि तन्त्रीवाद्यो पर 'सारे' भी पहले पहल मतङ्ग ने ही रखी।

अस्तु, हम विभिन्न आचार्यों के द्वारा किये हुए जातिलक्षण देगे, जिनसे यह सिद्ध हो जायगा कि उनमे भरत-परम्परा अक्षुण्ण है।

(१) षाड्जी

महर्षि भरत का कथन है—

"षाड्जी' के अंशस्वर निषाद और ऋषभ के अतिरिक्त पाँच स्वर (स, ग, म, प, ध) होते हैं। वहाँ गान्धार और पञ्चम अपन्यास होते है। इसमे न्यासस्वर षड्ज होता

५१—अपि ब्रह्महण पापाज्जातयः प्रपुनन्त्यमू।
ऋचो यजूंषि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा।
तथा सामसमुद्भूता जातयो वेदसमिता.॥
—आचार्य शार्ङ्ग०, स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० २७३

५२—मतङ्गप्रभृतिभि किन्नरीनामवीणावादनमेव सम्प्रदाये प्रावर्तत (वर्त्यंत ?)।
—प्रो० रामकृष्ण कवि, भ० को०, पृ० ५१९

आचार्य शार्ङ्गदेव ने देशी किन्नरी को प्राचीन किन्नरी से भिन्न वताकर दोनों के तीन-तीन पृथक् भेद किये हैं। महाराणा कुम्भ ने 'मतङ्गकिन्नरी' के नाम से एक किन्नरी विशेष का लक्षण दिया है, जिसमे चौदह या अठारह सारे वतायी हैं। संभवतः मतङ्ग ने किन्नरी में कोई सशोधन किया, 'मतङ्गकिन्नरी' शब्द इसी का द्योतक है। वाद्य पर मतङ्ग का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ प्राप्त नही।

है और सप्तम अर्थात् निषाद लोप्य होता है। निषाद के लोप से षाड्जी का पाडव रूप वनता है एवं ऋषभ तथा निषाद का प्रयोग अल्प होता है (क्योकि ये दोनो स्वर इस जाति में अनंश हैं)। पड्ज-गान्धार तथा धैवत-षड्ज की सङ्गति होती है। प्रयोक्ताओं को इस जाति में गान्धार का वाहुल्य करना चाहिए।"[५३]

मतङ्ग का कथन है—

"षड्ज ग्राम से सम्वद्ध षाड्जी जाति के पाँच अश और ग्रह होते है। तो जैसे—षड्ज, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत ग्रह और अश हैं। गान्धार और पञ्चम अपन्यास हैं। निषादहीन होने पर यह षाडव होती है। न्यास स्वर षड्ज है। षड्ज-गान्धार और षड्ज-धैवत की सङ्गति है। तारगति पञ्चस्वरपर है, मन्द्रगति षड्ज तक है। षड्ज और धैवत के लोप से औडुवित कभी नही वनता। जव सम्पूर्ण गायी जाती है तव ऋषभ-पञ्चम और निषाद-पञ्चम का अल्पत्व करना चाहिए। अन्य स्वरो का वाहुल्य है। इसकी मूर्च्छना धैवतादि है, ताल 'पञ्चपाणि' है। चित्र मार्ग मे मागधी गीति और द्विकल '(एककल ?) पञ्चपाणि ताल, वार्तिक मार्ग मे (द्विकल पञ्चपाणि ताल) सम्भाविता गीति, दक्षिण मार्ग में चतुष्कल पञ्चपाणि ताल और पृथुला गीति है। वीर, रौद्र एवं अद्भुत रस है, (नाटक के) प्रथम प्रेक्षण के ध्रुवागान में इस जाति का विनियोग है।"[५४]

५३—अंशा. स्यु. पञ्च षाड्जाया निषादर्पभवर्जिता.।
अपन्यासो भवत्यत्र गान्धारः पञ्चमस्तथा ॥
न्यासश्चात्र भवेत् षड्जो लोप्यः सप्तम एव तु ।
पाडव सप्तमोपेतमल्पौ वै धैवतर्षभौ ॥
षड्जगान्धारसञ्चारस्तथा धैवतषड्जयोः ।
गान्धारस्य च वाहुल्यं त्वत्र कार्यं प्रयोक्तृभि ॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ४४७

५४—षड्जग्रामसंवद्धाया अंशा ग्रहाः पञ्च भवन्ति। तद्यथा—षड्जगान्धारमध्यमपञ्चमधैवता ग्रहा अशाश्च। गान्धारपञ्चमावपन्यासौ। निषादहीना षाडवी। षड्जो न्यासः। पड्जगान्धारयोः षड्जधैवतयोश्च सङ्गतिः। पञ्चस्वरपरा तारगतिः। षड्जस्वरपरा मन्द्रगतिः। पड्जधैवतयोश्चौडुवितत्व सर्वथैव नास्ति। सम्पूर्णा षाडवा। यदा सम्पूर्णा गीयते तदा ऋषभपञ्चमयो निषादपञ्चमयोश्चाल्पत्वं कार्यम्। यदा षाडवा गीयते तदा ऋषभस्याल्पत्वं कार्यम्। शेषाणा स्वराणां वहुत्वम्। अस्य धैवतादिमूर्च्छना। (ताल.)पञ्चपाणि.। चित्रे

जाति के रूप के सम्वन्ध में मतङ्ग ने जो कुछ कहा है, वह महर्षि के अनुसार अथवा उनके वचनों का पूरक मात्र है।

गीति, मार्ग और ताल इत्यादि का विनियोग भी महर्षि के अनुसार है, इन विषयों पर हम यथास्थान विचार करेंगे।

वीर, रौद्र एवं अद्भुत रसो मे इसका विनियोग बतलाता है कि मतङ्ग षाड्जी की षड्जांश अवस्था का लक्षण प्रधानतया कर रहे हैं।

महर्षि भरत के अनुसार यदि मन्द्र और तारावधि की पराकाष्ठाओं का प्रयोग करना हो, तो मतङ्ग की अठारह सारोवाली किन्नरी में मूर्च्छना का आरम्भ अभीष्ट अशस्वर से करना होगा और इस प्रकार अशस्वर के परिवर्तन के परिणामस्वरूप मूर्च्छना मे परिवर्तन करना होगा। अठारह सारोवाली किन्नरी में सातवाँ पर्दा मध्य स्थान का आरम्भक और चौदहवाँ पर्दा तार स्थान का आरम्भक है। अठारहवे पर्दे पर तारसप्तक पाँचवाँ स्वर प्राप्त होता है, तथा इसी पर्दे पर तार को मीडकर छठा एव सातवाँ स्वर भी प्राप्त किया जा सकता है।

इसी लिए मतङ्ग ने मध्यसप्तक (सातवे पर्दे) से मूर्च्छनाओ के निर्देश की बात कही है, जिसके परिणामस्वरूप किन्नरी पर तीनों सम्पूर्ण स्थान प्राप्त हो जाते है, क्योकि मुक्त तार से छठे पर्दे तक मन्द्रस्थान की प्राप्ति हो जाती है।

मतङ्ग ने 'षाड्जी' मे 'धैवतादि' मूर्च्छना का निर्देश किया है, फलत. इसी एक मूर्च्छना के स्थापित करने से षाड्जी के षड्जाश, गान्धाराश, मध्यमाश और पञ्चमाश रूप की प्राप्ति हो जायगी, क्योकि वे बारह स्वरो के अन्दर जाति के रूप की अभिव्यक्ति मान लेते है एव मन्द्र तथा तार अवधियो के नियमो का कठोर रूप से पालन आवश्यक नही समझते। यहाँ यह नही भूलना चाहिए कि मतङ्ग की 'धैवतादि' मूर्च्छना 'ध नि स रे ग म प ध नि स रे ग' है, क्योकि उनकी मूर्च्छनाएँ बारह स्वरों की है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि उनकी किन्नरी पर सातवे से अठारहवे तक पर्दो की सख्या 'बारह' ही होती है।

मार्गे मागधी गीति. पञ्चपाणिर्द्विकल. (एककलः ?)। वार्तिकमार्गे सम्भाविता गीतिः (द्विकलः पञ्चपाणिः ताल), चतुष्कल. पञ्चपाणिः दक्षिणे मार्गे पृथुला गीति.। वीररौद्राद्भुता रसा.। प्रथमप्रेक्षणिके ध्रुवागाने विनियोगः।

—मतङ्ग, भ० को०, पृ० ६९०

मतङ्ग-किन्नरी पर धैवतादि मूर्च्छना स्थापित करके उनकी मान्यताओ की परीक्षा की जा सकती है।

मतङ्ग-किन्नरी, धैवतादि मूर्च्छना

	पर्दे	स्वर
मेरु	०	ध
	१	नि
	२	स
	३	रे
	४	ग
	५	म
	६	प
	७	ध
	८	नि
	९	स
	१०	रे
	११	ग
	१२	म
	१३	प
	१४	ध
	१५	नि
	१६	स
	१७	रे
	१८	ग (मीड से म, प)

जिस स्वर को 'अंश' मानकर वादन करना हो, वही स्थायी स्वर होगा, फलत. 'चिकारी' अभीष्ट अंश मे मिलाकर वादन करना चाहिए। अंश-स्वर से ही सप्तक का आरम्भ मानना होगा, भले ही वह अंश-स्वर किसी पर्दे पर हो।

षड्जांश षाड्जी

षड्ज अंश मानकर वादन करने पर नवे पर्दे पर स्थित 'स' मध्यसप्तक का आरम्भक स्वर होगा। दूसरे पर्दे पर स्थित मन्द्रषड्ज तक मतङ्ग-निर्दिष्ट मन्द्रावधि मिल जायगी। सोलहवाँ पर्दा तारसप्तक का आरम्भक होगा, तारसप्तक के पाँच स्वर मिल जायेंगे, जिनमें मध्यम और पञ्चम की प्राप्ति अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा होगी।

गान्धारांश षाड्जी

यह षाड्जी की अंशविकृत अवस्था है, फलतः इसमे मन्द्र अंश तक जाना अनिवार्य नही।

चौथे पर्दे पर स्थित गान्धार से पन्द्रहवे पर्दे पर स्थित निषाद तक बारह पर्दे होते है। चिकारी को गान्धार मे मिला लेने पर गान्धारांश षाड्जी का रूप व्यक्त करने के लिए मतङ्ग के मत में ये बारह स्वर पर्याप्त है। जो मन्द्रावधि से तारावधि में यथेच्छ सीमा तक भ्रमण मानते है, वे मन्द्र और तार स्थान में और भी स्वर प्राप्त कर सकते है।

मध्यमांश षाड्जी

चिकारियाँ मध्यम मे मिलायी जानी चाहिए। पाँचवे से सोलहवे पर्दे तक बारह स्वरो में जाति का स्वरूप व्यक्त होगा। अन्य मन्द्र एवं तार स्वरो का प्रयोग भी कामचारवादी कर सकते है।

पञ्चमांश षाड्जी

चिकारियाँ पञ्चम मे मिलाने पर छठे पर्दे से सत्रहवें पर्दे तक बारह स्वर मिलेंगे। कामचारवादियो को अन्य मन्द्र-तार स्वर मिल जायँगे। जाति का रूप मतग के अनुसार पूर्वोक्त बारह पर्दो पर अभिव्यक्त हो जायगा।

धैवतांश षाड्जी

धैवत मे चिकारियाँ मिलाने पर मेरु से छठे पर्दे तक मन्द्र स्थान, सातवें से तेरहवें तक मध्य स्थान और चौदहवे से अठारहवे तक (मीड द्वारा प्राप्त मध्यम, पञ्चम को मिलाकर) सम्पूर्ण तारसप्तक की प्राप्ति हो जायगी।

सितारवादक भी सितार पर अभीष्ट स्वरो मे चिकारियाँ मिलाकर जातिवादन कर सकते है, मूर्च्छनाओ की स्थापना भी की जा सकती है। तरबहीन सितार मे यह प्रक्रिया सुविधाजनक रहेगी।

एक जाति के लिए तन्त्रीवाद्यो पर ऐसी मूर्च्छना की स्थापना करने की पद्धति मतङ्ग से पूर्वकालीन है, जिसकी स्थापना के परिणामस्वरूप उस जाति के अंश-विकृत रूपो के वादन के लिए मूर्च्छना न बदलनी पड़े। कश्यप का कथन है कि जाति मे अशों की बहुलता को देख कर बुध व्यक्तियो को मूर्च्छना का निर्देश करना चाहिए।[55] मतङ्ग ने प्रत्येक जाति की मूर्च्छना निर्दिष्ट करके काश्यप के विधान को स्पष्ट कर दिया है।

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है —

"षाड्जी मे निषाद और ऋषभ के अतिरिक्त पाँच स्वर अश होते है, निषाद के लोप से षाडव रूप बनता है। पूर्णावस्था मे कही-कही काकली का प्रयोग होता है। इस जाति मे षड्जगान्धार एव षड्ज-धैवत की सङ्गति है और गान्धार स्वर बहुल है। गान्धार के अश स्वर होने पर निषाद का लोप नही होता। इसकी मूर्च्छना 'धैवतादि' है। इस जाति मे तीन प्रकार का एककल, द्विकल और चतुष्कल ताल (पञ्चपाणि) है, क्रमश. चित्र, वृत्ति (वार्तिक) एवं दक्षिण मार्ग हैं, क्रमशः मागधी, सम्भाविता

५५—ज्ञात्वा जात्यंशबाहुल्यं निर्देश्या मूर्च्छना बुधैः।

—कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत—सं० र०, रागा०, अ० सं०, पृ० ३२

और पृथुला गीतियाँ हैं। प्रथम अंक की नैष्क्रामिकी ध्रुवा में इसका विनियोग है।[५६] इस षाड्जी मे षड्ज न्यास है, गान्धार और पञ्चम अपन्यास है।"[५७]

नाटक के अतिरिक्त शंकरस्तुति मे भी इसका विनियोग है।[५८] षड्ज के अंश होने पर इसमे कभी-कभी काकली का प्रयोग भरत के प्रतिकूल नहीं, आरोह में अन्तर स्वरो के प्रयोग की ओर नाटचशास्त्र में स्पष्ट संकेत है।[५९]

५६–षाड्ज्यामशस्वरा. पञ्च निषादर्षभवर्जिता.।
निलोपात् षाडव सोऽत्र पूर्णत्वे काकली क्वचित ॥
सगयोः सधयोश्चात्र सङ्गतिर्बहुलस्तु ग ।
गान्धारेऽशे न नेर्लोपो मूर्च्छना धैवतादिका ॥
त्रिधा ताल. पञ्चपाणिरत्र चैककलादिकः ।
क्रमान्मार्गाश्चित्रवृत्तिदक्षिणा गीतयः पुनः ॥
मागधी सम्भाविता च पृथुलेति क्रमादिमाः।
नैष्क्रामिकध्रुवायां च प्रथमे प्रेक्षणे स्मृत. ॥
विनियोगो.....

—सं० र०, स्वरा०, अ० सं०, पृ० १९६-१९७

५७–अस्यां षाड्ज्यां षड्जो न्यासः। गान्धारपञ्चमावपन्यासौ।

—स० र०, स्वरा०, अ० स०, पृ० १९७

५८–चकारात्स्वातन्त्र्येणापि ब्रह्मप्रोक्तपदैरन्यैर्वा शकरस्तुतावेव विनियोग. समुच्चीयते।

—आचार्य कल्लिनाथ, स० र०, अं०सं०, स्वरा०, पृ०१९८

५९–अन्तरस्वरसयोगो नित्यमारोहिसंश्रय.। —भरत०, ब० स०, पृ० ४३७

षाड्जी जाति का ध्यान

जातियो या रागो के ध्यान का सम्बन्ध यथासम्भव सङ्गीत की आगम-पुराण-परम्परा से है। जगदेकमल्ल ने जातियों के ध्यान भी दिये है। षाड्जी का ध्यान निम्नलिखित है—

वीणाक्वणश्रवणजातकुतूहलेन देवेन कामरिपुणा परिरम्यमाणाम् ।
पाशांकुशाकितकरामरुणावभासां षाड्जी समस्तजननीमनिशं नमामि ॥

—जगदेक, भ० को०, पृ० ६९०

अर्थात्—'मैं सबकी जननी षाड्जी को निरन्तर प्रणाम करता हूँ, वीणाध्वनि के श्रवण से सकुतूहल, कामरिपु (होने पर भी) भगवान् शकर के द्वारा जिनका आलिङ्गन किया जा रहा है, जिनका करतल पाश और अंकुश के चिह्नो से युक्त है और जिनकी कान्ति अरुण है।

(२) आर्षभी

महर्षि भरत का कथन है —

"आर्षभी में धैवत, ऋषभ और निषाद अश तथा अपन्यास स्वर हैं। न्यासस्वर ऋषभ है। षाडवकारी (षड्ज) का अल्पत्व है, आरोह में पञ्चम का लघन है। षड्ज के लोप से षाडव और पञ्चम के लोप से औडुव प्रकार बनता है, (अन्य अवशिष्ट स्वरो के साथ) निषाद और गान्धार की सङ्गति होती है।"[६०]

मतङ्ग का कथन है —

"शुद्ध आर्षभी का गान होता है, (नियम इस प्रकार है—) षड्ज-पञ्चम का अल्पत्व है। ऋषभ, धैवत एवं निषाद ग्रह हैं, यही स्वर अंश हैं, यही अपन्यास हैं। तार निषाद (अंश स्वर से पाँच स्वर पश्चात् विद्यमान) प्रयुक्त होता है। ऋषभ न्यासस्वर है, मन्द्रावस्था न्यासस्वर पर्यन्त अथवा (अवरोहस्थिति मे) उससे पश्चाद्वर्ती स्वर तक मन्द्रावधि है। (ऋषभांश, निषादांश एव धैवतांश अवस्थाओं में क्रमश' अशस्वरो से पूर्ववर्ती षड्ज, धैवत और पञ्चम तक मन्द्रावधि है।) निषाद-गान्धार की सङ्गति है। षड्जहीन रूप षाडव एव षड्ज-पञ्चमहीन रूप औडुव होता है। पूर्णावस्था में षड्ज, गान्धार, पञ्चम का अल्पत्व है और औडुवित अवस्था मे गान्धार और मध्यम का। अवशिष्ट स्वर बहुल है। तीन सम्पूर्ण, तीन षाडव और तीन औडुव रूप होने के कारण इसके कुल अशस्वर नौ (तीन ऋषभ+तीन निषाद+तीन धैवत=नौ) शुद्ध एव अंश विकृत अवस्थाओ मे हो जाते है। मूर्च्छना पञ्चमादि है। ताल चञ्चत्पुट हैं।

६०—आर्षभ्या तु भवन्त्यशा धैवतर्षभसप्तमा.।
एत एवं अपन्यासा न्यासश्च ऋषभ स्मृत.॥
अल्पत्वञ्च विशेषेण भवेत्षाडवकारिण.।
लंघनं पञ्चमस्यैव स्यादारोहणसंश्रयात्॥
षट्स्वर सप्तमहीन*(षड्जहीनत्वे) पञ्चस्वर्यं च पञ्चम।
विवादिनां स्वराणां च सञ्चारोऽत्र विधीयते॥

—भरत, व० सं०, पृ० ४४८

*नाटचशास्त्र के मुद्रित संस्करणों का यह पाठ लिपिको के प्रमाद का परिणाम है। परस्पर संवादी स्वर औडुवावस्था के निर्माता होते है। इस पाठ में औडुव-कारी स्वर पञ्चम कहा गया है और आरोह में उसका लंघन बताया है, फलतः षाडवावस्था के जनक षड्ज का लोप ही सम्भव है। मतङ्ग एवं शार्ङ्गदेव ने भी षड्ज का लोप आर्षभी मे षाडवकारी माना है।

एककल ताल चित्रमार्ग से मागधी, द्विकलताल वार्तिक मार्ग से सभाविता और चतुष्कल ताल, दक्षिण मार्ग से पृथुला गीति होती है। वीर, रौद्र एवं अद्भुत रस हैं। प्रथम अङ्क मे नैष्क्रामिकी ध्रुवा का गान इसमें होता है।"[६१]

मतङ्ग-लक्षण मे गान्धार का अल्पत्व भरत-विधान के अनुकूल नही, इसी लिए सम्भवत. शार्ङ्गदेव को यह मान्य नही हुआ।

मतङ्ग-किन्नरी पर पञ्चमादि मूर्च्छना मे आर्षभी की विभिन्न अवस्थाएँ देखें—

पर्दे	स्वर
०मेरु	प
१—	ध
२—	नि
३—	स
४—	रे
५—	ग
६—	म
७—	प
८—	ध
९—	नि
१०—	स
११—	रे
१२—	ग
१३—	म
१४—	प
१५—	ध
१६—	नि
१७—	स
१८—	रे

ऋषभांश शुद्ध आर्षभी—चिकारियाँ ऋषभ मे मिलाने के पश्चात् चौथे पर्दे से मन्द्र, ग्यारहवे से मध्य एव अठारहवे से तार स्थान का आरम्भ मानिए।

मन्द्र न्यासस्वर ऋषभ की प्राप्ति मन्द्रावस्था में चौथे पर्दे मे होगी, अवरोहगति मे इससे पर अर्थात् तीसरे पर्दे पर स्थित षड्ज भी मिल जायगा।

अठारहवें पर्दे पर तार को पाँच स्वर तक मींड़ द्वारा निषाद की प्राप्ति कुशल वैणिकों के लिए असम्भव नहीं। पर्दे में गुंजाइश होने पर वैणिक सात-सात स्वर तक खीचते है।

धैवतांश विकृत आर्षभी—चिकारियाँ धैवत में मिलाने के पश्चात् मन्द्रस्थान का आरम्भ पहले, मध्यस्थान का आठवे तथा तारस्थान का पन्द्रहवे से मानिए।

सम्पूर्ण मन्द्रस्थान, सम्पूर्ण मध्यस्थान और अठारहवें पर्दे पर मीड द्वारा ग म, प की सिद्धि करने पर सम्पूर्ण तारस्थान भी प्राप्त हो जायगा।

मतङ्ग के विधान के अनुसार पहले पर्दे से बारहवें तक भी बारह स्वर मिलते है और आठवे पर्दे से, अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा प्राप्त गान्धार तक भी, जो धैवतांश षाड्जी के रूप को अभिव्यक्त करने मे समर्थ हैं। धैवत अश से, (अवरोहगति में) परवर्ती पञ्चम दोनों स्थितियों मे सुलभ है।

६१—आर्षभी शुद्धा गीयते। निषाद (षड्ज ?) पञ्चमाल्पत्वम्। ऋषभधैवतनिषादा ग्रहाः। स्वयमेवांशाः। त एवापन्यासा.। पञ्चस्वरपरस्तारो निषाद.। ऋषभो न्यास.। न्यासपरस्तत्परो वा मन्द्र.। (मन्द्रा. ?) षड्जधैवतपञ्चमाः। ऋषभ-

निषादांश विकृत आर्षभी—चिकारियाँ ऋषभ मे मिलाने के पश्चात् दूसरे पर्दे से मन्द्र, नवे से मध्य और सोलहवे से तार-स्थान की प्राप्ति हो जायगी। अठारहवें पर्दे पर मीड द्वारा धैवत प्राप्त करने पर तीनो सम्पूर्ण स्थान प्राप्त होगे।

बारह स्वरो मे जाति के रूप की अभिव्यवित माननेवालो को यथेच्छ बारह स्वर मिलेंगे।

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है—

"आर्षभी मे तीन स्वर अश होते है; निषाद, ऋषभ और धैवत। द्विश्रुति स्वरों की सङ्गति अन्य स्वरो के साथ होती है। पञ्चम का लघन है। षड्ज के लोप से षाडव और षड्ज-पञ्चम के लोप से इस जाति में औडुव रूप होता है। मूर्च्छना पञ्चमादि है, और ताल चञ्चत्पुट।.. विनियोग षाड्जी जाति के समान है।[६२] इस आर्षभी में ऋषभ न्यास है और अश स्वर ही अपन्यास स्वर है।"[६३]

(निषाद?) गान्धारयोस्तु सगति.। षड्जहीने (न?) षाडव (म्) षड्जपञ्चम-हीनमौडुवितम्। पूर्णावस्थायां षड्जगान्धारपञ्चमानामल्पत्वम्। औडुविते गान्धारमध्यमयोरल्पत्वम्। शेषाणा बहुत्वम्। दश (नव?) विधत्व चास्या दशां (नवां) शा. शुद्धविकृताः पूर्णास्त्रयः। पञ्चम्या (मा?) दि-मूर्च्छना। चञ्चत्पुटस्ताल।एककलेन चित्रेण मागधी। द्विकलेन वार्तिकेन सम्भाविता। चतुष्कलेन दक्षिणेन पृथुला। वीररौद्राद्भुता रसा.। प्रथमप्रेक्षणके नैष्क्रामिकी-ध्रुवागाने विनियोग.।

—मतङ्ग, भ० को०, पृ० ५७

६२—आर्षभ्या तु त्रयोऽशा. स्युर्निषादर्षभधैवता.।
द्विश्रुत्यो सङ्गति शेषैर्लङ्घन पञ्चमस्य च॥
षाडव षड्जलोपेन सपलोपादिहौडुवम्।
मूर्च्छना पञ्चमादिश्च तालश्चञ्चत्पुटो मतः।
अष्टौ कला भवन्तीह विनियोगश्च पूर्ववत्॥

—स० र०, स्वरा०, अ० सं०, पृ० २०३

६३—अस्यामार्षभ्यामृषभो न्यास। अंशा एवापन्यासाः।

—सं० र०, स्वरा०, अ० सं०, पृ० २०४

आर्षभी का ध्यान

निस्सीमवाङमनसयो (?) रतिदूरवर्ति यस्या महत्त्वमवधीरयितुं प्रवृत्तः।
पद्मासनोऽपि परिहास्यदशां प्रयाति तामार्षभी शुकनिभामनिश नमामि॥

—जगदेक, भ० को०, पृ० ५७

ध्यान देने की बात यह है कि जातियो की मूर्च्छनाएँ आचार्य शार्ङ्गदेव ने मतङ्गोक्त ली है, परन्तु इस जाति में मतंगविहित गान्धार के अल्पत्व को भरतविरोधी होने के कारण अमान्य कर दिया है।

(३) गान्धारी

महर्षि भरत का कथन है—

"गान्धारी मे धैवत और ऋषभ के अतिरिक्त पाँच स्वर अश होते है। षड्ज एवं पञ्चम अपन्यास होते है। गान्धार न्यासस्वर है। ऋषभ के लोप से षाडव और ऋषभ-धैवत के लोप से औडुवित रूप होता है। ऋषभ और धैवत का लङ्घन है, अर्थात् पूर्णावस्था मे इनका प्रयोग अत्यल्प है। ऋषभ से धैवत पर जाना चाहिए।"[६४]

मतङ्ग मुनि का कथन है—

"गान्धारी जाति में गान्धार, षड्ज, मध्यम, पञ्चम, निषाद ग्रह और अश है। तारस्थान मे पाँच स्वरो तक गति है। न्यास तक अथवा अवरोहगति मे उससे पर (ऋषभ) तक मन्द्रगति है। ऋषभ के लोप से षाडव और ऋषभ-धैवत के लोप से औडुव रूप बनता है। पूर्णावस्था मे ऋषभ-धैवत का अल्पत्व होता है, अवशिष्ट स्वरो का बाहुल्य होता है। स्वरनामयुक्त जाति होने के कारण गान्धार न्यास है। षड्ज-मध्यम (पञ्चम) अपन्यास है। धैवत-ऋषभ की संगति है। यह दस प्रकार की होती है (पञ्चम अंश होने पर केवल सम्पूर्ण अवस्था, निषाद, षड्ज और मध्यम के अश होने पर सम्पूर्ण और षाडव अवस्थाएँ तथा गान्धार के अश होने पर पूर्ण, षाडव और औडुव अवस्थाएँ होती है)। मूर्च्छना धैवतादि है। ताल चञ्चत्पुट है। एककल, द्विकल, चतुष्कल ताल से चित्र, वार्तिक, दक्षिण मार्ग मे मागधी,

---

अर्थात्—जिसके निस्सीम, वाणी और मन के अत्यन्त दूरवर्ती महत्त्व का तिरस्कार करने मे प्रवृत्त पद्मासन ब्रह्मा भी उपहास के पात्र बनते है, मैं उस शुककान्ति आर्षभी को प्रणाम करता हूँ।

६४—गान्धार्याः पञ्च स्युरंशा धैवतर्षभवर्जिता ।
अपन्यासो भवेच्चात्र षड्ज पञ्चम एव च ॥
गान्धारोऽत्र भवेन्न्यास. षाडवं चर्षभं विना।
ऋषभधैवतोपेतं तथा चौडुवितं भवेत्।
लंघनीयौ च तौ नित्यमृषभो धैवतं व्रजेत् ॥ —भरत०, ब० स०, पृ० ४४९

संभाविता और पृथुला गीतियाँ होती है। करुण रस है। तृतीय अंक के ध्रुवा-गान मे इस जाति का प्रयोग करना चाहिए।"[६५]

मतङ्ग के वर्तमान लक्षण मे पड्ज-मध्यम का अपन्यास लिपिक के प्रमाद का परिणाम है। भरत, दत्तिल[६६], नान्यदेव[६७] इत्यादि सभी ने इस जाति के अपन्यास स्वर पड्ज-पञ्चम बताये है।

मतङ्ग-किन्नरी पर धैवतादि (मध्यमग्राम की) मूर्च्छना स्थापित करके गान्धारी के विभिन्न रूपो को देखना चाहिए—

पर्दे स्वर
मेरु ०—ध
१—नि
२—स
३—रे
४—ग
५—म
६—प
७—ध
८—नि
९—स
१०—रे

गान्धारांश शुद्ध गान्धारी—चिकारियॉ गान्धार में मिलाने पर मन्द्रस्थान चौथे पर्दे, मध्यस्थान ग्यारहवे पर्दे और तारस्थान अठारहवे पर्दे से आरम्भ होगा। अठारहवे पर्दे पर मीड के द्वारा तार मध्यम, पञ्चम, धैवत निषाद भी प्राप्त किये जा सकते है। मन्द्रस्थान मे न्यासस्वर गान्धार और अवरोह गति मे उस पर अर्थात् तीसरे पर्दे पर ऋषभ की प्राप्ति भी हो जायगी।

मध्यमांश विकृत गान्धारी—चिकारियॉ मध्यम मे मिलाने पर मन्द्रस्थान पॉचवे पर्दे और मध्यस्थान बारहवे पर्दे से मिलेगा। तारस्थानीय म, प, ध, नि अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा प्राप्त किये जा सकते है। बारह स्वरो मे जाति के रूप को देखनेवाले बारह स्वर प्राप्त कर सकते है। मन्द्रस्थान मे न्यासस्वर भी उन्हे मिल सकता है।

६५—गान्धारपड्जमध्यमपञ्चमनिषादा ग्रहा अंशाश्च। पञ्चस्वरपरस्तार·। न्यासपरस्तत्परो वा मन्द्र.। ऋषभहीनं षाडवम्। रिधहीनमौडुवितम्। पूर्णावस्थायाम् ऋषभधैवतयोरल्पत्वम्। शेषाणा बहुत्वम्। स्वरजातित्वाद् गान्धारो न्यास.। पड्जमध्यमावपन्यासौ। धैवतर्षभयोः सङ्गतिः। अस्या दशविधलक्षणम्। मूर्च्छना धैवतादिः। चञ्चत्पुटस्ताल.। एकद्वित्रिचतुष्कलै.। चित्रवार्तिकदक्षिणेषु मागधीसम्भाविता पृथुला गीतयः। करुणो रस.। तृतीयप्रेक्षणि (ण?) के ध्रुवागाने विनियोग.। —मतङ्ग, भ० को०, पृ० १७३

६६—गान्धार्यां द्वावनशौ तु ज्ञेयावृषभधैवतौ।
क्रमान्वि(न्नि?)त्यमपन्यासौ विज्ञेयौ पड्जपञ्चमौ॥ —दत्तिल, भ० को०, पृ० १७४

६७—सगमपनि स्वरा अंशाश्च। सपावपन्यासौ। गान्धारो न्यास। रिलोपे षाडवम्। रिधलोपे औडुवितम्। रिधौ लंघनीयौ। —नान्य०, भ० को०, पृ० १७३

पर्दे	स्वर
११	ग
१२	म
१३	प
१४	ध
१५	नि
१६	स
१७	रे
१८	ग

पञ्चमांश विकृत गान्धारी—द्वादशस्वरवादियो को यथेच्छ बारह स्वर मिलेंगे। चिकारियाँ पञ्चम मे मिलाने पर छठे पर्दे से मध्यस्थान और तेरहवे से तारस्थान मिलेगा। मन्द्र मे न्यासस्वर गान्धार और अपन्यास स्वर षड्ज की प्राप्ति भी हो जायगी।

निषादांश विकृत गान्धारी—चिकारियाँ निषाद मे मिलाने पर पहले पर्दे से मन्द्रस्थान, आठवे से मध्यस्थान और पन्द्रहवें से तारस्थान मिलेगा। तारस्थानीय म, प, ध अठारहवे पर्दे पर मीड के द्वारा मिल जायँगे। द्वादशस्वरवादियो को भी यथेष्ट मन्द्र-तार सीमाएँ मिल जायँगी।

षड्जांश विकृत गान्धारी—चिकारियाँ षड्ज मे मिलाने पर मन्द्रस्थान दूसरे पर्दे, मध्यस्थान नवे पर्दे तथा तारस्थान पन्द्रहवे पर्दे से मिलेगा। कुशल वैणिक अठारहवें पर्दे पर मीड के द्वारा तारस्थानीय म, प, ध, नि भी प्राप्त कर सकते है। द्वादशस्वरवादी भी अपनी अभीष्ट सीमाएँ प्राप्त कर सकते है।

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है—

"गान्धारी मे ऋषभ-धैवत के अतिरिक्त पाँच स्वर अंश होते है, न्यास और अंश-स्वरो की परस्पर एवं अन्य स्वरो के साथ संगति होती है। क्रमश. ऋषभ के लोप से षाडव और ऋषभ-धैवत के लोप से औडुव रूप बनता है। धैवत से ऋषभ पर जाना चाहिए। पञ्चम (अंश होने पर) षाडव अवस्था का द्वेषी (बाधक) होता है। निषाद, षड्ज, मध्यम एव पञ्चम के अंश होने पर औडुवित रूप नही होता। मूर्च्छना धैवतादि है, ताल चञ्चत्पुट है। तृतीय अक के ध्रुवागान में प्रयोज्य है।[६८] इस गान्धारी मे गान्धार स्वर न्यास है और षड्ज-पञ्चम अपन्यास है।"[६९]

६८—पञ्चाशा रिधवर्ज्या. स्युर्गान्धार्या. सङ्गति. पुन. ।
न्यासांशाभ्यां तदन्येषां धैवताद् ऋषभं व्रजेत् ॥
रिलोपरिधलोपाभ्यां षाडवौडुविते क्रमात् ।
पञ्चम. षाडवद्वेषी निसमध्यमपञ्चमा. ॥
अंशा द्विषन्त्यौडुवित कला. षोडश कीर्तिता. ।
मूर्च्छना धैवतादि. स्यात्तालश्चञ्चत्पुटो मत. ।
विनियोगो ध्रुवागाने तृतीये प्रेक्षणे भवेत् ॥
—सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० २०६

६९—अस्यां गान्धार्यां गान्धारो न्यासः। षड्जपञ्चमावपन्यासौ।
—सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० २०७

(४) मध्यमा

महर्षि भरत का कथन है—

"मध्यमा जाति मे गान्धार और निषाद के अतिरिक्त अन्य स्वर अश होते है, वही स्वर अपन्यास भी होते है। मध्यम न्यास होता है। गान्धार और निषाद के लुप्त होने पर औडुव एव गान्धार का लोप होने पर षाडव रूप होता है। इस जाति के प्रयोग मे षड्ज-मध्यम का बाहुल्य तथा गान्धार का लंघन प्रयोक्ताओ के द्वारा किया जाना चाहिए।"[७०]

आचार्य शार्ङ्गदेव कहते है—

"मध्यमा मे गान्धार और निषाद के अतिरिक्त पॉच स्वर अश होते है। षड्ज-मध्यम का बाहुल्य और गान्धार का अल्पत्व होता है। गान्धार के लोप से षाडव और गान्धार-निषाद के लोप से औडुव रूप होता है। मूर्च्छना ऋषभादि है, ताल चञ्चत्पुट माना गया है। द्वितीय अङ्क के ध्रुवागान मे विनियोग है।[७१] इस जाति मे मध्यम न्यास है तथा अशस्वर अपन्यास है।"[७२]

गान्धारी का ध्यान

स्वर्णाभिरामरुचिमुज्ज्वलरूपवेषा वीणाविनोदकुतुकां मृदुमीलिताक्षीम्।
देवी दयार्द्रहृदया प्रणतिगतेषु गान्धारमाश्रितवतीमनिशं नमामि॥

—जगदेक, भ० को०, पृ० १७४

अर्थात्—मै निरन्तर उन गान्धारी देवी को प्रणाम करता हूँ, जिनकी कान्ति स्वर्णाभिराम है, जिनका रूप और वेष उज्ज्वल है, वीणा-विनोद जिनका कौतुक है, जिन्होने (वीणाविनोद के परिणामस्वरूप) मृदुतापूर्वक नेत्र निमीलित कर लिये है और जो प्रणाम करनेवालो के प्रति दयार्द्रहृदया है।

७०—मध्यमाया भवन्त्यशा विना गान्धारसप्तमौ।
एत एव ह्यपन्यासा न्यास एव हि मध्यम॥
गान्धारसप्तमोपेत पञ्चस्वर्यं विधीयते।
षाट्स्वर्य्यं चाप्यगान्धार कर्तव्यं तु प्रयोगत.॥
षड्जमध्यमयोश्चात्र कार्यं बाहुल्यमेव च।
गान्धारलङ्घनं चात्र नित्य कार्यं प्रयोक्तृभि.॥—भरत०, व० स०, पृ० ४५०

७१—पञ्चाशा मध्यमायां स्युरगान्धारनिषादका।
षड्जमध्यमबाहुल्य गान्धारोऽल्पोऽत्र षाडवम्॥
गलोपान्निगलोपेन त्वौडुवं स्यात्कलाष्टकम्।

मतङ्ग-किन्नरी पर ऋपभादि मूर्च्छना की स्थापना करके मध्यमा के शुद्ध एवं विकृत रूपो की स्थिति देखे—

पर्दे	स्वर
०	रे
१	ग
२	म
३	प
४	ध
५	नि
६	स
७	रे
८	ग
९	म
१०	प
११	ध
१२	नि
१३	स
१४	रे
१५	ग
१६	म
१७	प
१८	ध

मध्यमांश शुद्ध मध्यमा—चिकारियाँ मध्यम मे मिलाने पर दूसरें पर्दे से मन्द्र, नवे से मध्य एव सोलहवे से तार स्थान का आरम्भ होगा । अठारहवें पर्दे पर मीड के द्वारा निपाद, पड्ज, ऋपभ, गान्धार की प्राप्ति करने पर तारस्थानीय समस्त स्वर मिल जायँगे ।

पञ्चमांश विकृत मध्यमा—चिकारियाँ पञ्चम मे मिलाने पर तीसरे पर्दे से मन्द्र, दसवें से मध्य एवं सत्रहवे से तारस्थान का आरम्भ मिलेगा । अठारहवे पर्दे पर मींड के द्वारा नि, स, ग, म प तक तारस्थानीय स्वर प्राप्त किये जा सकते है ।

धैवतांश विकृत मध्यमा—चिकारियाँ धैवत मे मिलाने पर मन्द्रस्थान चौथे पर्दे से, मध्यस्थान ग्यारहवे से और तारस्थान अठारहवे से प्रारम्भ होगा। अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा नि, स, रे, ग, म तक तारस्थानीय स्वर मिल जायँगे।

षड्जांश विकृत मध्यमा—चिकारियाँ पड्ज मे मिलाने पर मध्यसप्तक का आरम्भ छठे और तारसप्तक का तेरहवे से होगा, तारस्थानीय निपाद अठारहवें पर्दे पर मींड द्वारा प्राप्त हो जायगा। मन्द्र स्थान मे पड्ज के अतिरिक्त अन्य छहों स्वरो की प्राप्ति हो जायगी। मन्द्रावधि मे न्यासस्वर मध्यम दूसरे पर्दे पर मिलेगा।

ऋषभांश विकृत मध्यमा—चिकारियाँ ऋषभ मे मिलाने पर मेरु से मन्द्र, सातवें पर्दे से मध्य एव चौदहवे पर्दे से तार-स्थान का आरम्भ होगा, तारस्थानीय निपाद और पड्ज अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा प्राप्त होगे।

ऋपभादिर्मूर्च्छना स्यात्तालश्चञ्चत्पुटो मतः।
विनियोगो ध्रुवागाने द्वितीयप्रेक्षणे भवेत् ॥

—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० २११

७२—अस्या मध्यमाया मध्यमो न्यासः। अंशा एवापन्यासा.।

(५) पञ्चमी

महर्षि भरत का कथन है —

"पञ्चमी जाति मे दो स्वर, पञ्चम और ऋषभ, अश होते है। निपाद, पञ्चम और ऋषभ अपन्यास है। मध्यमा के समान पाडव-औडुव (अर्थात् गान्धार लोप से षाडव और गान्धार-निपाद के लोप से औडुव) करना चाहिए। इस जाति मे पड्ज-गान्धार-पञ्चम दुर्बल है। इस जाति मे मध्यम-ऋषभ की सङ्गति है। गान्धार से निपाद पर जाना चाहिए।"[73]

आचार्य शार्ङ्गदेव कहते है —

"पञ्चमी मे ऋपभ-पञ्चम अश है, स-ग-म स्वल्प है। ऋपभ-मध्यम की सगति है। पूर्णावस्था मे गान्धार से निपाद पर जाना चाहिए। गान्धार एव गान्धार-निपाद के

टिप्पणी—मतङ्गकृत जाति-लक्षण हम भरत-कोप के आधार पर दे रहे है, जिन जातियो के मतङ्गकृत लक्षण उसमे नही, वे नही दिये जा रहे है।

मध्यमा का ध्यान

मन्दारकुन्दकुमुदप्रतिरूपरूपाम् इन्दीवरायतविशालविलोलनेत्राम् ।
चन्द्रावतंसपरिचुम्बितपादपद्मां तां मध्यमस्वरमयीमनिशं नमामि ॥

—जगदेक, भ० को०, पृ० ४६७

अर्थात्—मै उस मध्यमा जाति को निरन्तर प्रणाम करता हूँ, जिसका रूप मन्दार, कुन्द एव कुमुद का प्रतिरूप है, जिसके नेत्र इन्दीवर के समान विस्तृत, विशाल एवं चञ्चल है और चन्द्रावतस (भगवान् शकर ?) ने जिसके चरणकमलो का चुम्बन किया है।

७३—द्वावशावपि पञ्चम्या भवत. पञ्चमर्पभौ।
अपन्यासो निपादश्च पञ्चमर्षभसयुत ॥
न्यास पञ्चम एव स्यात् मध्यमर्पभहीनता।
दुर्बलाश्चात्र कर्तव्या पड्जगान्धारमध्यमा. ॥
कुर्य्याच्चाप्यत्र सञ्चार मध्यमस्यर्पभस्य च।
गान्धारगमन चाल्प सप्तमात् सम्प्रयोजयेत् ॥

—भरत०, का० स०, पृ० ३२९

टिप्पणी—नाट्यशास्त्र के वम्बई-सस्करण मे 'कुर्यादस्याञ्च सचार पञ्चमस्यर्पभस्य च' पाठ है, जो लिपिकर्ता के प्रमाद का परिणाम है। माध्यमग्रामिक होने के कारण यह जाति ऋपभ-पञ्चम-परस्परसवादी है, परस्पर सवादी स्वरो की सङ्गति स्वत. सिद्ध होती है, उसके लिए विशिष्ट विधान की आवश्यकता नही होती।

लोप से क्रमशः पाडव एवं औडुव अवस्था जानना चाहिए। ऋषभ अंश होने पर औडुवावस्था का विरोधी है। कलाएँ आठ हैं। मूर्च्छना ताल इत्यादि मध्यमा के समान हैं। तृतीय अक मे विनियोग है। पञ्चम न्यास है, ऋषभ-पञ्चम-निपाद अपन्यास है।"[७४]

अब मतङ्ग-किन्नरी पर 'ऋषभादि' मूर्च्छना स्थापित करने से पञ्चमी की शुद्ध एवं विकृत अवस्थाओ की यह स्थिति होगी—

पर्दे	स्वर
मेरु ०	रे
१	ग
२	म
३	प
४	ध
५	नि
६	स
७	रे
८	ग
९	म
१०	प

पञ्चमांश शुद्ध पञ्चमी—चिकारियाँ पञ्चम मे मिलाने पर मन्द्रसप्तक का आरम्भ तीसरे, मध्यसप्तक का दसवे और तारसप्तक का आरम्भ सत्रहवे पर्दे से होगा। अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा तारसप्तक के निपाद, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम की प्राप्ति हो जायगी।

ऋषभांश विकृत पञ्चमी—चिकारियाँ ऋषभ मे मिलाने पर मेरु से मन्द्र, सातवे पर्दे से मध्य एवं चौदहवें पद से तारस्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवे पर्दे पर तारस्थानीय निपाद और षड्ज की प्राप्ति भी मीड से हो जायगी।

साधारणतया षाडवकारी स्वर जातियो मे अल्प (अनभ्यासयुक्त)और उसका संवादी औडुवकारी स्वर अल्पतर (लघनयुक्त) होता है। परन्तु इस जाति मे औडुवकारी निपाद 'अपन्यास'

७४–रिपावंशौ तु पञ्चम्या सगमाः स्वल्पका मताः।
रिमयो. संगतिर्गच्छेत्पूर्णत्वे गान्निषादकम्॥
क्रमाद् गेन निगाभ्यां च षाडवौडुवता मता।
ऋषभोऽशस्त्वौडुवितं द्वेष्टयष्टौ च कला मताः।
मूर्च्छनादि तु पूर्ववित्प्रेक्षणं तु तृतीयकम्॥
अस्या पञ्चम्यां पञ्चमोन्यासः? ऋषभपञ्चमनिपादा अपन्यासाः।

—स० र०, स्वरा०, अ०सं०, पृ० २१४

टिप्पणी—यद्यपि षाडवौडुवकारी स्वरो से ऋषभ का संवादित्व नही, तथापि ऋषभ को अंशावस्था मे औडुवद्वेषी कहना भरत के विधान—
'ऋषभश्चैव पञ्चम्यां कैशिक्याञ्चैव धैवत.।
एव हि द्वादशैते स्यु. वर्ज्या. पञ्च स्वरे सदा॥'
के अनुसार है।

—ना० शा०, ब० स०, पृ० ४४२

पर्दे	स्वर
११	ध
१२	नि
१३	स
१४	रे
१५	ग
१६	म
१७	प
१८	ध

स्वर भी है, फलतः उसका प्रयोग अल्पतर नही। इसी लिए भरत और उनके अनुयायी आचार्य शार्ङ्गदेव ने इस जाति में अल्प स्वरो का विधान करते समय उनमे निषाद की गणना नही की।

गान्धार षाडवकारी होने के कारण अल्प है। षड्ज और मध्यम इस जाति मे लोप्य स्वर नही, तथापि इस जाति मे उनका अल्प प्रयोग अल्पत्व-सम्बन्धी सामान्य नियम का अपवाद है।

(६) धैवती

महर्षि भरत का कथन है—

"धैवती जाति मे धैवत न्यास तथा ऋषभ-धैवत अशस्वर है। इस जाति मे धैवत-ऋषभ-मध्यम अपन्यास होते है। षड्ज-पञ्चमहीन अवस्था औडुव होती है, षाडव अवस्था पञ्चमहीन होती है। आरोह में षड्ज-पञ्चम का लघन करना चाहिए। निषाद, ऋषभ एवं गान्धार इस जाति मे बलवान् होते है।"[७५]

पञ्चमी का ध्यान

वाणी न केवलमहारि यथा (या ?) विजित्य प्रीतिप्रदा पिककुलात्स च वर्णभेद ।
देवेन्द्रशेखरितपादसरोजरेणु ता पञ्चमश्रुतिमयीमनिश नमामि ॥
—जगदेक, भ० को०, पृष्ठ ३४६

अर्थात्—जिसने कोकिल-समूह को जीतकर प्रीतिमयी वाणी ही नही (अपितु) विशेष वर्णभेद (असित) का भी हरण कर लिया, मै उस पञ्चमी जाति को निरन्तर प्रणाम करता हूँ, जिसके चरणकमलो का पराग देवेन्द्र ने भी सिर पर धारण किया है।

७५–धैवत्या धैवतो न्यास स्यादशौ धैवतर्षभौ ।
अपन्यासा भवन्त्यत्र धैवतर्षभमध्यमा. ॥
षड्जपञ्चमहीनं च पञ्चस्वर्य्यं विधीयते ।
पञ्चमेन विना चैव षाडवं परिकीर्तितम् ॥
आरोहिणौ च तौ कार्यौ लंघनीयौ तथैव हि ।
निषादश्चर्षभश्चैव गान्धारो बलवांस्तथा ॥ —भरत०, व० स०, पृ० ४४८

मतङ्ग का कथन है —

"धैवती के ग्रह और अंश धैवत और ऋषभ हैं। शुद्ध अवस्था में धैवत ही अपन्यास है, विकृत अवस्था मे धैवत, ऋषभ और मध्यम अपन्यास है। धैवत न्यासस्वर है। षाडव अवस्था पञ्चमहीन है। औडुवित रूप षड्ज-पञ्चम-हीन है। षड्ज-पञ्चम दुर्बल रखने चाहिए, कही लघनीय भी हैं। तार गति पाँच स्वरो की है। न्यास अथवा अवरोह गति मे उससे पर तक मन्द्रगति है। **पूर्णावस्था में गान्धार, मध्यम, पञ्चम और निषाद अल्प है, औडुवितावस्था में इनका अल्पत्व है, शेष स्वरों का बाहुल्य है।** इसकी मूर्च्छना ऋषभादि है। ताल पञ्चपाणि है। चित्र मार्ग मे एककल, ताल मागधी गीति, वार्तिक मार्ग मे द्विकल ताल, सभाविता गीति तथा दक्षिण मार्ग मे चतुष्कल ताल और पृथुला गीति है। चित्र मार्ग मे चार, दक्षिण मे बारह और वार्तिक मे अडतालीस कलाएँ हैं। वीर, वीभत्स और भयानक रस हैं। प्रथम अङ्क के ध्रुवागान में विनियोग हैं।"[७६]

शार्ङ्गदेव कहते हैं—

"धैवती मे ऋषभ-धैवत अश है। आरोह मे षड्ज-पञ्चम लंघनीय हैं। पञ्चम के लोप से षाडव और षड्ज-पञ्चम के लोप से औडुव रूप बनता है। मूर्च्छना ऋषभादि है। ताल, मार्ग और गीतियाँ षाड्जी के समान है तथा विनियोग भी वैसा ही है। कलाएँ बारह हैं। इस जाति मे धैवत न्यास है। ऋषभ, मध्यम एवं धैवत अपन्यास हैं।"[७७]

७६—धैवत्या धैवतर्षभौ अशौ ग्रहौ च। शुद्धावस्थाया धैवत एव न्यासः (अपन्यास·?)। विकृतावस्थायां धैवतर्षभमध्यमा अपन्यासा.। धैवतो न्यास। पञ्चमहीनं षाडवम्। पञ्चमषड्जहीनमौडुवितम्। षड्जपञ्चमस्वरौ बलौ (दुर्बलौ?) कर्तव्यौ। क्वचिल्लघनीयौ। पञ्चस्वरपरस्तार। न्यासपरस्तत्परो वा मन्द्र·। पूर्णावस्थाया गान्धारमध्यमपञ्चमनिषादानामल्पत्वम्। शेषाणां च बहुत्वम्। .... ऋषभादि-मूर्च्छना। तालः पञ्चपाणि·। एककलश्चित्रमार्गे मागधी गीति। द्विकलो वार्तिके सम्भाविता गीति.। चतुष्कलो दक्षिणे पृथुला गीतिः। चित्रे कलाश्चतस्र.। दक्षिणे कला द्वादश। वार्तिकेऽष्टचत्वारिशत्कला। रसा वीरवीभत्सभयानकाः। ध्रुवागाने प्रथमप्रेक्षणके विनियोगः। —मतङ्ग, भ० को०, पृ० २९९

७७—स्तो धैवत्यां रिधावशौ लङ्घ्यावारोहिणौ सपौ।
पलोपात् षाडवं प्रोक्तमौडुव सपलोपत॥
ऋषभादिर्मूर्च्छना स्यात्तालो मार्गश्च गीतय.।
विनियोगश्च षाड्जीवत् कला द्वादश कीर्तिताः॥
अस्या धैवत्यां धैवतो न्यास, ऋषभमध्यमधैवता अपन्यासा.।
—स० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० २१७

मतङ्ग ने धैवत का अपन्यासत्व केवल शुद्ध अवस्था मे कहा है, फलत सम्पूर्णावस्था मे वे मध्यम को भी अल्प मानते है, पञ्चम पाडवकारी होने के कारण अल्प है। गान्धार और निपाद अंशस्वरो के विवादी होने के कारण अल्प है।

मतङ्ग-किन्नरी पर ऋषभादि मूर्च्छना स्थापित करने से हमे शुद्ध एव विकृत धैवती की प्राप्ति इस प्रकार होगी—

पर्दे स्वर
०—रे
१—ग
२—म
३—प
४—ध
५—नि
६—स
७—रे
८—ग
९—म
१०—प
११—ध
१२—नि
१३—स

धैवतांश शुद्ध धैवती—चिकारियाँ धैवत मे मिलाने पर मन्द्र-स्थान चौथे, मध्यस्थान दसवे और तारस्थान अठारहवे से प्राप्त होगा। अठारहवें पर्दे पर तारस्थानीय ध, नि, स, रे भी मीड द्वारा सरलतापूर्वक मिल जायँगे।

ऋषभांश विकृत धैवती—चिकारियाँ ऋपभ मे मिलाने पर मेरु से मन्द्र, सातवे पर्दे से मध्य और चौदहवे पर्दे से तार-स्थान की प्राप्ति होगी। तारस्थानीय निपाद और षड्ज भी अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा मिल जायँगे।

(७) नैषादी

महर्षि भरत का कथन है —

"निषादिनी मे निषाद, गान्धार और ऋषभ अशस्वर होते हैं। यही अपन्यास स्वर है, न्यासस्वर निषाद है। पाडव एवं औडुव अवस्थाएँ धैवती के समान होती हैं, उसी जाति के समान लघनीय एवं बलवान् स्वर है।"[७८]

धैवती का ध्यान

यस्या वपुर्नवसुधारसनिर्विशेष पीतं तदप्यतितरा नयनैर्महेशे—
नापीयमानमभितो विदधाति देहं ता धवतीमनुगुणामनिश नमामि ॥

—जगदेक, भरतकोश, पृ० २९९

अर्थात्—अपने नेत्रो द्वारा भगवान् शंकर जिसके पीत शरीर के शोभामृत का पान अत्यन्त मात्रा मे निरन्तर कर रहे हैं, (तब भी, जो शरीर धारण कर रही है,) मै उस गुणानुरूप धैवती को निरन्तर प्रणाम करता हूँ।

७८–निषादिन्या निशादोऽशो गान्धारस्त्वृषभ. स्मृत· ।
एत एव अ (ह्य) पन्यासा न्यासश्चैवात्र सप्तमः ॥

पर्दे	स्वर
१४	रे
१५	ग
१६	म
१७	प
१८	ध

मतङ्ग मुनि कहते हैं—

"निपादवती मे निपाद-ऋपभ-गान्धार अंश एवं ग्रह-स्वर होते है। यही स्वर अपन्यास है। केवल निपाद न्यास है। षाडवावस्था पञ्चमहीन और औडुवावस्था पञ्चम-पड्जहीन होती है। पूर्णावस्था मे पड्ज, मध्यम, गान्धार और पञ्चम अल्प होते है। औडुवित अवस्था मे मध्यम एव धैवत अल्प होते है। तारस्थान मे पाँच स्वरो का प्रयोग है। न्यासस्वर (निपाद) अथवा (अवरोह गति मे) उससे पर (धैवत) तक मन्द्रगति है। मूर्च्छना गान्धारादि है। ताल चञ्चत्पुट है। दक्षिण मार्ग मे चौसठ* कलाएँ, चित्र मार्ग मे आठ हैं, करुण रस है और प्रथम अक के ध्रुवागान मे प्रयोज्य हैं।[७९]"

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है —

"नैपादी मे नि, रे, ग अश है, अनश स्वर अवहुल (अल्प) है। षाडव और औडुव रूप तथा लङ्घ्य स्वर पूर्व जाति (धैवती) के समान हैं, विनियोग भी उसके सदृश

धैवत्या इव कर्तव्यौ (व्ये ?) षाडवौडुविते तथा।
तद्वच्च लघनीयौ तु वलवन्तौ तथैव च ॥

—भरत०, व० सं०, पृ० ४४८

७९—निपादवत्या निषादर्पभगान्धारा ग्रहा अंशाश्च। निपादगान्धारर्षभा अपन्यासाः। निपाद एको न्यासः। पञ्चमहीनं पाडवम्। पञ्चमपड्जहीनमौडुवितम्। पूर्णावस्थाया पड्जगान्धारमध्यमपञ्चमानामल्पत्वम्। औडुविते मध्यमधैवतयोरल्पत्वम्। पञ्चस्वरपरा तारगति। न्यासपर तत्परो वा मन्द्र.। गान्धारादिर्मूर्च्छना। तालश्चञ्चत्पुट.। दक्षिणे कलाश्चतुष्पष्टि। चित्रेऽष्टौ। रसश्च करुण.। ध्रुवागाने प्रथमप्रेक्षणि(ण ?) के विनियोगः।

*टिप्पणी—'कला' शब्द का अर्थ ताल-भाग भी होता है और एक गुरु (दो लघु) भी। मतङ्ग ने यहाँ दक्षिण मार्ग मे चौसठ कला वताते हुए कला शब्द का प्रयोग 'गुरु' के अर्थ मे किया है। शार्ङ्गदेव का प्रयोग ताल भाग के अर्थ मे है। चञ्चत्पुट की चार आवृत्तियाँ दोनो का ही तात्पर्य है। दक्षिण मार्ग मे प्रयोज्य चतुष्कल चञ्चत्पुट की चार आवृत्तियो मे सोलह कलाएँ (तालभाग) होती है। प्रत्येक कला (ताल भाग) मे चार कलाएँ (गुरु) होती है। फलतः १६×४=६४ कलाएँ मतङ्ग ने वतायी है।

है। ताल चञ्चत्पुट है, कलाएँ सोलह हैं। मूर्च्छना गान्धारादि है। इस जाति में निपाद न्यासस्वर है और अंशस्वर ही अपन्यास स्वर है।"[८०]

मतङ्ग-किन्नरी पर गान्धारी मूर्च्छना की स्थापना करने से निम्नस्थ स्थिति होगी—

पर्दे	स्वर
०	ग
१	म
२	प
३	ध
४	नि
५	स
६	रे
७	ग
८	म
९	प
१०	ध
११	नि
१२	स
१३	रे
१४	ग
१५	म
१६	प
१७	ध
१८	नि

निषादांश शुद्ध नैषादी—चिकारियाँ निषाद में मिलाने पर मन्द्रस्थान का आरम्भ चौथे, मध्यस्थान का ग्यारहवे और तार-स्थान का आरम्भ अठारहवें से होगा।

मन्द्रावस्था में मन्द्र निपाद से अवरोह गति में पर (धैवत) तीसरे पर्दे पर मिलेगा और अठारहवें पर मीड द्वारा स, रे, ग, म प्राप्त करने पर तारस्थानीय पाँच स्वर मिल जायँगे। मतङ्ग का विधान इस प्रकार पूर्ण हो जायगा।

ऋषभांश विकृत नैषादी—चिकारियाँ ऋषभ में मिलाने पर मध्यस्थान छठे और तारस्थान तेरहवे पर्दे से मिलेगा। मेरु से छठे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय छः स्वर मिलेंगे, जिनमे न्यास स्वर निपाद भी है। अठारहवें पर्दे पर मीड द्वारा तारस्थानीय षड्ज भी मिल जायगा।

गान्धारांश विकृत नैषादी—चिकारियाँ गान्धार में मिलाने पर मेरु से छठे पर्दे तक मन्द्र, सातवे से तेरहवे तक मध्य और चौदहवे से अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा प्राप्त ऋषभ तारस्थान की प्राप्ति होगी।

शुद्ध जातियों में अंशस्वर ही न्यासस्वर होता है। महर्षि भरत के विधान में अंशस्वर से अवरोहगति में मन्द्रगति नही होती, क्योकि महर्षि के मत मे, यदि मन्द्र और तार अवधियों की पराकाष्ठा तीनो स्थानो (सप्तको) मे प्राप्त करना है, तो

८०—नैषाद्या निरिगा अंशा अनंशा बहुला स्मृता.।
पाडवौडुवलघ्या. स्यु पूर्ववद् विनियोजनम्।
चञ्चत्पुट पोडशात्र कला गादिश्च मूर्च्छना॥
अस्या नैषाद्या निपादो न्यास। अंशा एवापन्यासाः।

—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० २२०

मूर्च्छना का आरम्भ (एकतन्त्री या मत्तकोकिला जैसी वीणाओ मे) अंश स्वर से करना चाहिए। तीन से अधिक अति मन्द्र अथवा अति तार स्थान महर्षि के यहाँ नही है।

मतङ्ग ने एक जाति के सभी रूपो के लिए एक मूर्च्छना निश्चित की है; फलत अनेक अवस्थाओ मे, जहाँ उनके विधान के अनुसार निश्चित मूर्च्छनाओ मे सम्पूर्ण तीनो स्थान प्राप्त नही होते, वहाँ अनेक स्थितियो मे अति मन्द्र या अति तार स्वर भी प्राप्त हो जाते है। इसी लिए मतङ्ग ने अपने जाति-लक्षणो मे विभिन्न मन्द्र-तारावधियो का विशेपरूपेण वर्णन किया है।

शार्ङ्गदेव के काल तक मन्द्र-तारावधि के नियम सर्वथा शिथिल हो गये थे, इस शिथिलता का वीज मतङ्ग के द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद मे निहित है।*

ससर्गज विकृत जातियाँ

(८) षड्जकैशिकी

महर्षि भरत का विधान है —

"षड्जकैशिकी मे षड्ज-गान्धार-पञ्चम अश होते है। षड्ज-पञ्चम-सप्तम अपन्यास होते है। गान्धार न्यासस्वर है। इस जाति की षाडव या औडुव अवस्था नही होती। इस जाति मे धैवत (मध्यम ?) और ऋषभ को दुर्वल रखना चाहिए।"[८१]

मतङ्ग का कथन है —

"षड्जकैशिकी के ग्रह और अश षड्ज-गान्धार-पञ्चम होते है। तारावधि पञ्चस्वर तथा मन्द्रावधि न्यास स्वर तक अथवा (अवरोह गति में) उससे पर तक है। यह जाति नित्य सम्पूर्ण है। धैवत-निषाद-मध्यम का अल्पत्व है और ऋषभ का अल्पतरत्व। शेष स्वरो का वाहुल्य है। गान्धार न्यास स्वर है। चित्र मार्ग मे एककल चञ्चत्पुट ताल, मागधी गीति है। वार्तिक मार्ग मे द्विकल (चञ्चत्पुट) ताल और

*** नैषादी का ध्यान**

भरत-कोश मे न होने के कारण नही दिया जा सका।

८१—अंशास्तु षड्जकैशिक्या षड्जगान्धारपञ्चमा.।
अपन्यासा भवन्त्यत्र षड्जसप्तमपञ्चमा.॥
गान्धारश्च भवेन्न्यासो हीनस्वर्यं न चात्र तु।
दौर्वल्यञ्चात्र कर्तव्यं धैवतस्य (मध्यमस्य) र्षभस्य च॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ४४८

सम्भाविता गीति है। दक्षिण मार्ग मे चतुष्कल (चञ्चत्पुट) ताल और पृथुला गीति है। करुण रस है। द्वितीय अंक के प्रथम प्रवेश-गीत मे विनियोग है।"[८२]

आचार्य शार्ङ्गदेव कहते है —

"षड्जकैशिकी मे षड्ज-गान्धार-पञ्चम अंश होते है। मध्यम और ऋषभ मे अल्पत्व रहता है। धैवत और निषाद (मध्यम और ऋषभ की अपेक्षा) कुछ बहुल होते है। चञ्चत्पुट ताल है, सोलह कलाएँ है। द्वितीय अङ्क की प्रावेशिकी ध्रुवा मे विनियोग है। इस जाति में गान्धार न्यास है और षड्ज-निषाद-पञ्चम अपन्यास है।"[८३]

मतङ्ग और शार्ङ्गदेव दोनो ने ही इस जाति की मूर्च्छना निर्दिष्ट नही की है, कल्लिनाथ ने भी इस सबंध मे मौन का अवलम्बन किया है। मतङ्ग-किन्नरी में षड्जादि मूर्च्छना स्थापित करने पर मतङ्ग-विहित सीमाएँ मिल जायँगी।

मतङ्ग-किन्नरी पर 'षड्जादि' मूर्च्छना स्थापित करने से निम्नस्थ स्थिति स्पष्ट होती है—

पर्दे	स्वर
०	स
१	रे
२	ग
३	म

षड्जांश षड्जकैशिकी—षड्ज मे चिकारियाँ मिलाने पर मेरु से छठे पर्दे तक मन्द्र, सातवे से तेरहवे तक मध्य एवं चौदहवें से अठारहवे (मीड द्वारा प्राप्त धैवत, निषाद सहित) तक तार-स्थान की प्राप्ति होगी।

८२–षड्जकैशिक्या षड्जगान्धारपञ्चमा ग्रहा अंशाश्च। पञ्चस्वरपरस्तार.। न्यासपरस्तत्परो वा मन्द्र.। नित्यसम्पूर्णा धैवतनिषादमध्यमानामल्पत्वम् ऋषभस्याल्पतरत्वम्। शेषाणा बहुलत्वम्। न्यासस्तु गान्धारः। चञ्चत्पुटस्तालः। एककलश्चित्रे मागधी गीति.। वार्तिकमार्गे द्विकलः सम्भाविता गीति.। चतुष्कले (लो) दक्षिणमार्गे पृथुला गीतिः। रसश्च करुणः। प्रथमप्रवेशगीते द्वितीयप्रेक्षणके विनियोगः।

—मतङ्ग, भ० को०, पृ० ६८७

८३–अंशा स्यु. षड्जकैशिक्यां षड्जगान्धारपञ्चमाः।
ऋषभे मध्यमेऽल्पत्वं धनिषादौ मनाग्बहू॥
चञ्चत्पुट· षोडशास्या कला· स्युर्विनियोजनम्।
प्रावेशिक्या ध्रुवायां स्यात्प्रेक्षणे तु द्वितीयके॥
अस्या षड्जकैशिक्या गान्धारो न्यास। षड्ज-निषाद-पञ्चमा अपन्यासा।

—स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० २२४

पर्दे	स्वर
४	प
५	ध
६	नि
७	स
८	रे
९	ग
१०	म
११	प
१२	ध
१३	नि
१४	स
१५	रे
१६	ग
१७	म
१८	प

गान्धारांश षड्जकैशिकी—गान्धार में चिकारियाँ मिलाने पर तीसरे पर्दे से मन्द्र, नवें से मध्य और सोलहवे से तार स्थान का आरम्भ होगा। मतङ्ग के विधान के अनुसार मन्द्र गान्धार (न्यास स्वर) से अवरोह गति मे ऋषभ पहले पर्दे पर मिलेगा। अठारहवे पर्दे पर धैवत और निषाद की प्राप्ति करने पर तार-स्थानीय पाँच स्वर ग, म, प, ध, नि मिल जायँगे।

पञ्चमांश षड्जकैशिकी—पञ्चम मे चिकारियाँ मिलाने पर चौथे पर्दे से मन्द्र, ग्यारहवे से मध्य एव अठारहवे से तार स्थान की प्राप्ति हो जायगी। अठारहवे पर्दे पर भी ध, नि, स प्राप्त किये जा सकते है।

(९) षड्जोदीच्यवा

महर्षि भरत का कथन है—

"षड्जोदीच्यवती के अंशस्वर षड्ज, मध्यम, धैवत और निषाद हैं। न्यासस्वर मध्यम है। इसके अपन्यास स्वर धैवत और षड्ज हैं। इस जाति मे अंशस्वरों का परस्पर सञ्चार है। षाडवावस्था मे ऋषभ और औडुवावस्था मे ऋषभ-पञ्चम का लोप होता है।[८४] इसमे गान्धार वली है।"

सामान्यतः औडुवकारी स्वर परस्पर संवादी होते है, परन्तु यह जाति इस सवन्ध मे अपवाद है। इस जाति के षड्जग्रामीय होने के कारण यद्यपि इसमें ऋषभ-पञ्चम परस्पर सवादी नही, तथापि महर्षि ने ऋषभ-पञ्चम को इस जाति मे औडुवकारी कहा है। मतङ्ग और शार्ङ्गदेव ने भी आप्त वाक्य का अनुसरण किया है। इस जाति मे औडुवकारी दोनो स्वरो मे कोई भी षाडवद्वेषी नही, अपितु अशावस्था को प्राप्त धैवत

८४—षड्जश्च मध्यमश्चैव निषादो धैवतस्तथा।
स्युः षड्जोदीच्यवत्यंश न्यासश्चैव तु मध्यम॥
अपन्यासो भवत्यस्या. धैवत. षड्ज एव च।
परस्परमिहांशाना सञ्चारश्च विधीयते॥
पञ्चमर्षभहीनं तु पञ्चस्वर्यं तु तत्र वै।
ऋषभ. षाडवे हीनो गान्धारश्च वली भवेत्॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ४४९

है। सामान्यत. षाडवद्वेषी स्वर औडुवकारी स्वरो मे से एक होता है, अतः धैवत का षाडवद्वेषित्व भी सामान्य नियम का अपवाद समझना चाहिए।

मतङ्ग का कथन है—

"षड्जोदीच्यवती मे ग्रह एवं अंश स, म, ध, नि होते हैं। तार गति पाँच स्वरो तक है। न्यास स्वर तक या उससे अवरोहगति में पर गान्धार तक मन्द्रावधि है। षाडवावस्था ऋषभहीन और औडुवित अवस्था ऋषभ-पञ्चमहीन है। पूर्णावस्था मे गान्धार-पञ्चम का अल्पत्व है। अंश होने पर गान्धार बहुल है (?)। षाडवावस्था मे पञ्चम अल्प है। औडुवावस्था मे कोई अल्प नही, सभी बहुल हैं। मध्यम न्यास है, ऋषभ-धैवत अपन्यास है।... गान्धारादि मूर्च्छना है। पञ्चपाणि ताल है। एककल, चित्रमार्ग से मागधी गीति, द्विकल वार्तिक मार्ग से सम्भाविता और चतुष्कल दक्षिण मार्ग से पृथुला गीति होती है। रस शृङ्गार और हास्य हैं। द्वितीय अङ्क के ध्रुवागान मे विनियोग है।"[८५]

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है—

"षड्जोदीच्यवा मे स, म, नि, ध अंश है, उनकी परस्पर सङ्गति है। मन्द्र गान्धार का बाहुल्य है। तारस्थान मे षड्ज और ऋषभ भी बहुल हैं। ऋषभ के लोप से षाडव और ऋषभ-पञ्चम के लोप से औडुव रूप बनता है। धैवत के अंश होने पर षाडव रूप नही होता। गीत, ताल इत्यादि षाड्जी के समान हैं। मूर्च्छना गान्धारादि है, द्वितीय अङ्क के ध्रुवागान मे विनियोग है। इस जाति मे न्यास स्वर मध्यम है। षड्ज और धैवत अपन्यास स्वर हैं।"[८६]

८५—षड्जोदीच्यवत्या षड्जमध्यमधैवतनिषादा ग्रहा अंशाश्च। पञ्चस्वरपरस्तार.। न्यासपरस्तत्परो वा मन्द्र·। ऋषभहीन षाडवम्। ऋषभपञ्चमहीनमौडुवितम्। पूर्णावस्थायां गान्धारपञ्चमयोरल्पत्वम्। गान्धारस्यांशत्वप्राप्तौ बाहुल्यम्। षाडवे पञ्चमस्यालपत्वम्। औडुविते न कस्याप्यल्पत्वम्। अशेषाणा बहुत्वमेव। मध्यमो न्यासः। ऋषभधैवतावपन्यासौ।..गान्धारमूर्च्छना। ताल. पञ्चपाणि.। एककलेन चित्रेण मागधी। द्विकलेन वार्तिकेन सम्भाविता। चतुष्कलेन दक्षिणेन पृथुला। रसौ शृङ्गारहास्यौ। ध्रुवागाने द्वितीयप्रेक्षणके विनियोग.। —मतङ्ग०, भ० को०, पृ० ६८८

८६—अंशाः समनिधाः षड्जोदीच्यवाया प्रकीर्तिता।
मिथश्च सगतास्ते स्युर्मन्द्रगान्धारभूरिताः॥
षड्जर्षभौ भूरितारौ रिलोपात्षाडवं मतम्।

शार्ङ्गदेव के समक्ष नाट्यशास्त्र का पाठ अधुना-मुद्रित पाठों से कहीं-कहीं भिन्न था। कल्लिनाथ के समक्ष भी सम्भवतः यह पाठ था, जिसके अनुसार इस जाति में षड्ज, ऋषभ और गान्धार को बली बताया गया है।[87] कल्लिनाथ का कथन है कि इस जाति में ऋषभ की भरतोक्त बलवत्ता तारस्थान में माननी चाहिए।[88]

मतङ्ग-किन्नरी पर गान्धारादि मूर्च्छना स्थापित करने पर इस जाति के विभिन्न प्रकारों की स्थिति निम्नस्थ होगी—

पर्दे	स्वर
०	ग
१	म
२	प
३	ध
४	नि
५	स
६	रे
७	ग
८	म
९	प
१०	ध
११	नि
१२	स
१३	रे

मध्यमांश षड्जोदीच्यवा—मध्यम में चिकारियाँ मिलाने पर पहले पर्दे से मन्द्र, आठवें से मध्य और पन्द्रहवें से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवें पर्दे पर षड्ज प्राप्त कर लेने से मतङ्गोक्त तारावधि मिलेगी और पहले पर्दे पर स्थापित मन्द्र मध्यम (न्यास) से अवरोह गति में पर गान्धार भी मेरु पर मिल जायगा।

धैवतांश षड्जोदीच्यवा—धैवत में चिकारियाँ मिलाने पर तीसरे पर्दे से मन्द्र, दसवें से मध्य और सत्रहवें से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवें पर्दे पर गान्धार तक प्राप्त करने पर तारस्थानीय पाँच स्वर ध, नि, स, रे, ग मिल जायँगे। मन्द्र-स्थानीय स्वर यथेष्ट मिलेंगे।

निषादांश षड्जोदीच्यवा—निषाद में चिकारियाँ मिलाने पर मन्द्रस्थान चौथे पर्दे, मध्यस्थान ग्यारहवें पर्दे और तार-स्थान अठारहवें पर्दे से मिलेगा। अठारहवें पर्दे पर तारस्थानीय स, रे, ग, म भी प्राप्त किये जा सकते हैं।

औडुवं रिपलोपेन धैवतेंऽशे न षाडवम् ॥
षाड्जीवद् गीततालादि गान्धारादिश्च मूर्च्छना ।
द्वितीये प्रेक्षणे गाने ध्रुवायां विनियोजनम् ॥
अस्या षड्जोदीच्यवत्यां मध्यमो न्यास । षड्जधैवतावपन्यासौ ।
—स० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० २२८

८७—षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारश्च बली भवेत् ।
—भरत०, कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत „ „

८८—'ऋषभश्च बली भवेत्' इति मुनिवचनं तु तारस्थर्षभविषयमिति व्यवस्थापनीयम् ।
—कल्लिनाथ „ पृ० २२८

१४—ग १५—म १६—प १७—ध १८—नि	**षड्जांश षड्जोदीच्यवा**—षड्ज मे चिकारियाँ मिलाने पर मध्यस्थान पाँचवें पर्दे और तारस्थान बारहवे पर्दे से मिलेगा। मेरु से चौथे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय ग, म, प, ध, नि मिलेगे।

(१०) षड्जमध्यमा

महर्षि भरत का कथन है—

"षड्जमध्यमा मे सभी स्वर अश और अपन्यास होते है, प्रयोक्ताओ को इस जाति मे षड्ज या मध्यम स्वर न्यास रखना चाहिए। गान्धार और निषाद के लोप से औडुव एवं निषाद के लोप से षाडव रूप बनाना चाहिए। प्रयोक्ताओ के द्वारा इसमे सभी स्वरों की परस्पर सगति इष्ट है।"[८९]

इस जाति में सभी स्वर अंश है। सामान्यत. अशस्वर लोप्य नही होते, परन्तु इसमे अनंशावस्था मे निषाद और गान्धार का लोप महर्षि द्वारा विहित है, जो सामान्य नियम का अपवाद है।

मतङ्ग कहते हैं—

"षड्जमध्यमा के ग्रह और अंश सातों स्वर है। तार गति पाँच स्वरो तक है। मन्द्र गति न्यासस्वर तक अथवा (अवरोह गति मे) उससे पर तक है। षाडवावस्था निषाद-हीन और औडुवावस्था निषादगान्धार-हीन है। ग्राम के अविरोध के कारण सङ्गति यथेष्ट है। पूर्णावस्था मे निषाद और गान्धार का अल्पत्व है। षड्ज-मध्यम न्यास स्वर है। सातो स्वर अपन्यास है। मूर्च्छना मध्यमादि है। ताल पञ्चपाणि है। एककल, द्विकल, चतुष्कल, चित्र, वार्तिक, दक्षिण मार्गो के द्वारा क्रमशः मागधी, सम्भाविता और पृथुला गीतियाँ है। सब रसों मे इस जाति का प्रयोग होता है। द्वितीय अंक के ध्रुवागान मे विनियोग है।"[९०]

८९—सर्वेऽशा. षड्जमध्याया अपन्यासास्त एव च। षड्जो वा मध्यमो वापि न्यासः कार्य. प्रयोक्तृभिः। गान्धारसप्तमोपेतं पञ्चस्वर्यं तु तत्र वै। षाडव सप्तमोपेत चात्र कार्य प्रयोगतः। सर्वस्वराणां सञ्चार इष्टस्तस्यां प्रयोक्तृभि ॥

—भरत०, व० सं०, पृ० ४४९

९०—षड्जमध्यमाया ग्रहा अशाश्च सप्तैव स्वरा। पञ्चस्वरपरस्तार.। न्यासपरस्तत्परो वा मन्द्रः। निषादहीना. षाडवा.। निषादगान्धारहीना औडुविता.। ग्रामाविरोधेन

शार्ङ्गदेव का कथन है—

"षड्जमध्यमा में सातों स्वर अंश हैं, उनमें परस्पर सञ्चार होता है। निषाद अनंश अवस्था में अल्प होता है। निषाद एवं निषाद-गान्धार के लोप से षाडव एवं औडुव प्रकार बनते हैं। (अंश होने पर) निषाद-गान्धार षाडव एवं औडुव अवस्थाओं के विरोधी होते हैं। गीति, ताल, कला इत्यादि षाड्जी के समान हैं। मूर्च्छना मध्यमादि तथा विनियोग षड्जोदीच्यवती के समान है। इस षड्जमध्यमा में षड्ज और मध्यम न्यास तथा सातों स्वर अपन्यास हैं।"[९१]

मतङ्गकिन्नरी पर मध्यमादि मूर्च्छना स्थापित करने से षड्जमध्यमा के विभिन्न रूपों की स्थिति इस प्रकार होगी—

पर्दे स्वर	
०—म	**षड्जांश षड्जमध्यमा**—चिकारियाँ षड्ज में मिलाने पर
१—प	चौथे पर्दे से मन्द्र, ग्यारहवें से मध्य और अठारहवें से तार स्थान
२—ध	की प्राप्ति होगी। अठारहवें पर्दे पर ऋषभ, गान्धार, मध्यम,
३—नि	पञ्चम मीड द्वारा प्राप्त करने पर मतङ्ग-विधान के अनुसार
४—स	तारस्थानीय पाँच स्वर मिल जायँगे। अवरोह गति में न्यासस्वर
५—रे	अतिमन्द्र मध्यम मेरु पर मिलेगा और षड्ज स्वर न्यास मानने पर
६—ग	उससे पर मन्द्र निषाद चौथे पर्दे पर मिलेगा।

यथेष्टं सञ्चारः। पूर्णावस्थायां निगयोरल्पत्वम्। समौ न्यासौ। सप्तस्वरा अपन्यासाः। मध्यमादिमूर्च्छना। तालः पञ्चपाणिः। एककलद्विकलचतुष्कलैः चित्रवार्तिकदक्षिणमार्गैः क्रमान्मागधी सम्भाविता पृथुलागीतयः। सर्वरसात्मिका। ध्रुवागाने द्वितीयप्रेक्षणके विनियोगः।"

—मतङ्ग, भ० को०, पृ० ६८८

९१—अंशाः सप्तस्वरा षड्जमध्यमायां मिथश्च ते।
सगच्छन्ते निरल्पोऽशाद् गाद् ऋते वादिता विना॥
निलोपनिगलोपाभ्यां षाडवौडुविते मते।
षाडवौडुवयोः स्यातां द्विश्रुती तु विरोधिनौ॥
गीतितालकलादीनि षाड्जीवन्मूर्च्छना पुनः।
मध्यमादिरिह ज्ञेया पूर्ववद् विनियोजनम्॥
अस्यां षड्जमध्यमायां षड्जमध्यमौ न्यासौ। सप्तस्वरा अपन्यासाः।

—स० र०, स्वरा०, अ० सं०, पृ० २३२

७—म
८—प
९—ध
१०—नि
११—स
१२—रे
१३—ग
१४—म
१५—प
१६—ध
१७—नि
१८—स

ऋषभांश षड्जमध्यमा—चिकारियाँ ऋषभ मे मिलाने पर मध्य स्थान पाँचवे और तारस्थान बारहवे पर्दे से मिलेगा। मेरु से चौथे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय पाँच स्वर मिलेगे, जिनमे न्यासस्वर मध्यम और षड्ज तथा न्यास षड्ज से पर मन्द्र निषाद भी है।

गान्धारांश षड्जमध्यमा—चिकारियाँ गान्धार मे मिलाने पर मध्यस्थान छठे और तारस्थान तेरहवे पर्दे से मिलेगा। मेरु से पाँचवे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय छ स्वर मिलेगे, जिनमे न्यास-स्वर मध्यम और षड्ज भी है।

मध्यमांश षड्जमध्यमा—चिकारियाँ मध्यम मे मिलाने पर मेरु से मन्द्र, सातवे पर्दे से मध्य और चौदहवे पर्दे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। तारस्थानीय ऋषभ-गान्धार अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा मिल जायँगे।

पञ्चमांश षड्जमध्यमा—चिकारियाँ पञ्चम मे मिलाने पर पहले पर्दे से मन्द्र, आठवे से मध्य और पन्द्रहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवे पर्दे पर रे, ग, म प्राप्त होने पर तारस्थान सम्पूर्ण मिलेगा।

धैवतांश षड्जमध्यमा—चिकारियाँ धैवत मे मिलाने पर दूसरे से मन्द्र, नवे से मध्य एव सोलहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा रे, ग, म, प प्राप्त करने पर सम्पूर्ण तारस्थान मिल जायगा।

निषादांश षड्जमध्यमा—चिकारियाँ निषाद मे मिलाने पर तीसरे पर्दे से मन्द्र, दसवे से मध्य और सत्रहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवे पर रे, ग, म प्राप्त करने से तारस्थानीय पाँच स्वर मिल जायँगे।

(११) गान्धारोदीच्यवती

महर्षि भरत का विधान है—

"गान्धारोदीच्यवा मे षड्ज और मध्यम अंशस्वर होते है। इस जाति मे औडुवितत्व नही है और षाडव रूप ऋषभ के लोप से बनता है। इसमे अल्पत्व, बहुत्व, न्यास और अपन्यास की विधि षड्जोदीच्यवा-जैसी है।"[९२]

९२—गान्धारोदीच्यवांशौ च विज्ञेयौ षड्ज-मध्यमौ।
पञ्चस्वर्यं न चास्त्यत्र षाट्स्वर्य्यम् ऋषभ विना॥

नान्यदेव* का कथन है—

"जिसमे षड्ज और मध्यम अश हो, मध्यम न्यास हो, ऋषभ के लोप से षाडव प्रकार बनता हो, जिसमे औडुवावस्था न हो, जिस जाति में पूर्णता विकल्प से हो और मन्द्रस्थान मे गान्धार का बाहुल्य हो, वह गान्धारोदीच्यवती जाति है।"[९३]

आचार्य शार्ङ्गदेव कहते है—

"गान्धारोदीच्यवा में षड्ज एवं मध्यम स्वर अंश होते है। ऋषभ के लोप से षाडव रूप होता है। पूर्णावस्था मे अनंश स्वर अल्प रहते है, षाडवावस्था में नि, ध, प, ग अल्प होते है। ऋषभ-धैवत की सगति है। मूर्च्छना धैवतादि है। ताल चञ्चत्पुट और कलाएँ सोलह है। चतुर्थ अंक के ध्रुवागान मे विनियोग है। गान्धारोदीच्यवा में मध्यम न्यास और षड्ज-धैवत अपन्यास है।"[९४]

मतङ्गकिन्नरी पर धैवतादि मूर्च्छना की स्थापना से निम्नस्थ स्थिति होगी—

अस्यास्त्वल्पबहुत्वस्य न्यासापन्यासयोस्तथा।
यः षड्जोदीच्यवायास्तु सर्वोऽत्र स विधिः स्मृतः॥

—भरत०, ब० स०, पृ० ४५०

*मतङ्गलक्षण भरतकोश मे न होने के कारण नही दिया जा रहा है।

९३—स्वरौ मध्यमषड्जाख्यौ अशौ यत्र प्रकीर्तितौ।
न्यास. स्यान्मध्यमो यस्या षाडवं चर्षभ विना॥
नास्त्येवौडुवित यस्यां विकल्पाद् यत्र पूर्णता।
मन्द्रस्थाने च गान्धारबाहुल्यं दृश्यते तथा॥

—नान्यदेव, भ० को०, पृ० १७४

९४—गान्धारोदीच्यवाया तु द्वावंशौ षड्जमध्यमौ।
रिलोपात् षाडव ज्ञेयं पूर्णत्वेंऽशेतराल्पता॥
अल्पा निधपगान्धारा. षाडवत्वे प्रकीर्तिता.।
रिधयो. सङ्गतिर्ज्ञेया धैवतादिश्च मूर्च्छना॥
तालश्चञ्चत्पुटो ज्ञेय. कला षोडश कीर्तिता.।
विनियोगो ध्रुवागाने चतुर्थप्रेक्षणे मतः॥
अस्यां गान्धारोदीच्यवाया मध्यमो न्यास.। षड्जधैवतावपन्यासौ।

—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० २३६

पर्दे	स्वर
०	ध
१	नि
२	स
३	रे
४	ग
५	म
६	प
७	ध
८	नि
९	स
१०	रे
११	ग
१२	म
१३	प
१४	ध
१५	नि
१६	स
१७	रे
१८	ग

षड्जांश गान्धारोदीच्यवती—चिकारियाँ षड्ज मे मिलाने पर दूसरे पर्दे से मन्द्र, नवे से मध्य और सोलहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवे पर्दे पर म, प, ध, नि भी प्राप्त कर लेने से सम्पूर्ण तार स्थान मिल जायगा। ऋषभ की संगति के लिए अति-मन्द्र धैवत मेरु पर मिलेगा।

मध्यमांश गान्धारोदीच्यवती—चिकारियाँ मध्यम मे मिलाने पर पाँचवे पर्दे से मध्य और बारहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। मेरु से चौथे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय पाँच स्वर मिलेगे। विकृत जातियो मे न्यास की मन्द्रावस्था मे जाना आवश्यक नही होता।

(१२) रक्तगान्धारी

महर्षि भरत का कथन है—

"इस जाति का लक्षण, षाडव और औडुव इत्यादि अवस्थाएँ गान्धारी के समान जाननी चाहिए। इस जाति मे धैवत और निषाद बलवान् होते है। गान्धार और षड्ज की सङ्गति ऋषभ के अतिरिक्त अन्य स्वरो के साथ है। इस जाति मे केवल मध्यम अपन्यास है।"[९५]

मतङ्ग का कथन है—

"रक्तगान्धारी के अश और ग्रह षड्ज-मध्यम-पञ्चम-गान्धार-निषाद होते हैं। तारस्थान मे पाँच स्वरो का प्रयोग है। मन्द्रस्थान मे न्यास अथवा उससे अवरोह

९५–गान्धारी(रो?)विहितो न्यास हीनस्वर्य्यञ्च लक्षणम् ।
सर्वञ्च रक्तपूर्वाया गान्धार्याश्च विनिर्दिशेत् ॥
बलिनौ भवतश्चात्र धैवतः सप्तमस्तथा ।
गान्धारषड्जयोश्चात्र सञ्चारः ऋषभं विना ।
अपन्यासस्तथा चात्र एको वै मध्यमः स्मृतः ॥
—भरत०, च० सं०, पृ० ४४९–५०

गति में पर स्वर तक जाते हैं। षाडव अवस्था ऋषभहीन और औडुवावस्था ऋषभ-धैवत-हीन होती है। पूर्णावस्था मे ऋषभ-धैवत का अल्पत्व तथा अवशिष्ट स्वरों का बाहुल्य होता है। **निषाद अंश होने के कारण बहुल होना चाहिए, परन्तु (महर्षि भरत के ?) वचन के परिणामस्वरूप वह अबहुल (अल्प) होता है।** षाडव दशा मे धैवत का अल्पत्व होता है। ऋषभ का कभी नही होता। औडुवावस्था मे सभी अंश-स्वरो के रहने के कारण किसी का अल्पत्व नही होता। पूर्वोक्त विधान के परिणाम-स्वरूप अवशिष्ट स्वर बहुल होते हैं। न्यास गान्धार ही है। अपन्यास मध्यम है। षड्ज-गान्धार की सङ्गति है। ...मूर्च्छना ऋषभादि है। करुण रस है। ताल पञ्चपाणि है। एककल-द्विकल-चतुष्कल, चित्र-वार्तिक-दक्षिण मार्ग मे क्रमशः मागधी, सम्भाविता, पृथुला गीतियाँ हैं।"[९६]

मतङ्ग के उपर्युक्त लक्षण मे स्थूलाक्षर भाग नाट्यशास्त्र के मुद्रित संस्करणो तथा शार्ङ्गदेव इत्यादि के लक्षणों से मेल नही खाता। सम्भव है कि भरतकोश में दिया हुआ मतङ्गवाला यह पाठ अशुद्ध हो। निषाद का अल्पत्व इस जाति मे होना कुछ समझ मे नही आता। हो सकता है कि मतङ्ग के समक्ष नाट्यशास्त्र का कोई और पाठ रहा हो या उनको गुरुपरम्परा से इस जाति मे निषाद का अल्पत्व प्राप्त हुआ हो। मतङ्ग ने किसी भरत को अपना गुरु कहा है।[९७] मतङ्ग इस जाति में निषाद का अल्पत्व 'वचन' के परिणामस्वरूप अपवाद रूप मे मानते हैं।

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है—

"रक्तगान्धारी मे धैवत और ऋषभ के अतिरिक्त अन्य स्वर अंश होते हैं। षड्ज-गान्धार की सगति ऋषभ के अतिरिक्त अन्य स्वरो के साथ करनी चाहिए। रिलोप

९६—रक्तगान्धार्यां षड्जमध्यमपञ्चमगान्धारनिषादा ग्रहा अंशाश्च। पञ्चस्वर-परस्तारः। न्यासपरस्तत्परो वा मन्द्र। ऋषभहीनं षाडवम्। रिधहीनमौडुवितम्। पूर्णावस्थायाम् ऋषभ-धैवतयोरल्पत्वम्। शेषाणां बाहुल्यम्। **निषादस्यांशत्वाद् बहुत्वे प्राप्ते वचनादबहुत्वम्।** षाडवे धैवतस्याल्पत्वम्। ऋषभस्य न कदाचिदपि। औडुविते सर्वेषामंशत्वान्न कस्याप्यल्पत्वम्। उक्तभङ्‌ग्या शेषाणां बाहुल्यम्। न्यासो गान्धार एव। अपन्यासस्तु मध्यमः। षड्जगान्धारयोस्तु सञ्चार।...ऋषभादिमूर्च्छना। करुणो रसः। ताल. पञ्चपाणिः। एकद्विचतुष्कलेषु चित्रवार्तिकदक्षिणेषु मागधीसम्भावितपृथुला गीतयः।

—मतङ्ग, भ० को०, पृ० ५१६

९७—भरत गुरुमाह मतङ्ग.। —भ० को०, पृ० ४२४

और रिधलोप से पाडव और औडुव रूप होता है। निषाद और धैवत का बाहुल्य है। पञ्चम अश होने पर पाडवद्वेपी होता है। पड्ज, निपाद, मध्यम और पञ्चम अश होने पर औडुवद्वेपी होते हैं। पड्ज-गान्धार की भी परस्पर सङ्गति करनी चाहिए। पाड्जी के समान पञ्चपाणि इत्यादि ताल है। मूर्च्छना ऋषभादि है। तृतीय अंक की ध्रुवा में विनियोग है। इस रक्तगान्धारी मे गान्धार न्यास और मध्यम अपन्यास है।"[९८]

मतङ्गकिन्नरी पर ऋषभादि मूर्च्छना स्थापित करने पर रक्तगान्धारी के विभिन्न रूपो की स्थिति इस प्रकार होगी—

पर्दे	स्वर
०	रे
१	ग
२	म
३	प
४	ध
५	नि
६	स
७	रे
८	ग
९	म
१०	प
११	ध
१२	नि
१३	स
१४	रे
१५	ग
१६	म
१७	प
१८	ध

गान्धारांश रक्तगान्धारी—चिकारियाँ गान्धार मे मिलाने पर पहले पर्दे से मन्द्र, आठवे पर्दे से मध्य एव पन्द्रहवे पर्दे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवे पर्दे पर निपाद और प्राप्त कर लेने तथा मतङ्गोक्त तार-स्थानीय पांच स्वर तथा पड्ज-ऋपभ भी प्राप्त कर लेने से तारावधि की पराकाष्ठा प्राप्त हो जायगी। न्यासस्वर से अवरोह गति मे पर अतिमन्द्र ऋपभ मेरु पर मिल जायगा।

मध्यमांश रक्तगान्धारी—चिकारियाँ मध्यम मे मिलाने पर दूसरे पर्दे से मन्द्र, नवे से मध्य और सोलहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवे पर्दे पर नि, स भी प्राप्त करने पर तारस्थानीय पॉच स्वर मिल जायँगे।

पञ्चमांश रक्तगान्धारी—चिकारियाँ पञ्चम में मिलाने पर तीसरे पर्दे से मन्द्र, दसवे से मध्य और सत्रहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवे पर्दे पर नि, स, रे प्राप्त करने पर तारस्थानीय पॉच स्वर प्राप्त हो जायँगे।

निषादांश रक्तगान्धारी—चिकारियाँ निपाद मे मिलाने पर पॉचवे पर्दे से मध्य और बारहवें पर्दे से तारस्थान की प्राप्ति हो जायगी। मेरु से चौथे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय पाँच स्वर मिलेगे जिनमे न्यास स्वर गान्धार भी है।

९८—अंशाः स्यू रक्तगान्धार्य्यां पञ्च धर्षभवर्जिता॰।
रिमतिक्रम्य सगयो॰ कार्य्ये सन्निधिमेलने॥

षड्जांश रक्तगान्धारी

चिकारियाँ षड्ज में मिलाने पर छठे पर्दे से मध्य और तेरहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी, तारस्थानीय निपाद भी अठारहवें पर्दे पर प्राप्त किया जा सकता है। मेरु से पाँचवे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय छः स्वर मिलेगें।

(१३) कैशिकी

महर्षि भरत का कथन है—

"ऋपभ के अतिरिक्त अन्य सभी स्वर कैशिकी के अंश होते है। यही स्वर अपन्यास होते हैं। गान्धार और निपाद न्यास होते हैं। धैवत और निपाद अंश होने पर 'पञ्चम' न्यास होता है, कभी इस जाति मे ऋपभ भी अपन्यास होता है। ऋपभ के लोप से इस जाति में षाडव और धैवत-ऋपभ के लोप से औडुव रूप बनता है। इस जाति मे पड्ज (निपाद ?) पञ्चम वली होते हैं। इस जाति मे विशेषतया ऋपभ का दौर्बल्य और लंघन है। स्वर-सञ्चार षड्जमध्या के समान है।"[९९]

दत्तिल* का कथन है—

"कैशिकी मे ऋपभ अनंशस्वर है, द्विश्रुति दोनो स्वर न्यास है। इसमें क्रमशः ऋपभ

रिलोपरिधलोपाभ्यां षाडवौडुवमिष्यते।
बहुत्व निधयोरंश. पञ्चमो द्वेष्टि षाडवम् ॥
द्विषन्त्यौडुवित्त षड्जनिमपा· सगतौ सगौ।
पञ्चपाण्यादि षाड्जीवद् ऋषभादिस्तु मूर्च्छना।
तृतीयप्रेक्षणगत—ध्रुवायां विनियोजनम् ॥
अस्यां रक्तगान्धार्यां गान्धारो न्यास.। मध्यमोऽपन्यासः।
—सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० २४०–४२

९९—कैशिक्यशास्तु विज्ञेया· स्वरा· सर्वेर्पभ विना।
एत एव ह्यपन्यासा न्यासौ गान्धारसप्तमौ ॥
धवतेऽशे निषादे च न्यासः पञ्चम इष्यते।
अपन्यासः कदाचिच्च ऋपभोऽपि भवेदिह॥
आर्पभ्य षाडव चात्र धैवतर्पभवर्जितम्।
तथा चौडुवित कार्य्य बलिनौ षड्ज (चान्त्य) पञ्चमौ ॥
दौर्बल्य ऋपभस्यात्र लघनं च विशेषत.।
षड्जमध्यावदत्रापि सचारस्तु विधीयते ॥ —भरत०, व० स०, पृ० ४५२–४५३

*अप्राप्त होने के कारण मतङ्ग-लक्षण नही दिया जा रहा है।

और धैवत का लोप करना चाहिए। निपाद और धैवत के अंश होने पर पञ्चम भी न्यास होता है। कुछ लोग अंशस्वरो के समान ही निपाद को भी अपन्यास स्वर कहते हैं। इस जाति में पञ्चम और निपाद वलवान् है।"[१००]

आचार्य शार्ङ्गदेव कहते है—

"कैशिकी जाति में ऋषभ के अतिरिक्त स्वर अश होते है। जब नि, ध अश हो, तो न्यासस्वर पञ्चम तथा अन्य अवस्थाओ मे द्विश्रुतिस्वर (ग, नि) न्यास होते है। अन्य (मतङ्ग आदि) नि, ध की अशावस्था मे नि, ग, प तीनो स्वरो को न्यास मानते हैं। रिलोप और रिधलोप से पाडव-औडुव प्रकार वनते है। ऋषभ अल्प, नि, प वहुल तथा अशस्वरो मे परस्पर सगति है। क्रमश. पञ्चम और धैवत षाडव और औडुव अवस्थाओ के विरोधी हैं। पञ्चपाणि इत्यादि पाड्जी के समान है। मूर्च्छना गान्धारादि है। पञ्चम अंक की ध्रुवा में विनियोग है। इस जाति मे गान्धार-पञ्चम-निपाद न्यास हैं। ऋषभ के अतिरिक्त छहो स्वर अथवा (कुछ लोगों की दृष्टि मे) सातो स्वर अपन्यास है।"[१०१]

भरतनाट्यशास्त्र के वम्बई-सस्करण का 'वलिनौ षड्ज-पञ्चमौ' पाठ लेखन-प्रमाद का परिणाम है। काशी-संस्करण मे 'वलिनौ चान्यपञ्चमौ' पाठ है, जो कल्लिनाथ द्वारा दिये हुए शुद्ध पाठ 'वलिनौ चान्त्यपञ्चमौ' का अशुद्ध रूप है। दत्तिल और शार्ङ्गदेव ने भी इस जाति मे अन्त्य (अन्तिम स्वर निपाद) और पञ्चम को ही वली माना है।

१००—कैशिक्यामृषभोऽनंशो वि (वै?) न्यासौ द्विश्रुती मतौ।
ऋषभो धैवतश्चैव हेयावस्यां यथाक्रमम् ॥
पञ्चमोऽपि भवेन्न्यासो निपादेऽशे सधैवते।
ऋषभः स्यादपन्यास. कैश्चिदुक्तोंऽशवत्तथा।
पञ्चमो वलवानस्यां स्यान्निपादस्तथैव च ॥—दत्तिल, भ० को०, पृ० १५१

१०१—कैशिक्यामृषभान्येऽशा निधावशौ यदा तदा।
न्यास. पञ्चम एव स्यादन्यदा द्विश्रुती मतौ ॥
अन्ये तु निगपान् न्यासान् निधयोरशयोर्विदु।
रिलोपरिधलोपेन षाडवौडुवित मतम् ॥
रिरल्पो निपवाहुल्यमंशाना संगतिर्मिथ·।
पाडवौडुविते द्विष्ट. क्रमात् पञ्चमधैवतौ ॥
पाड्जीवत्पञ्चपाण्यादि गान्धारादिस्तु मूर्च्छना।

मतङ्गकिन्नरी पर गान्धारादि मूर्च्छना स्थापित करने से कैशिकी की विभिन्न अवस्थाएँ यो होगी—

पर्दे	स्वर
०	ग
१	म
२	प
३	ध
४	नि
५	स
६	रे
७	ग
८	म
९	प
१०	ध
११	नि
१२	स
१३	रे
१४	ग
१५	म
१६	प
१७	ध
१८	नि

गान्धारांश कैशिकी—चिकारियाँ गान्धार में मिलाने पर मेरु से मन्द्र, सातवे पर्दे से मध्य और चौदहवे पर्दे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अठारहवे पर्दे पर षड्ज और ऋषभ भी प्राप्त किये जा सकते हैं। मन्द्रस्थान मे गान्धार और निपाद दोनो न्यासस्वर मिल जायँगे।

मध्यमांश कैशिकी—चिकारियाँ मध्यम मे मिलाने पर पहले पर्दे से मन्द्र, आठवे से मध्य और पन्द्रहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। तारस्थानीय स, रे, ग अठारहवे पर्दे पर प्राप्त किये जा सकते हैं।

पञ्चमांश कैशिकी—चिकारियाँ पञ्चम मे मिलाने पर दूसरे पर्दे से मन्द्र, नवे से मध्य और सोलहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। तारस्थानीय स, रे, ग, म भी अन्तिम पर्दे पर प्राप्त किये जा सकते है।

धैवतांश कैशिकी—चिकारियाँ धैवत मे मिलाने पर तीसरे पर्दे से मन्द्र, दसवे से मध्य और सत्रहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। तारस्थानीय स, रे, ग भी अन्तिम पर्दे पर प्राप्त किये जा सकते है। इस अवस्था मे न्यासस्वर 'पञ्चम' मन्द्र एव अतिमन्द्र स्थान मे भी मिलेगा।

निषादांश कैशिकी—चिकारियाँ निषाद मे मिलाने पर चौथे पर्दे से मन्द्र, ग्यारहवे से मध्य और अठारहवे पर्दे से तारस्थान की प्राप्ति होगी, जिस पर तार स, रे, ग, म भी प्राप्त किये जा सकते है। इस अवस्था मे न्यास पञ्चम की मन्द्र एव मन्द्रतम अवस्थाएँ भी प्राप्त होगी।

पञ्चमप्रेक्षणगतध्रुवाया विनियोजनम् ॥
अस्यां कैशिक्यां गान्धारपञ्चमनिपादा न्यासाः। रिवर्ज्याः पट् सप्त वा स्वरा अपन्यासाः।
—सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० २४४–२४५

षड्जांश कैशिकी—चिकारियाँ षड्ज मे मिलाने पर पाँचवें पर्दे से मध्य और बारहवे पर्दे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। मेरु से चौथे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय पाँच स्वर मिलेगे, जिनमे गान्धार और निषाद न्यासस्वर भी है।

(१४) मध्यमोदीच्यवा

महर्षि भरत का कथन है—

"मध्यमोदीच्यवा का अशस्वर पञ्चम है। अन्य सब विशेषताएँ गान्धारोदीच्यवा-जैसी है।"[१०२]

महाराज हरिपाल का कथन है—

"इस जाति मे पञ्चम अश है और यह नित्य सम्पूर्ण है। इसका अवशिष्ट लक्षण गान्धारोदीच्यवा जैसा है।"[१०३]

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है—

"मध्यमोदीच्यवा मे पञ्चम अश होता है, नित्य सम्पूर्ण जाति है। अन्य लक्षण गान्धारोदीच्यवा-जैसे जानने चाहिए। मूर्च्छना मध्यमादि है और ताल चञ्चत्पुट है। चतुर्थ अक के ध्रुवा-गान मे इसका विनियोग है। इस जाति मे न्यासस्वर मध्यम है।"[१०४]

मतङ्गकिन्नरी पर मध्यमादि मूर्च्छना स्थापित करने से इसकी स्थिति इस प्रकार होगी—

१०२—मध्यमोदीच्यवायास्तु पञ्चमोऽश प्रकीर्तित ।
शेषो विधिस्तु कर्तव्यो गान्धारोदीच्यवागत ॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ४५०

१०३—तत्राश. पञ्चमो नित्यं साप्तस्वर्य्यञ्च दृश्यते ।
गान्धारोदीच्यवावत् स्यात् शिष्टमस्यास्तु लक्षणम् ॥
—हरिपाल, व० स०, पृ० ४५०

१०४—पञ्चमांशा सदा पूर्णा मध्यमोदीच्यवा मता ।
लक्ष्म शेष विजानीयाद् गान्धारोदीच्यवागतम् ॥
मूर्च्छना मध्यमादि स्यात्तालश्चञ्चत्पुटो मत ।
चतुर्थस्य प्रेक्षणस्य ध्रुवायां विनियोजनम् ॥
अस्या मध्यमोदीच्यवाया मध्यमो न्यास. ।
—स० र०, स्वरा०, अ० स०, पृ० २४८–४९

पर्दे	स्वर
०	म
१	प
२	ध
३	नि
४	स
५	रे
६	ग
७	म
८	प
९	ध
१०	नि
११	स
१२	रे
१३	ग
१४	म
१५	प
१६	ध
१७	नि
१८	स

पञ्चमांश मध्यमोदीच्यवा—चिकारियाँ पञ्चम में मिलाने पर पहले पर्दे से मन्द्र, आठवें से मध्य और पन्द्रहवें से तारस्थान की प्राप्ति होगी। तारस्थानीय रे, ग, म भी अन्तिम पर्दे पर प्राप्त हो जायँगे।

यद्यपि मतङ्ग का लक्षण हमें प्राप्त नही है, परन्तु जिन-जिन जातियों के मतङ्गलक्षण प्राप्त हैं, वे सिद्ध करते हैं कि शार्ङ्गदेव ने जातियों की मूर्च्छनाओं का निर्देश मतङ्ग के अनुसार किया है।

इस जाति मे केवल पञ्चम स्वर अंश होता है, फलतः यदि भरत का यह विधान माना जाय कि मन्द्र अंश से अवरोहगति मे नही जाना चाहिए, तो इस जाति की मूर्च्छना पञ्चमादि रखने से अन्तिम पर्दे पर गान्धार-मध्यम की प्राप्ति करने के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण तीनो स्थान मिल सकते हैं। परन्तु मतङ्ग ने मन्द्रावस्था में न्यासस्वर या मन्द्रगति मे उससे पर स्वर पर अधिक बल दिया है, यहाँ तक कि वे अतिमन्द्र स्थान मे जाने से भी नही हिचकते। प्रस्तुत जाति की मूर्च्छना मध्यमादि निश्चित करने मे अतिमन्द्र न्यास मध्यम प्राप्त करने की चेष्टा कारण है।

मतङ्ग के विधान मे तारस्थान के अधिक-से-अधिक पाँच स्वरो का प्रयोग पाया जाता है और मन्द्रगति में न्यास अथवा मन्द्रगति मे उससे पर मन्द्र की ओर अधिक ध्यान रहता है।

(१५) कार्मारवी

महर्षि भरत का कथन है—

"कार्मारवी के अंश एवं अपन्यास स्वर ऋषभ, पञ्चम, धैवत, निषाद हैं। न्यास स्वर पञ्चम है, सदा सम्पूर्ण जाति है, गान्धार की सङ्गति सभी स्वरो के साथ है।"[१०५] प्रयोग मे अनंश स्वर सदा बली है।[१०६]

१०५—'कार्मारव्यां स्मृता ह्यंशा ऋषभः पञ्चमस्तथा। धैवतश्च निषादश्चाप्यपन्यासस्त एव तु॥ पञ्चमश्च भवेन्न्यासो हीनस्वर्यं न चात्र तु। गान्धारस्य विशेषेण सर्वतो गमनं भवेत्॥'

—भरत०, ब० सं०, पृ० ४५२

महाराज नान्यदेव कहते है—

"जिसमे निपाद, धैवत, पञ्चम, ऋपभ अश होते ह, यही अपन्यास होते है और न्यास स्वर पञ्चम होता है, वह कार्म्मारवी जाति है।"[१०७]

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है—

"कार्म्मारवी मे निपाद, धैवत, ऋपभ और पञ्चम अश होते है। अन्तर मार्ग का आश्रय लेने से अनश स्वर भी वहुल होते है। गान्धार अत्यन्त वहुल है, क्योकि उसकी सगति सब अशस्वरो के साथ भी है (और अनश स्वरों के साथ भी)। चञ्चत्पुट ताल, सोलह कलाएँ और पड्जादि मूर्च्छना है। पञ्चम अङ्क की ध्रुवा मे विनियोग है। इस जाति मे पञ्चम न्यास तथा अंशस्वर अपन्यास है।"[१०८]

मतङ्गकिन्नरी पर पड्जादि मूर्च्छना स्थापित करने से निम्नस्थ स्थिति होगी—

पर्दे	स्वर
०	स
१	रे
२	ग
३	म
४	प
५	ध

पञ्चमांश कार्मारवी—चिकारियाँ पञ्चम मे मिलाने पर चौथे पर्दे से मन्द्र, ग्यारहवे से मध्य और अन्तिम पर्दे पर ध, नि, स, रे भी प्राप्त करने पर तारस्थानीय पाँच स्वरो की प्राप्ति होगी।

धैवतांश कार्मारवी—चिकारियाँ धैवत मे मिलाने पर पाँचवे पर्दे से मध्य और वारहवें पर्दे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। मेरु से चौथे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय पाँच स्वरो की प्राप्ति होगी।

१०६—अनशा वलवन्तस्तु नित्यमेव प्रयोगत ।

—भरत०, कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत, स० र०, स्व०, पृ० २५२

हीनस्वर्यं न चात्र स्यादनंशा वलिनस्तथा ।

—भरत०, का० स०, पृ० ३२९

१०७—अशा निषादधैवतपञ्चमरिपभा भवन्ति यत्रामी ।

अपि चैतेऽपन्यासा न्यासस्थाने च पञ्चमो यस्याम् ॥

—नान्य०, भ० को०, पृ० १३१

१०८—कार्मारव्या भवन्त्यशा निपादरिपधैवता । वहवोऽन्तरमार्गत्वादनशा. परिकीर्तिता ॥

गान्धारोऽत्यन्तवहुलः सर्वाशस्वरसगति.। चञ्चत्पुट पोडशात्र कला. पड्जादि-मूर्च्छना। पञ्चमस्य प्रेक्षणस्य ध्रुवायां विनियोजनम् ॥

अस्यां कार्मारव्यां पञ्चमो न्यास.। अशा एवापन्यासाः।

—सं० र०, स्वरा० अ० सं०, पृ० २५३

६—नि
७—स
८—रे
९—ग
१०—म
११—प
१२—ध
१३—नि
१४—स
१५—रे
१६—ग
१७—म
१८—प

निषादांश कार्मारवी—चिकारियाँ निपाद में मिलाने पर छठे पर्दे से मध्य और तेरहवे पर्दे से, अन्तिम पर्दे पर धैवत भी प्राप्त कर लेने पर, तार स्थान की प्राप्ति होगी। मन्द्रस्थानीय छः स्वर मेरु से पाँचवे पर्दे तक मिल जायँगे।

ऋषभांश कार्मारवी—चिकारियाँ ऋषभ मे मिलाने पर पहले पर्दे से मन्द्र, आठवे से मध्य और पन्द्रहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। तारस्थानीय ध, नि, स भी अन्तिम पर्दे पर प्राप्त हो जायँगे।

(१६) गान्धारपञ्चमी

महर्पि भरत का विधान है—

"गान्धार-पञ्चमी मे अशस्वर पञ्चम होता है, पञ्चम और ऋपभ अपन्यास कहे गये है। गान्धार न्यासस्वर है। इस जाति में पाडव और औडुव रूप नही होता। इसमे 'गान्धारी' और 'पञ्चमी' के समान स्वर-सगति होती है।"[१०९]

दत्तिल का कथन है—

"गान्धारपञ्चमी मे प्रयोक्ताओ को अंशस्वर पञ्चम जानना चाहिए, वह पञ्चम (और) ऋपभ अपन्यास होते है। गान्धार न्यास होता है। गान्धारी और पञ्चमी मे जो सङ्गति इत्यादि बतायी गयी है, वह इसमे भी जाननी चाहिए। किन्तु यह जाति नित्य सम्पूर्ण होती है।"[११०]

१०९–अथ गान्धारपञ्चम्या. पञ्चमा (मो)ऽश प्रकीर्तितः।
पञ्चमञ्च (श्च) र्पभश्चैव अपन्यासौ प्रकीर्तितौ॥
गान्धारोऽत्र भवेन्न्यासो हीनस्वर्यं न चेष्यते।
पञ्चम्यास्त्वथ गान्धार्याः सञ्चारश्च विधीयते॥–भरत०,का० सं०, पृ० ३२९

११०–ज्ञेयो गान्धारपञ्चम्यां पञ्चमोंऽशः प्रयोक्तृभिः।
सर्पभः स्यादपन्यासो न्यासो गान्धार इष्यते॥

आचार्य शार्ङ्गदेव कहते हैं—

"गान्धारपञ्चमी मे अंशस्वर पञ्चम है, इस जाति में भी गान्धारी और पञ्चमी के समान बहुल स्वरो से (न्यास और अशस्वरो से अन्य स्वरो की तथा ऋपभ-मध्यम की) सगति करनी चाहिए। इस जाति मे चञ्चत्पुट ताल, सोलह कलाएँ और गान्धारादि मूर्च्छना है। चतुर्थ अंक से सम्बद्ध ध्रुवागान में विनियोग है। इस जाति मे गान्धार न्यास है। ऋषभ-पञ्चम अपन्यास है।"[१११]

मतङ्गकिन्नरी पर गान्धारादि मूर्च्छना स्थापित करने से स्थिति यो होगी—

पर्दे	स्वर
०	ग
१	म
२	प
३	ध
४	नि
५	स
६	रे
७	ग
८	म
९	प
१०	ध
११	नि
१२	स

चिकारियाँ गान्धार मे मिलाने पर मेरु से मन्द्र, सातवे पर्दे से मध्य और चौदहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। तारस्थानीय षड्ज और ऋषभ की प्राप्ति भी अन्तिम पर्दे पर की जा सकती है।

गान्धार्य्यामिथ पञ्चम्यां यत्सञ्चारादि कीर्तितम्।
तदस्यामपि विज्ञेय किन्तु पूर्णस्वरा सदा॥

—दत्तिल, भ० को०, पृ० १७३

१११—अशो गान्धारपञ्चम्या पञ्चम सङ्गति. पुन।
कर्तव्यात्रापि गान्धारीपञ्चम्योरिव सूरिभिः॥
चञ्चत्पुट पोडशात्र कला गादिश्च मूर्च्छना।
तुर्य्यप्रेक्षणसम्बन्धिध्रुवागाने नियोजनम्॥
अस्या गान्धारपञ्चम्यां गान्धारो न्यास.। ऋपभपञ्चमावपन्यासौ।

—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० २५६

१३—रे
१४—ग
१५—म
१६—प
१७—ध
१८—नि

(१७) आन्ध्री

महर्षि भरत का कथन है—

"आन्ध्री मे ऋषभ, पञ्चम, गान्धार, निपाद अंश होते है, वही अपन्यास होते है। न्यासस्वर गान्धार है, षड्ज के लोप से षाडवावस्था बनती है, गान्धार और ऋषभ की परस्पर सङ्गति है और धैवत एव निषाद की। अंशस्वर के पश्चात् पर्यायांशों का प्रयोग करते हुए न्यासस्वर तक सचार है।"[112]

महाराज हरिपाल कहते है—

"इस जाति में षड्ज, मध्यम और धैवत के अतिरिक्त अन्य स्वर अश होते है। षड्ज के लोप से षाडव रूप बनता है। न्यासस्वर गान्धार है।"[113]

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है—

"आन्ध्री में नि, रे, ग, प अंश है, रि-ग और नि-ध की परस्पर सगति है। अंशानुक्रम से न्यासस्वर तक जाना चाहिए। मूर्च्छना मध्यमादि है, कला, काल, विनियोग इत्यादि गान्धारपञ्चमी के समान है। इस आन्ध्री जाति में गान्धार न्यासस्वर है और अंशस्वर ही अपन्यास है।"[114]

११२—चत्वारोऽशा भवन्त्यान्ध्र्यामपन्यासास्त एव तु।
गान्धारश्च भवेन्न्यासः षड्जोपेतं च षाडवम्॥
गान्धारर्षभयोश्चापि सञ्चारस्तु परस्परम्।
सप्तमस्य च षड्जस्य (षष्ठस्य, का० स०) न्यासो गत्यनुपूर्वशः॥
—भरत०, ब० स०, पृ० ४५१

११३—आन्ध्री निरूप्यतेऽथास्यां षड्जमध्यमधैवतैः।
हीनाः स्वरा इहाशा. स्युः षाडव षड्जवर्जित।
न्यासो गान्धार एव स्यादान्ध्रजातिरुदाहृता॥
—हरिपाल, भ० को०, पृ० ५२

११४—आन्ध्र्यामंशा निरिगपा रिगयोर्निधयोस्तथा।
सगतिर्न्यासपर्यन्तमंशानुक्रमतो --व्रजेत्॥

मतङ्गकिन्नरी पर मध्यमादि मूर्च्छना स्थापित करने से स्थिति निम्नोक्त होगी—

पर्दे	स्वर
०	म
१	प
२	ध
३	नि
४	स
५	रे
६	ग
७	म
८	प
९	ध
१०	नि
११	स
१२	रे
१३	ग
१४	म
१५	प
१६	ध
१७	नि
१८	स

निषादांश आन्ध्री—चिकारियाँ निषाद मे मिलाने पर तीसरे पर्दे से मन्द्र, दसवें से मध्य और सत्रहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। तारस्थानीय रे, ग, म, प भी अन्तिम पर्दे पर मिल जायँगे।

ऋषभांश आन्ध्री—चिकारियाँ ऋषभ मे मिलाने पर पाँचवे पर्दे से मध्य और बारहवे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। मेरु से चौथे पर्दे तक मन्द्रस्थानीय पाँच स्वर मिलेगे।

गान्धारांश आन्ध्री—चिकारियाँ गान्धार में मिलाने पर छठे पर्दे से मध्य और तेरहवे पर्दे से तार स्थान की प्राप्ति होगी। अन्तिम पर्दे पर तारस्थानीय ऋषभ भी मिल सकता है। मेरु से पाँचवे पर्दे तक मन्द्र-स्थानीय छ: स्वर भी मिलेगे।

पञ्चमांश आन्ध्री—चिकारियाँ पञ्चम मे मिलाने पर पहले पर्दे से मन्द्र, आठवे से मध्य और पन्द्रहवें से तार स्थान की प्राप्ति होगी। तार-स्थानीय रे, ग, म भी अन्तिम पर्दे पर मिल जायँगे।

(१८) नन्दयन्ती

महर्षि भरत का विधान है—

"नन्दयन्ती मे पञ्चम ही सदा अंश होता है। मध्यम एव पञ्चम अपन्यास होते है। षड्जहीन अवस्था षाडव होती है, वही षड्ज लघनीय है। इस जाति में स्वर-

---

षाडवं षड्जलोपेन मध्यमादिस्तु मूर्च्छना।
पूर्ववत्तु कलाकालविनियोगाः प्रकीर्तिताः॥
अस्यामान्ध्र्या गान्धारो न्यासः। अंशा एवापन्यासाः।

—स० र०, अ० सं०, स्वरा० २६०-२६१

सञ्चार आन्ध्री के समान है, ऋषभ का सदा लंघन (बाहुल्य ?) है। प्रयोक्ताओ ने उस ऋषभ तक मन्द्रगति बतायी है।"[११५]

तारगति षड्ज का अतिक्रमण कभी नही करती। गान्धार स्वर इस जाति में ग्रह और न्यास रखना चाहिए।[११६]

टिप्पणी—नाट्यशास्त्र के मुद्रित संस्करणो के पाठानुसार इसमें ऋषभ का लंघन होना चाहिए, परन्तु ये पाठ निश्चितरूपेण लिपिको के प्रमाद का परिणाम है। इस जाति मे ऋषभ का बाहुल्य ही सर्वसम्मत है। कल्लिनाथ के समक्ष नाट्यशास्त्र का जो पाठ था उसमे भी ऋषभ का बाहुल्य ही भरतोक्त बताया गया है।[११७]

दत्तिल का कथन है—

"नन्दयन्ती मे मध्यम और पञ्चम अपन्यास है, ग्रह और न्यासस्वर गान्धार है, अंशस्वर पञ्चम है। षाडवावस्था आन्ध्री के समान जाननी चाहिए। इस जाति में औडुव अवस्था नही होती। इसमे मन्द्र ऋषभ तक सञ्चार होता है, वह कही लंघनीय भी है।"[११८]

दत्तिल के मत मे ऋषभ कही लंघनीय भी है।

आचार्य शार्ङ्गदेव कहते है—

"नन्दयन्ती मे पञ्चम अशस्वर और गान्धार ग्रहस्वर है। कुछ गीतमर्मज्ञ इसमे पञ्चम को भी ग्रहस्वर कहते है। इसमे मन्द्र ऋषभ का बाहुल्य है और षड्ज

११५—नन्दयन्त्या भवन्त्यं (त्य ?) श पञ्चमो नित्यमेव तु।
स्यातामस्यामपन्यासौ मध्यम. पञ्चमस्तथा ॥
षाडव षड्जहीन तु लंघनीय. स एव तु।
आन्ध्रीवत् सचरो नित्यमृषभस्य च लंघनम्।
तत्र मन्द्रगति प्रोक्ता नित्यं गानप्रयोक्तृभि. ॥—भरत०, का० सं०, पृ० ३२९

११६—तारगत्या तु षड्ज स्यात्कदाचिन्नातिवर्तते।
गान्धारश्च ग्रह कार्यस्तथा न्यासश्च नित्यश ॥—भरत०, व० स०, पृ० ४५२

११७—बाहुल्यमृषभस्यात्र तच्च मन्द्रगतं स्मृतम्।
—भरत०, कल्लिनाथोद्धृत, स० र०, स्वरा०, पृ० २६७

११८—नन्दयन्त्यामपन्यासौ ज्ञेयौ मध्यमपञ्चमौ।
ग्रहो न्यासश्च गान्धार पञ्चमोंऽश. प्रकीर्तित ॥
आन्ध्रीवत् षाडव ज्ञेयमनौडुवितमेव च।
स्यान्मन्द्रर्षभसञ्चारो लङ्घनीयश्च स क्वचित् ॥ —दत्तिल, भ० को०, पृ० ३०३

के लोप से पाडव प्रकार बनता है। मूर्च्छना 'हृष्यका' है। ताल आन्ध्री के समान और कलाएँ उस जाति से द्विगुण अर्थात् बत्तीस हैं। प्रथम अक के ध्रुवागान मे विनियोग है। इस नन्दयन्ती मे न्यासस्वर गान्धार है तथा मध्यम-पञ्चम अपन्यास है।"[११९]

मतङ्ग के प्राप्त जातिलक्षणो मे हम यह देख चुके है कि वे जातियो की मूर्च्छनाएँ बतलाते समय उनके लिए 'उत्तरमन्द्रा', 'सौवीरी' जैसी पारिभाषिक संज्ञाओ का प्रयोग न करके 'पड्जादि' और 'मध्यमादि' जैसी स्वरारम्भ सज्ञाओ का प्रयोग करते है। आचार्य शार्ङ्गदेव ने भी इसी पद्धति का अवलम्बन किया है, केवल नन्दयन्ती के लक्षण मे वे 'हृष्यका' शब्द का प्रयोग करते है। महर्षि भरत की मध्यमग्रामीय पञ्चमादि मूर्च्छना 'हृष्यका' है और मतङ्ग की मध्यमग्रामीय निपादादि 'द्वादशस्वर' मूर्च्छना हृष्यका है। इस जातिविशेष मे आचार्य शार्ङ्गदेव के द्वारा 'हृष्यका' शब्द का प्रयोग बतलाता है कि वे इस जाति की मूर्च्छना पञ्चमादि ही मानते है, क्योकि मूर्च्छना-लक्षण मे वे द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद की चर्चा नही करते और उनकी अपनी 'हृष्यका' पञ्चमादि है।

महर्षि भरत के अनुसार इस जाति के तारस्थान मे प, ध, नि, स ये चार स्वर ही प्रयोज्य है, क्योकि वे तारस्थान मे पड्ज से आगे जाने का निपेध करते है, परन्तु 'रुद्रट' इस जाति मे भी प, ध, नि, स, रे, ग, म सातो स्वरो का प्रयोग विहित मानते है। आचार्य अभिनवगुप्त तथा कुम्भ ने मतङ्ग के द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद का खण्डन करते हुए, इस जाति मे कम से कम पन्द्रह स्वरो (मन्द्र ऋपभ, गान्धार, मध्यम, मध्यस्थानीय पञ्चम, धैवत, निपाद, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम और तारस्थानीय प, ध, नि, स, रे) का प्रयोग आवश्यक कहा है। आचार्य शार्ङ्गदेव ने भी इस जाति मे तार ऋपभ का प्रयोग किया है।

११९—नन्दयन्त्या पञ्चमोऽशो गान्धारस्तु ग्रह स्मृत।
कैश्चित्तु पञ्चमः प्रोक्तो ग्रहोऽस्यां गीतवेदिभि.॥
मन्द्रर्पभस्य वाहुल्य पाडव पड्जलोपत.।
हृष्यका मूर्च्छना ताल. पूर्वावद् द्विगुणा कलाः॥
विनियोगो ध्रुवागाने प्रथमप्रेक्षणे भवेत्।
अस्यां नन्दयन्त्यां गान्धारो न्यास। मध्यमपञ्चमावपन्यासौ।
—स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० २६४

मतङ्गकिन्नरी पर पञ्चमादि 'हृष्यका' की स्थापना करने पर स्थिति यों होगी—

पर्दे	स्वर
०	प
१	ध
२	नि
३	स
४	रे
५	ग
६	म
७	प
८	ध
९	नि
१०	स
११	रे
१२	ग
१३	म
१४	प
१५	ध
१६	नि
१७	स
१८	रे

पंचमांश नन्दयन्ती—चिकारियाँ पञ्चम में मिलाने पर मेरु से छठे पर्दे तक भरतोक्त पूर्ण मन्द्र स्थान मिल जायगा। जो लोग न्यासस्वर गान्धार या मन्द्रगति मे उससे पर ऋषभ तक ही जाना चाहते है, उन्हे भी अभीष्ट स्वर मिल जायँगे।

सातवे पर्दे से मध्यस्थान की प्राप्ति होगी।

तारस्थान मे चतु स्वरावधि-वादियो को तारस्थानीय चार प, ध, नि, स चौदहवे, पन्द्रहवे, सोलहवें, सत्रहवे पर्दे पर मिल जायँगे। रुद्रट के अनुसार सम्पूर्ण तार स्थान प्राप्त करने के इच्छुक अन्तिम पर्दे पर गान्धार और मध्यम भी प्राप्त कर सकते है।

अभिनवगुप्त, शार्ङ्गदेव और कुम्भ को अनिवार्य रूप मे अभिमत तार ऋषभ अन्तिम पर्दे पर स्वत. मिलेगा।

सामान्यत. जातियो मे अशस्वर ही ग्रहस्वर होता है, परन्तु इस जाति मे अशस्वर के अतिरिक्त गान्धार को ग्रह मानना सामान्य नियम का अपवाद है।

आचार्य शार्ङ्गदेव ने यद्यपि ऐसे मत का उल्लेख किया है, जिसमे पञ्चम को भी इस जाति में ग्रह माना जाता है, परन्तु इस जाति के प्रस्तार मे उन्हे भी गान्धार का ग्रहत्व अभिमत है।

कुम्भ ने मतङ्गकिन्नरी का जो लक्षण कहा है, उसमे चौदह या अठारह सारिकाएँ आती है। चौदह सारिकाओवाली किन्नरी में तीनो सम्पूर्ण स्थान प्राप्त होने कठिन है। मेरु से चौदहवे पर्दे तक पन्द्रह ध्वनियाँ तथा चौदहवे पर मीड द्वारा और चार तारस्थानीय ध्वनियाँ सरलतापूर्वक मिल सकती है। इस प्रकार चौदह सारिकाओवाली वीणा पर उन्नीस स्वरो की प्राप्ति होती है।

मतङ्ग एव शार्ङ्गदेव तीनो सम्पूर्ण स्थानो के प्रयोग पर बल नही देते। मतङ्ग तो बारह स्वरो को जाति के रूप की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त मानते है और शार्ङ्गदेव को मन्द्र एव तार स्थानो मे कामचार (यथारुचि सचार) पर आपत्ति नही। कुछ जातियो के प्रस्तारो मे शार्ङ्गदेव ने तार स्थान का प्रयोग किया ही नही है।

चतुर्थ अध्याय

जातियों के प्रस्तार

भरत इत्यादि के जाति-लक्षणो का ज्ञान हमें हो चुका है । उन लक्षणो के उदाहरण जातियो के वे प्रस्तार है, जो उन्होने सङ्गीतरत्नाकर मे दिये है । ये प्रस्तार हमे जातियो के 'वर्णो,' (स्वरसन्निवेश, गान-वादनक्रिया) का ज्ञान कराते है । इन प्रस्तारो के आधार पर हम जातियो के आलाप और विभिन्न अशस्वरो को 'स्थायी' मानने के पश्चात् प्रापणीय रूपो का ज्ञान प्राप्त कर सकते है ।

नाट्यशास्त्र मे 'आरम्भ' शब्द का प्रयोग है, आचार्य अभिनवगुप्त ने 'आरम्भ' शब्द को 'आलाप' का पर्यायवाची कहा है ।[1] जातियो मे 'करणो' का प्रयोग महर्षि भरत को अभिमत है ।[2] 'करण' के विषय मे यथास्थान लिखा जायगा । साधारणतया इन्हे मध्यलय इत्यादि में आलाप का प्रकार समझा जाना चाहिए ।

जाति-लक्षणो मे नाटक के विभिन्न अको की ध्रुवाओ मे जातियो का विनियोग नाटकाश्रित है । नाटक के अतिरिक्त भी जातियों का गान 'समाजो' या 'सभाओ' मे प्रयोज्य है । जातियो का प्रयोग शकरस्तुति मे भी विहित है ।[3]

१–पूर्व रञ्जकवर्गढौकन तत एव तद्गीतस्योपरञ्जकस्य प्राधान्यम् । तस्य च विम्वभूत शारीर शारीरस्वराणा मूलत्वात् । तदनुसन्धानायालापाख्य आरम्भ. ।

—आचार्य अभिनवगुप्त, अभिनवभारती, प्र० ख०, द्वि० गा० स०, पृ० २१३

परिगीतक्रियारम्भ आरम्भ इति कीर्तित. ।

—भरत०, द्वि० गा० सं०, प्र० ख०, पृ० २१३

२–एवमेता वुधैर्ज्ञेया जातयो दशलक्षणा ।
स्वै. स्वैश्च करणैर्योज्या पदेष्वभिनयैरपि ॥

—भरत०, व० स०, पृ० ४५३

३–ब्रह्मप्रोक्तपदै. सम्यक् प्रयुक्ता. शंकरस्तुतौ ।

—आचार्य शार्ङ्गदेव, स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ०२७३

जातियो के प्रस्तार में जो गेय 'पद' निर्दिष्ट है, उन्हे 'ब्रह्म-प्रोक्त पद' कहा गया है।[४] उन सभी मे शंकर की स्तुति है, फलतः वे किसी नाटकविशेष का अग नही और शंकर-स्तुति मे जाति-समाश्रित पदो के उदाहरण है। इन ब्रह्मप्रोक्त पदो के अतिरिक्त अन्य 'पद' भी गाये जा सकते हैं।[५]

ब्रह्मप्रोक्त पदो की भाषा लौकिक सस्कृत है, उसमे अपाणिनीय प्रयोग नही है, उनका विषय शकरस्तुति है। वे नाटको मे प्रयोज्य ध्रुवाओ के उदाहरण न होकर स्वतन्त्र प्रयोग के उदाहरण हैं।

आगम-पुराण-पद्धति मे सगीत का आदिम स्रोत भगवान् शकर है, ब्रह्मा ने उन्ही से इस विद्या का ज्ञान प्राप्त किया। ये ब्रह्मप्रोक्त पद सम्भवतः शैव-परम्परा में प्रचलित पद है, जो भगवान् महादेव की महत्ता के प्रतिष्ठापक है।

(१) षाड्जी-प्रस्तार

षाड्जी के प्रस्तुत प्रस्तार मे अंश एवं ग्रहस्वर षड्ज है। इसी स्वर से प्रस्तार का आरम्भ हुआ है। न्यासस्वर षड्ज होने के कारण प्रस्तार की समाप्ति भी षड्ज पर हुई है। यद्यपि इस जाति की विकृत अवस्थाओ मे गान्धार एव पञ्चम स्वर भी अपन्यास हो सकते है, तथापि निम्न प्रस्तार षाड्जी के शुद्ध रूप का उदाहरण है। फलत. इसमें षड्ज अर्थात् अंशस्वर ही अपन्यास स्वर है, इसी लिए पद के मध्य की समाप्ति (छठी पक्ति के अन्त मे) षड्ज पर हुई है।

निम्नलिखित प्रस्तारो मे एक-एक पक्ति एक-एक तालभाग का निदर्शन करती है। एक से बत्तीस तक या एक से अड़तालीस सख्याएँ ताल एव गीत मे प्रयुक्त तालशास्त्रीय 'लघु' (पॉच लघु अक्षरो के उच्चारण-काल) परिभाषा को प्रकट करती है। संख्याओ के ऊपर लिखे हुए संकेत तालक्रिया के द्योतक हैं। सभी प्रस्तारो मे 'लघु' का परिमाण यही है और वे दक्षिण मार्ग मे निबद्ध है। इन सब परिभाषाओ का स्पष्टीकरण यथा-स्थान किया जायगा।

४—'ब्रह्मणा चतुर्मुखेन प्रोक्तैर्ग्रथितैः पदैः 'तं भवललाट—' इत्यादिभि.'
—आचार्य कल्लिनाथ टीका, स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० २७४

५—स्वातन्त्र्येणापि ब्रह्मप्रोक्तपदैरन्यैर्वा शकरस्तुतावेव विनियोगः समुच्चीयते।
—आचार्य कल्लिनाथ टीका, सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० १९८

षाड्जी के निम्नलिखित प्रस्तार मे अल्पत्व-बहुत्व का परिज्ञान प्रयुक्त स्वरो की संख्या से होगा।

षड्ज	(ग्रह, अश, न्यास)	३६
ऋषभ	(अनश, अल्प)	१२
गान्धार	(अश से सगत, बहुल)	२०
मध्यम		८
पञ्चम		८
धैवत	(अश से सङ्गत)	१६
निषाद	(अनश, अल्प)	१२

इस जाति मे धैवत और गान्धार की सङ्गति षड्ज के साथ विशेष रूप से विहित है, फलतः मध्यम एव पञ्चम पर्यायांश होने पर भी अधिक प्रयुक्त नही हुए है । प्रस्तुत प्रस्तार 'पञ्चपाणि' ताल की दो आवृत्तियो में पूर्ण हुआ है।

पद

त भवललाटनयनाम्बुजाधिकं
नगसूनुप्रणयकेलिसमुद्भवम् ।
सरसकृततिलकपङ्कानुलेपन
प्रणमामि कामदेहेन्धनानलम् ॥

१	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सा	सा	सा	पा	निध	पा	धनि
	पद	त	–	भ	व	ल	ला	–	ट
२	तालक्रिया	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	गम	गा	गा	सा	रिग	धस	धा
	पद	न	य	ना	–	बु	जा	–	धि
३	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	रिग	सा	रे	गा	सा	सा	सा	सा
	पद	कं	–	–	–	–	–	–	–

४	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	धा	नी	निस	निध	पा	सा	सा
	पद	न	ग	सू	—	नु	प्र	ण	य
५	तालक्रिया	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	नी	धा	पा	धनि	रे	गा	सा	गा
	पद	के	—	लि	—	स	मु	—	द्भ
६	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	सा	धां	धंनि	पां	सा	सा	सा	सा
	पद	वं	—	—	—	—	—	—	—
७	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सा	गा	सा	म	प	मा	मा
	पद	स	र	स	क्र	त	ति	ल	क
८	तालक्रिया	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	सा	गा	मा	धनि	निध	पा	गा	रेग
	पद	पं	—	—	का	नु	ले	प	—
९	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	गा	गा	गा	सा	सा	सा	सा
	पद	न	—	—	—	—	—	—	—
१०	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	सा	रे	गरे	सा	मा	मा	मा
	पद	प्र	ण	मा	—	मि	का	—	म

११	तालक्रिया	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	धा	नी	पा	धनि	रे	गा	रे	स
	पद	दे	—	हे	—	घ	ना	न	—
१२	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	रिग	सा	रे	गा	सा	सा	सा	सा
	पद	ल	—	—	—	—	—	—	—

प्रस्तुत प्रस्तारो मे मन्द्र स्वरो के ऊपर बिन्दु तथा तार स्वरो के ऊपर खडी रेखा है। मध्यस्थानीय स्वर चिह्नहीन है।*

षाड्जी के इस प्रस्तार मे 'पां, धां, नि, सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा' इन ग्यारह स्वरो का उपयोग हैं। इस जाति मे प्रयुक्त मन्द्र पञ्चम षाड्जी जाति की शुद्धावस्था मे न्यास या अपन्यास स्वर नही। पञ्चम विकृतावस्था (पञ्चमांश अवस्था) मे अपन्यास हो सकता है, फलत प्रस्तुत प्रस्तार की मन्द्रगति 'कामचार' का उदाहरण है। इसी प्रकार तारस्थान मे केवल अशस्वर षड्ज का प्रयोग भी कामचार का उदाहरण है, क्योकि महर्षि भरत ने तारस्थान में अंशस्वर से चतुर्थ, पञ्चम अथवा सप्तम स्वर को तार गति की सीमा माना है। मतङ्ग ने षाड्जी जाति की तारस्थानीय गति पञ्चस्वर पर मानी है।

अठारह सारिकाओवाली किन्नरी पर धैवतादि मूर्च्छना स्थापित करने के पश्चात् उपर्युक्त ग्यारह स्वर छठे पर्दे से सोलहवें पर्दे तक मिल जायँगे। चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर अन्तिम दो स्वर चौदहवें पर्दे पर मीड द्वारा मिलेंगे।

(२) आर्षभी-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार ऋषभाश शुद्ध आर्षभी का उदाहरण है। ऋषभ स्वर ग्रह, न्यास एवं अपन्यास होने के कारण उसकी स्थिति प्रस्तार के आरम्भ, अन्त तथा मध्य (चतुर्थ

---

* ....मन्द्रो विन्दुशिरा भवेत्।
ऊर्ध्वरेखाशिरास्तारो लिपौ........॥
—सं० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० १५३

तालभाग के अन्त) में है। प्रस्तुत प्रस्तार, बत्तीस लघुवाले चञ्चत्पुट ताल की दो आवृत्तियो में पूर्ण हुआ है। इसमें आठ कलाएँ अर्थात् तालभाग है।

स्वर-संख्या निम्नस्थ है—

षड्ज	(लोप्य, षाडवकारी, अनंश)	१२
ऋषभ	(अंश, ग्रह, न्यास)	३०
गान्धार	(संगतिकारक)	१६
मध्यम	(अनंश)	१२
पञ्चम	(लोप्य, अनंश, औडुवकारी)	६
धैवत	(अंश-संवादी)	१०
निषाद	(धैवत-संगतिकारक)	६

पद

गुणलोचनाधिकमनन्तममरमजरमजेयम् ।
प्रणमामि दिव्यमणिदर्पणामलनिकेतं भवममेयम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	रे	गा	सा	रिग	मा	रिम	गा	रिरि
	पद	गु	ण	लो	—	च	ना	—	धि
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	रे	निध	निध	गा	रिम	मा	पनि
	पद	क	म	न	—	त	म	म	र
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	धा	नी	धा	पा	पा	सा	गा
	पद	म	ज	र	म	—	—	क्ष	य
४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	धनि	रे	गरि	सध	गरि	रे	रे
	पद	म	जे	—	—	—	—	य	—

५ ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
स्वर	रे	मा	गरि	सधं	सस	रिस	रिग	मम
पद	प्र	ण	—	मा	—	—	मि	दिव्य

६ ताल	आ०		ता०		वि०		ता०	
लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
स्वर	निध	पा	रे	रे	रिप	गरि	सध	सा
पद	म	णि	द	—	र्प	णा	—	म

७ ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
स्वर	रिस	रिस	रिग	रिग	मा	मा	मा	गरि
पद	ल	नि	के	—	—	—	त	—

८ ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
स्वर	पा	नी	रे	म	गरि	सधं	गरि	गरि
पद	भ	व	म	मे	—	—	—	यम्

प्रस्तुत प्रस्तार मे 'धं, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि' नौ स्वरो का उपयोग है। मन्द्रतम प्रयुक्त स्वर मन्द्र धैवत धैवतांश अवस्था मे अपन्यास होता है। वह प्रस्तुत प्रस्तार मे अशस्वर का संवादी है। तारस्थान का सर्वथा परित्याग कामचार का परिणाम है।

किन्नरी पर पञ्चमादि मूर्च्छना स्थापित करने से ये नौ स्वर दूसरे पर्दे से नवे तक मिल जायँगे। अठारह पर्दोवाली किन्नरी पर आठवे पर्दे से सोलहवे पर्दे तक भी ये मिलेगे।

(३) गान्धारी-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार गान्धारांश शुद्ध गान्धारी का उदाहरण है। ग्रह, न्यास एवं अपन्यास स्वर गान्धार प्रस्तार के आदि, अन्त एव मध्य (आठवे तालभाग के अन्त) में है। चञ्चत्पुट ताल की चार आवृत्तियों अर्थात् सोलह कलाओं मे इसकी पूर्ति हुई है।

स्वरसंख्या निम्नस्थ है—

षड्ज	(पर्यायांश)	१३
ऋषभ	(लोप्य, षाडवकारी)	७
गान्धार	(अंश, ग्रह, न्यास, अपन्यास)	५३
मध्यम	(पर्यायांश)	२४
पञ्चम	(पर्यायांश)	२५
धैवत	(लोप्य, औडुवकारी)	१५
निषाद	(पर्यायांश, अंशसंवादी)	३२

पद

एतं रजनिवधूमुखविभ्रमदं निशामय वरोरु
तव मुखविलासवपुश्चारुममलमृदुकिरण ममृतभवम् ।
रजतगिरिशिखरमणिशकलशंखवरयुवतिदन्त पंक्तिनिभं
प्रणमामि प्रणयरतिकलहरवनुद शशिनम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	गा	गा	सा	नी	सा	गा	गा	गा
	पद	ए	—	—	—	तं	—	—	—
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	गा	गम	पा	पा	धप	मा	निध	निस
	पद	र	ज	नि	व	धू	—	मु	ख
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	निध	पनि	मा	मपरि	गा	गा	गा	गा
	पद	वि.	—	—	भ्र	म	—	दं	—
४	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२

	स्वर	गा	गम	पा	पा	वप	मा	निध	निस
	पद	नि	शा	म	य	व	रो	–	रु
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	निध	पनि	मा	मपरि	गा	गा	मा	सा
	पद	त	व	मु	ख	वि	ला	–	स
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	गा	सा	गा	गा	गा	गम	गा	गा
	पद	व	पुश्	चा	रु	–	म	म	ल
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	गम	पा	पा	धप	मा	निध	निस
	पद	मृ	दु	कि	र	ण	–	–	–
८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	निध	पनि	मा	मपरि	गा	गा	गा	गा
	पद	म	मृ	त	भ	व	–	–	–
९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	रे	गा	मा	पध	रे	गा	सा	सा
	पद	र	ज	त	गि	रि	शि	ख	र
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	पद	म	णि	श	क	ल	शं	–	ख
११	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४

	स्वर	गा	गम	पा	पा	धप	मा	निध	निस
	पद	व	र	यु	व	ति	द	–	त
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	निध	पनि	मा	मपरि	गा	गा	गा	गा
	पद	पं	–	क्ति	नि	भं	–	–	–
१३	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	नी	नी	पा	नी	गा	मा	गा	सा
	पद	प्र	ण	मा	–	मि	प्र	ण	य
१४	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	गा	सा	गा	गा	गा	गम	गा	गा
	पद	र	ति	क	ल	ह	र	व	नु
१५	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	पा	मा	मा	निध	निस	निध	पनि
	पद	दं	–	–	–	–	–	–	–
१६	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	परिग	गा	गा	गा	गा	गा	गा
	पद	श	शि	–	–	नं	–	–	–

इस प्रस्तार में 'नि, सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा' इन नौ स्वरो का उपयोग है। मन्द्रतम प्रयुक्त स्वर अंशस्वर गान्धार का संवादी है, परन्तु न्यास या अपन्यास स्वर नही। तारस्थान में भी कामचार है।

चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर धैवतादि मूर्च्छना स्थापित करने से उपर्युक्त नौ स्वर पहले पर्दे से नवे पर्दे तक मिलेंगे, अठारह पर्दोवाली किन्नरी पर आठवे से सोलहवें पर्दे तक भी मिलेंगे।

(४) मध्यमा-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार मध्यमांश शुद्ध मध्यमा जाति का उदाहरण है। ग्रह, न्यास और अपन्यास स्वर मध्यम होने के कारण प्रस्तार के आदि, अन्त, मध्य (चौथे तालभाग के अन्त) मे मध्यम का प्रयोग है। प्रस्तुत प्रस्तार चञ्चत्पुट ताल की दो आवृत्तियो अर्थात् बत्तीस लघुओ मे सम्पन्न हुआ है।

स्वर-सख्या निम्नस्थ है—

षड्ज	(पर्यायाश)	९
ऋषभ	(पर्यायाश)	७
गान्धार	(लोप्य, षाडवकारी)	४
मध्यम	(अश, ग्रह, न्यास)	२७
पञ्चम	(पर्यायाश)	१२
धैवत	(पर्यायाश)	८
निषाद	(षाडवकारी)	१२

टिप्पणी—इस प्रस्तार मे बहुल प्रयोज्य षड्ज नौ बार और अल्प निषाद बारह बार प्रयुक्त हुआ है। परन्तु आलाप में ऐसा नही होगा।

पद

पातु भवमूर्धजाननकिरीटमणिदर्पणम् ।
गौरीकरपल्लवाङ्गुलिसुतेजितं सुकिरणम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		शु०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मा	मा	मा	मा	पा	धनि	नी	धप
	पद	पा	—	—	तु	भ	व	मू	—
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	पम	मा	सा	मा	गा	रे	रे
	पद	र्ध	जा	—	—	न	न	—	—
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४

	स्वर	पा	मा	रिम	गम	मा	मा	मा	मा
	पद	कि	री	ट	–	–	–	–	–
४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	निध	निस	निध	पम	पध	मा	मा
	पद	म	णि	द	–	पं	–	णं	–
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	नी	नी	रे	रे	नी	रे	रे	पा
	पद	गौं	–	री	–	क	र	प	–
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	मप	मा	मा	सा	सा	सा	सा
	पद	ल्ल	वा	–	–	गु	लि	–	सु
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	नि	सा	गा	धप	मा	धनि	सा
	पद	ते	–	–	–	–	–	जि	त
८	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	पा	सा	पा	निधप	मा	मा	मा	मा
	पद	सु	कि	र	–	ण	–	–	–

इस प्रस्तार मे 'नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म' बारह स्वरो का उपयोग है। मन्द्रावधि एव तारावधि मे कामचार है। मन्द्रतम प्रयुक्त निषाद से अश स्वर मध्यम का षड्ज-मध्यम-भाव है, परन्तु निषाद इस जाति में 'अनश' स्वर है।

ऋषभादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह पर्दोवाली किन्नरी पाँचवे पर्दे से सोलहवे पर्दे तक हमें ये स्वर देगी। चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर अन्तिम दो स्वर हमे चौदहवें पर्दे पर मीड द्वारा मिलेगे।

(५) पञ्चमी-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार पञ्चमाश शुद्ध पञ्चमी का उदाहरण है। ग्रह, अपन्यास और न्यास होने के कारण पञ्चम प्रस्तुत प्रस्तार के आदि, मध्य और अन्त मे है। यह प्रस्तार चंचत्पुट ताल की दो आवृत्तियो में निबद्ध है।

स्वर-सख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(अल्प)	८
ऋषभ	(पर्यायाश)	६
गान्धार	(षाडवकारी स्वर)	४
मध्यम	(अल्प)	८
पञ्चम	(अश, ग्रह, न्यास)	२०
धैवत	(अनंश)	७
निषाद	(औडुवकारी)	१५

पद

हरमूर्धजानन महेशममरपतिबाहुस्तम्भनमनन्तम्, ।
त प्रणमामि पुरपमुखपद्मलक्ष्मीहरमम्बिकापतिमजेयम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		रा०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	धनि	नी	नी	मा	नी	मा	पा
	पद	ह	र	मू	–	र्ध	जा	–	न
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१२	१४	१५	१६
	स्वर	गा	गा	सा	सा	मां	मा	पा	पां
	पद	नं	म	हे	—	श	म	म	र
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	पा	पां	धां	नी	नी	नी	गा	सा
	पद	प	ति	वा	।	हु	स्तं	–	भ

४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	पा	मा	धा	नी	निध	पा	पा	पा
	पद	न	म	नं	—	तं	—	—	—
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	पा	रे	रे	रे	रे	रे	रे
	पद	प्र	ण	मा	—	मि	पु	रु	प
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मां	निंग	सा	सध	नी	नी	नी	नी
	पद	मु	ख	प	द्म	—	ल	—	क्ष्मी
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सा	सा	सा	मा	पा	पा	पा	पा
	पद	ह	र	म	—	वि	का	—	प
८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	मा	धा	नी	पा	पा	पा	पा
	पद	ति	म	जे	—	य	—	—	—

इस प्रस्तार मे 'म, प, ध, निं, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे' इन तेरह स्वरों का उपयोग है। मन्द्रतम प्रयुक्त स्वर मध्यम 'अल्प' स्वर है, परन्तु उसकी सङ्गति ऋषभ के साथ है, मध्यम इस जाति मे 'न्यास' या 'अपन्यास' स्वर नही, न्यास से परे है। फलतः इस प्रस्तार की मन्द्रगति कामचार का परिणाम है। तारस्थान में प्रयुक्त अन्तिम स्वर ऋषभ इस जाति मे पञ्चम का संवादी अवश्य है और अंशस्वर से पञ्चम है।

ऋषभादि मूर्च्छना स्थापित करने पर किन्नरी दूसरे पर्दे से चौदहवे पर्दे तक हमें उपर्युक्त तेरह स्वर प्राप्त करा देगी।

(६) धैवती-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार धैवतांश शुद्ध धैवती का उदाहरण है। ग्रह, अपन्यास एवं न्यास स्वर धैवत प्रस्तार के आदि, मध्य एवं अन्त में विद्यमान है। पञ्चपाणि ताल की दो आवृत्तियों अर्थात् बारह तालभागों में प्रस्तार सम्पन्न हुआ है।

स्वर-संख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(षाडवकारी)	२१
ऋषभ	(पर्यायांश, बली)	१०
गान्धार	(बली)	१०
मध्यम	(अनंश)	१५
पञ्चम	(औडुवकारी)	१०
धैवत	(अंश, ग्रह, न्यास)	३५
निषाद	(बली)	१९

प्रस्तुत प्रस्तार में अनंश एवं षाडवकारी षड्ज का प्रयोग बली स्वरों की अपेक्षा अधिक हुआ है। अनंश मध्यम भी बली स्वरों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त है।

पद

तरुणामलेन्दुमणिभूषितामलशिरोज
भुजगाधिपैककुण्डलविलासकृतशोभम्।
नगसूनुलक्ष्मीदेहार्धमिश्रितशरीर
प्रणमामि भूतगीतोपहारपरितुष्टम्॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	धा	धा	निध	पध	मा	मा	मा	मा
	पद	त	रु	णा	—	म	ले	—	दु
२	ताल	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
					।	।	।	।	।
	स्वर	धा	धा	निध	निस	सा	सा	सा	सा
	पद	म	णि	भू	—	षि	ता	—	म

३	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सध	धा	पा	मध	धा	निध	धनि	धा
	पद	ल	शि	रो	–	–	–	ज	–
४	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	सा	सा	रिग	रिग	सा	रेग	सा	सा
	पद	भु	ज	गा	–	धि	पैं	–	क
५	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	धा	धा	नी	पां	धा	पां	मां	मा
	पद	कुं	–	ड	ल	वि	ला	–	स
६	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	धां	धां	पा	मधं	धां	निंध	धनि	धा
	पद	क्र	त	शो	–	–	–	भ	–
७	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	धा	धा	निस	निस	निध	पा	पा	पा
	पद	न	ग	सू	–	नु	ल	–	क्ष्मी
८	ताल	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रिग	सा	सा	सा	नी	नी	नी	नी
	पद	दे	हा	–	–	धं	मि	–	श्रि
९	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सा	रिग	रिग	सा	नी	सा	धा	धा
	पद	त	श	री	–	–	–	रं	–

१०	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रें	गंरि	मग	मा	मा	मां	मां	मा
	पद	प्र	ण	मा	—	मि	भू	—	त
११	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	नी	नी	धा	धा	पा	रिग	सा	रिग
	पद	गी	—	तो	—	प	हा	—	र
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	पा	धा	सा	मा	धा	नी	धा	धा
	पद	प	रि	तु	—	—	—	ष्ट	—

इस प्रस्तार मे 'रे, ग, मं, प, धं, निं, स, रे, ग, म, प, ध, नि, सं' चौदह स्वरो का प्रयोग हुआ है। मन्द्रतम प्रयुक्त स्वर ऋषभ, अंशस्वर धैवत का सवादी है। तारस्थानीय स्वर अनश है। प्रयुक्त मन्द्रतार सीमाएँ कामचार का परिणाम है।

ऋषभादि मूर्च्छना स्थापित करने पर मेरु से तेरहवे पर्दे तक किन्नरी हमे उपर्युक्त चौदह स्वर दे देगी।

(७) नैषादी-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार निषादाश शुद्ध नैपादी का उदाहरण है। अंश, अपन्यास एव न्यास होने के कारण निषाद का प्रयोग प्रस्तार के आदि, मध्य एवं अन्त मे है। चञ्चत्पुट ताल की चार आवृत्तियों अर्थात् सोलह ताल-भागो मे यह प्रस्तार सम्पन्न हुआ है।

स्वर-सख्या इस प्रकार है—

पड्ज	(पाडवकारी)	१५
ऋपभ	(पर्यायाश, वली)	११
गान्धार	(पर्यायांश, वली)	११
मध्यम	(अनश)	२८
पञ्चम	(औडुवकारी)	८
धैवत	(अनंश)	१२
निपाद	(अंश, ग्रह, न्यास)	४३

पद

तं सुरवन्दितमहिषमहासुरमथनमुमापतिं भोगयुतम् ,
नगसुतकामिनीदिव्यविशेषकसूचकशुभनखदर्पणकम् ।
अहिमुखमणिखचितोज्ज्वलनूपुरबालभुजङ्गमरवकलितम् ,
द्रुतमभिव्रजामि शरणमनिन्दितपादयुग्मपङ्कजविलासम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	नी	नी	नी	नी	सा	धा	नी	नी
	पद	तं	—	सु	र	वं	—	दि	त
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	पा	मा	सा	धा	नी	नी	नी	नी
	पद	म	हि	ष	म	हा	—	सु	र
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सा	सा	गा	गा	नी	नी	धा	नी
	पद	म	थ	न	मु	मा	—	प	तिं
४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	सा	सा	धा	नी	नी	नी	नी	नी
	पद	भो	—	ग	यु	त	—	—	—
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सा	गा	गा	मा	मा	मा	मा
	पद	न	ग	सु	त	का	—	मि	नी

६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	पा	धा	पा	मा	मा	मा	मा
	पद	दि	–	व्य	वि	शे	–	प	क
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	रे	गा	सा	सा	रे	गा	नी	नी
	पद	सू	–	च	क	शु	भ	न	ख
८	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	नी	पा	धनि	नी	नी	नी	नी
	पद	द	–	पं	ण	क	–	–	–
९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सा	गा	सा	मा	मा	मा	मा
	पद	अ	हि	मु	ख	म	णि	ख	चि
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	मा	मा	मा	नी	धा	मा	मा
	पद	तो	–	ज्ज्व	ल	नू	–	पु	र
११	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धा	धा	नी	नी	रे	गा	मा	मां
	पद	बा	ल	–	भु	ज	ग	–	म
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	मां	पा	धा	नी	नी	नी	नी
	पद	र	व	क	लि	–	तं	–	–

१३	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	पा	नी	नी	रे	रे	रे	रे
	पद	द्रु	त	म	भि	व्र	जा	–	मि
१४	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	मा	मा	मा	रे	गा	सा	सा
	पद	श	र	ण	म	निं	–	दि	त
१५	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धा	मा	रे	गा	सा	धा	नी	नी
	पद	पा	–	द	यु	ग	पं	–	क
१६	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	पा	मा	रे	गा	नी	नी	नी	नी
	पद	ज	वि	ला	–	स	–	–	–

इस प्रस्तार मे 'म, पं, धं, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प' सोलह स्वरो का उपयोग है। प्रयुक्त मन्द्रतम स्वर मध्यम स्वर के साथ अशस्वर निषाद का संवाद-सम्बन्ध है। परन्तु मध्यम इस जाति मे अनश है, तारतम प्रयुक्त स्वर पञ्चम भी 'अनंश' स्वर है। मन्द्र एवं तार सीमाओ मे कामचार है।

गान्धारादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह सारोवाली किन्नरी पहले पर्दे से सोलहवे पर्दे तक हमें उपर्युक्त सोलह स्वर प्राप्त करा देगी। चौदह सारोवाली किन्नरी पर अन्तिम दो स्वर हमे चौदहवे पर्दे पर मीड द्वारा प्राप्त होगे।

(८) षड्जकैशिकी-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार षड्जांश षड्जकैशिकी का उदाहरण है। ससर्गज विकृत जाति होने के कारण इसका न्यासस्वर गान्धार अंशस्वर से भिन्न है। प्रस्तार का आरम्भ अशस्वर षड्ज से, उत्तरार्ध का आरम्भ अपन्यासस्वर षड्ज से तथा अन्त न्यासस्वर गान्धार पर हुआ है। चञ्चत्पुट ताल की चार आवृत्तियो मे प्रस्तार की पूर्ति हुई है।

स्वर-सख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(अश, गह, अपन्यास)	३३
ऋषभ	(दुर्बल)	१८
गान्धार	(पर्यायाश)	१५
मध्यम	(दुर्बल)	२०
पञ्चम	(पर्यायाँश)	१८
धैवत	(अनश)	२८
निषाद	(अनश)	१४

धैवत और निषाद अनश होने पर भी मध्यम और ऋषभ स्वरो की अपेक्षा, रत्नाकर में वहुल विहित है।

पद

देवमसकलशशितिलक द्विरदगति
निपुणमति मुग्धमुखाम्वुरुहदिव्यकान्तिम् ।
हरमम्बुदोदधिनिनादमचलवरसूनु-
देहार्धमिश्रितशरीर प्रणमामि तमहमनुपममुखकमलम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सा	मा	पा	गरि	मग	मा	मा
	पद	दे	–	–	–	–	–	–	–
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	मा	मा	मा	सा	सा	सा	सा
	पद	व	–	–	–	–	–	–	–
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धा	धा	पा	पा	धा	धा	रे	रिम
	पद	अ	स	क	ल	श	शि	ति	ल

४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रे	रे	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	पद	क	—	—	—	—	—	—	—
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	धा	धा	पा	धनि	मा	मा	पा	पा
	पद	द्वि	र	द	ग	ति	—	—	—
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	धा	पा	धनि	धा	धा	पा	पा
	पद	नि	पु	ण	म	ति	—	—	—
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा
	पद	मु	—	ग्ध	—	मु	खां	—	बु
८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	धा	पा	धा	धनि	धा	धा	धा
	पद	रु	ह	दि	—	व्य	का	—	तिम्
९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लवु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सा	सा	रिग	सा	रिग	धा	धा
	पद	ह	र	म	—	बु	दो	—	द
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	धा	पा	पा	धा	धा	नी	नी
	पद	धि	नि	ना	—	दं	—	—	—

११	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	रे	रे	गा	सा	सां	सां	सा	गां
	पद	अ	च	ल	व	र	सू	–	नु
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	रिस	रे	सरि	रें	सरि	सां	सा
	पद	दे	–	हा	–	धं	मि	–	श्रि
१३	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सरि	रे	सरि	रे	सा	सा	सा
	पद	त	श	री	–	र	–	–	–
१४	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	मा	मा	मा	निध	पध	मा	.मा
	पद	प्र	ण	मा	–	मि	तम	ह	–
१५	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	नी	पा	पम	पा	पम	पध	रिग
	पद	अ	नु	प	म	मु	ख	क	म
१६	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	गा	गा	गा	गा	गा	गा	गा	गा
	पद	ल	–	–	–	–	–	–	–

इस प्रस्तार में 'स, रे, ग, म, पं, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि' चौदह स्वरों का उपयोग है। यहाँ मन्द्रस्थान में महर्षि भरत के अनुसार मन्द्रावधि की अन्तिम सीमा अंशस्वर (षड्ज) का प्रयोग है, परन्तु तारस्थान का प्रयोग सर्वथा लुप्त है।

षड्जादि मूर्च्छना स्थापित करने पर किन्नरी मेरु से तेरहवें पर्दे तक हमें उपर्युक्त चौदह स्वरों की प्राप्ति करा देगी।

(९) षड्जोदीच्यवा-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार षड्जांश षड्जोदीच्यवा का उदाहरण है। आरम्भ, मध्य और अन्त में क्रमशः अंश, ग्रह षड्ज, अपन्यास षड्ज और न्यास स्वर मध्यम है। पञ्चपाणि ताल की दो आवृत्तियों में प्रस्तार पूर्ण हुआ है।

स्वर-संख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(अंश, ग्रह , अपन्यास)	२७
ऋषभ	(षाडवकारी)	०
गान्धार	(अनंश, बली)	१५
मध्यम	(पर्य्यायांश)	१४
पञ्चम	(औडुवकारी)	१२
धैवत	(पर्य्यायांश)	२०
निषाद	(पर्य्यायांश)	८

पद

शैलेशसूनुप्रणयप्रसङ्गसविलासखेलनविनोदम्।
अधिकमुखेन्दुनयनं नमामि देवासुरेश तव रुचिरम्॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सा	सा	सा	मा	मा	गा	गा
	पद	शै	—	—	—	ले	—	—	—
२	ताल	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	गा	मा	पा	मा	गा	मा	मा	धा
	पद	श	—	सू	—	—	—	—	नु
३	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१८	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सा	सा	मा	गा	पा	पा	नी	धा
	पद	शै	—	ले	—	श	सू	—	नु

४	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	नी	सा	सा	धा	नी	पा	मा
	पद	प्र	ण	य	—	प्र	स	—	ग
५	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	गां	सा	सा	सा	सा	सा	सा	गां
	पद	स	वि	ला	—	स	खे	—	ल
६	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	धा	धा	पा	धा	पा	नी	धा	धा
	पद	न	वि	नो	—	—	—	द	—
७	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	गां	गा	गां	गां	गा	सा	सा
	पद	अ	—	धि	—	क	—	—	—
८	ताल	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	धा	पा	धा	पा	धा	धा	धा
	पद	मु	—	खे	—	—	—	—	न्दु
९	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०.	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सा̍	सा̍	मा	गा	पा	पा	नी	धा
	पद	अ	धि	क	—	मु	खे	—	न्दु
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	नी	सा̍	सा̍	धा	नी	पा	मा
	पद	न	य	न	—	न	मा	—	मि

११	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	गा	सा	सा	सा	सा	सा	सा	गा
	पद	दे	—	वा	—	सु	रे	—	श
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	धा	धा	पा	धा	गा	मा	मा	मा
	पद	त	व	रु	चि	र	—	—	—

इस प्रस्तार मे अर्धमागधी गीति का भी आश्रय लिया गया है। अर्धमागधी इत्यादि गीतियो की चर्चा यथास्थान की जायगी।

'ग, म, पं, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म' सोलहो स्वर प्रयुक्त हुए है। मन्द्रतम स्वर न्यास से पर है। तार स्थान मे प्रयुक्त तारतम स्वर मध्यम अश-स्वर पड्ज से चतुर्थ है। तारावधि भरत-सम्मत है।

गान्धारादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह सारोवाली किन्नरी मेरु से पन्द्रहवें पर्दे तक हमे उपर्युक्त सोलह स्वर प्राप्त करा देगी। चौदह सारोवाली किन्नरी पर अन्तिम स्वर मीड द्वारा मिलेगा।

(१०) षड्जमध्यमा-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार मध्यमांश षड्जमध्यमा का उदाहरण है। ग्रह, अपन्यास और न्यासस्वर मध्यम का प्रयोग जाति के आदि, मध्य एव अन्त मे हुआ है। प्रस्तुत प्रस्तार पञ्चपाणि ताल की दो आवृत्तियो मे पूर्ण हुआ है।

स्वरसख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(पर्य्यायाश)	१६
ऋषभ	(पर्य्यायांश)	१३
गान्धार	(औडुवकारी)	२५
मध्यम	(अंश, न्यास, अपन्यास)	४८
पञ्चम	(पर्य्यायाश)	२१
धैवत	(पर्य्यायाश)	२५
निषाद	(षाडवकारी)	८

पद

रजनिवधूमुखविलासलोचन
प्रविकसितकुमुददलफेनसन्निभम् ।
कामिजननयनहृदयाभिनन्दिन
प्रणमामि देव कुमुदाधिवासिनम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मा	गा	सग	पा	धप	मा	निध	निम
	पद	र	ज	नि	व	धू	–	मु	ख
२	ताल	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	मा	सा	रिग	मग	निध	पध	पा
	पद	वि	ला	–	स	लो	–	–	च
३	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	गा	रे	गा	मा	मा	सा	सा
	पद	न	–	–	–	–	–	–	–
४	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	मगम	मा	मा	निध	पध	पम	गमम
	पद	प्र	वि	क	सि	त	कु	मु	द
५	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	धा	पध	परि	रिग	मग	रिग	सधस	सा
	पद	द	ल	फे	न	सं	–	–	नि
६	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८

	स्वर	निध	सा	रे	मगम	मा	मा	मा	मा
	पद	भ	–	–	–	–	–	–	–
७	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मा	मा	मगम	मंधं	धपं	पंधं	पम	गंमंग
	पद	का	–	मि	ज	न	न	य	न
८	ताल	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	पध	परि	रिग	मग	रिग	सधस	सा
	पद	ह्ह	द	या	भि	नं	–	–	दि
९	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	मां	धनि	धस	धप	मप	पा	पा
	पद	नं	–	–	–	–	–	–	–
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	मगंम	मा	निध	पध	पमग	गा	मा
	पद	प्र	ण	मा	–	मि	दे	वं	–
११	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	धा	पध	परि	रिग	मग	रिग	सधस	सा
	पद	कु	मु	दा	धि	वा	–	–	सि
१२	ताल	आ०	–	नि०	–	वि०		सं०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	निध	सा	रे	मगम	मा	मा	मा	मा
	पद	न	–	–	–	–	–	–	–

प्रस्तुत प्रस्तार मे 'गं, मं, पं, धं, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म' सोलह स्वरो का उपयोग है। प्रयुक्त मन्द्रतम स्वर गान्धार पर्य्यायाश है, मतङ्ग की भापा मे 'तत्पर' (न्यास से पर) भी है। तारतम प्रयुक्त स्वर मध्यम अंश है।

मध्यमादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह सारोंवाली किन्नरी हमें छठे पर्दे से अठारहवे पर्दे तक तेरह स्वर तथा अन्तिम पर्दे पर मीड द्वारा अवशिष्ट तीन स्वर देगी। चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर अन्तिम तीन स्वर नही मिलेंगे और उनसे पूर्ववर्ती प, ध, नि, सं, चौदहवे पर्दे पर मीड द्वारा मिलेंगे।

(११) गान्धारोदीच्यवती-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार षड्जांश गान्धारोदीच्यवा का उदाहरण है। ग्रह स्वर षड्ज, अपन्यास षड्ज और न्यासस्वर मध्यम क्रमश. इस प्रस्तार के आदि, मध्य और अन्त में हैं। चञ्चत्पुट ताल की चार आवृत्तियो में प्रस्तार पूर्ण हुआ है।

स्वर-संख्या इस प्रकार है :—

षड्ज	(अंश, ग्रह, अपन्यास)	२८
ऋषभ	(षाडवकारी)	६
गान्धार	(बली)	२४
मध्यम	(पर्य्यायांश, न्यास)	२४
पञ्चम	(अनंश)	२२
धैवत	(अनंश)	१४
निषाद	(अनंश)	२७

पञ्चम, धैवत और निषाद अनंश होते हुए भी इस प्रस्तार मे अल्पप्रयुक्त नहीं है। जिन जातियो के योग से यह जाति बनी है, उनमें 'गान्धारी' भी है, इन स्वरों की अनल्पता गान्धारी के मिश्रण का परिणाम है।

पद

सौम्यगौरीमुखाम्बुरुहदिव्यतिलक—
परिचुम्बिताचितसुपादं प्रविकसितहेमकमलनिभम्।
अतिरुचिरकान्तिनखदर्पणामलनिकेतं मनसिजशरीर—
ताडनं प्रणमामि गौरीचरणयुगमनुपमम्॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सा	पा	मा	पा	धप	पा	मा
	पद	सौ	—	—	—	—	—	—	—

२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	पा	मा	मा	सा	सा	सा	सा
	पद	म्य	–	–	–	–	–	–	–
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धा	नी	सा	सा	मा	मा	पा	पा
	पद	गौ	–	री	–	मु	खा	–	वु
४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	पद	रु	ह	दि	–	व्य	ति	ल	क
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मा	मा	धा	निस	नी	नी	नी	नी
	पद	प	रि	चु	–	वि	ता	–	चि
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	सा	सा
	पद	त	सु	पा	–	दं	–	–	–
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	मग	पा	पध	मा	धनि	पा	पा
	पद	प्र	वि	क	सि	त	हे	–	म
८	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रे	गा	सा	सध	नी	नी	धा	धा
	पद	क	म	ल	नि	भ	–	–	–

९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	गा	रिग	सा	सनि	गा	रिग	सा	सा
	पद	अ	ति	रु	चि	र	का	—	ति
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	सा	सा	सा	मा	मनि	धनि	नी	नी
	पद	न	ख	द	—	र्प	णा	—	म
११	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	सा	सा
	पद	ल	नि	के	—	त	—	—	—
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	गा	सा	गा	सा	मा	पा	मा	परिग
	पद	म	न	सि	ज	श	री	र	—
१३	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	गा	मा	गा	सा	गा	गा	गा	सा
	पद	ता	—	—	ड	न	—	—	—
१४	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	नी	पा	धा	नी	गा	गा	गा
	पद	प्र	ण	मा	—	मि	गौ	—	री
१५	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४

	स्वर	नी	नी	धा	पा	धा	पा	मा	पा
	पद	च	र	ण	यु	ग	म	नु	प
१६	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	पा	सा	सा	मा	मा	मा	मा
	पद	म	—	—	—	—	—	—	—

इस प्रस्तार मे 'स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि' चौदह स्वरो का प्रयोग हुआ है। मन्द्र स्थान का प्रयोग सर्वथा नही है। तार स्थान मे अश स्वर से सप्तम निषाद भरत-विधान के अनुकूल है।

धैवतादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह सारोवाली किन्नरी दूसरे से पन्द्रहवे पर्दे तक हमे उपर्युक्त चौदह स्वर दे देगी। चौदह सारोवाली किन्नरी पर अन्तिम स्वर अन्तिम पर्दे पर मीड द्वारा मिलेगा।

(१२) रक्तगान्धारी-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार पञ्चमांश रक्तगान्धारी का उदाहरण है। प्रस्तार का आरम्भ ग्रहस्वर पञ्चम से और अन्त न्यासस्वर गान्धार पर हुआ है। गेय पद का पूर्वार्ध अपन्यास स्वर मध्यम पर समाप्त हुआ है। पञ्चपाणि ताल की दो आवृत्तियो मे यह प्रस्तार सम्पन्न हुआ है।

स्वर-संख्या इस प्रकार है —

षड्ज		७
ऋषभ	(षाडवकारी)	४
गान्धार	(पर्य्यायांश, न्यास)	१७
मध्यम	(पर्य्यायांश)	२३
पञ्चम	(अंश, ग्रह)	३८
धैवत	(औडुवकारी, बहुल)	८
निषाद	(पर्य्यायांश, बहुल)	६

लक्षण में धैवत एवं निषाद का बाहुल्य है, परन्तु प्रस्तार में नही है।

पद

तं बालरजनिकरतिलकविभूषणविभूतिम् ।
प्रणमामि गौरीवदनारविन्दप्रीतिकरम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	नी	सा	सा	गा	सा	पा	नी
	पद	तं	–	बा	–	ल	र	ज	नि
२	ताल	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	सो॑	सो॑	पा	पा	मा	मा	गा	गा
	पद	क	र	ति	ल	क	भू	–	प
३	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	पा	धा	पा	मा	पा	धप	मग
	पद	ण	वि	भू	–	–	–	–	–
४	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	मा	मा	मा	मा	मा	मा	मा
	पद	ति	–	–	–	–	–	–	–
५	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	धां	नी	पां	मंपं	धा	नी	पा	पा
	पद	–	–	–	–	–	–	–	–
६	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	मा	पा	मा	धंनिं	पां	पां	पां	पां
	पद	–	–	–	–	–	–	–	–

७	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	रे	गा	मा	पा	पा	पा	मा	पा
	पद	प्र	ण	मा	–	मि	गौ	–	री
८	ताल	आ०		ता०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
		।	।	।	।	।	।	।	।
	स्वर	र	गा	मा	पा	पा	पा	मा	पा
	पद	व	द	ना	–	र	वि	–	–
९	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा
	पद	द	–	–	–	–	–	–	–
१०	ताल	आ०		निं०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रे	गा	सा	सा	रे	गा	गा	गा
	पद	प्री	–	ति	क	र	–	–	–
११	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
		।	।	।	।।	।	। ।		
	स्वर	गा	गा	पा	धम	धा	निधं	पा	पा
	पद	–	–	–	–	–	–	–	–
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
		।	।	।	।।।	।	।	।	।
	स्वर	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	गा	गा
	पद	–	–	–	–	–	–	–	–

प्रस्तुत प्रस्तार मे 'मं, प, धं, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि' अठारह स्वरो का प्रयोग हुआ है। प्रयुक्त मन्द्रतम स्वर मध्यम 'अंश' से पर है, मध्यमांश अवस्था में अपन्यास भी है। तार स्थान मे निषाद तक प्रयोग में कामचार है।

ऋषभादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह सारोवाली किन्नरी दूसरे पर्दे से अठारहवें पर्दे तक हमे सत्रह स्वर देगी, अन्तिम स्वर अठारहवे पर्दे पर मीड द्वारा मिलेगा। चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर चौदहवे पर्दे पर तार ऋषभ मिलेगा, मीड द्वारा अवशिष्ट स्वर प्राप्त करना वादक की कुशलता पर निर्भर है।

(१३) कैशिकी-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार पञ्चमांश कैशिकी का उदाहरण है। ग्रह पञ्चम, अपन्यास पञ्चम और न्यास गान्धार क्रमश इस प्रस्तार के आदि, मध्य एव अन्त मे प्रयुक्त हुए है। पञ्चपाणि की दो आवृत्तियो मे प्रस्तुत प्रस्तार की पूर्ति हुई है।

स्वर-संख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(पर्य्यायांश)	९
ऋषभ	(अनंश षाडव०)	११
गान्धार	(न्यास)	२०
मध्यम	(पर्य्यायांश)	१७
पञ्चम	(ग्रह, अंश)	१५
धैवत	(औडुवकारी)	१४
निषाद	(बली)	२०

प्रस्तुत प्रस्तार मे अत्यन्त बली होने के कारण गान्धार एवं निषाद का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। सभी स्वरो का सञ्चार होने के कारण सभी स्वरो का प्रयोग सञ्चारी रूप में हैं। दुर्बल ऋषभ का भी ग्यारह बार प्रयोग इसी सञ्चार का परिणाम है।

साधारणतया किसी जाति का न्यासस्वर एक होता है, परन्तु इस जाति मे गान्धार, पञ्चम एवं निषाद तीन न्यासस्वर सम्भव है।

प्रस्तुत प्रस्तार में ग्रहस्वर पञ्चम है, इसी लिए हमने इस प्रस्तार में पञ्चम को अंश माना है। अंश से भिन्न ग्रह केवल नन्दयन्ती जाति मे होता है।

पद

केलीहतकामतनुविभ्रमविलास
तिलकयुत मूर्धोर्ध्ववालसोमनिभम्।
मुखकमलमसमहाटकसरोजं
हृदि सुखदं प्रणमामि लोचनविशेषम्॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	धनि	पा	धनि	गा	गा	गा	गा
	पद	के	–	ली	–	ह	–	त	–
२	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	पा	पा	मा	निध	निध	पा	पा	पा
	पद	का	–	म	त	नु	–	–	–
३	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धा	नी	सा̍	सा	रे	रे	रे	रे
	पद	वि	–	भ्र	म	वि	ला	–	स
४	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	सा	सा	सा	रे	गा	मा	मा	मा
	पद	ति	ल	क	यु	तं	–	–	–
५	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	मा	धां	नी	धा	मा	धा	मा	पा
	पद	मू	–	र्धो	–	र्ध्वं	वा	–	ल
६	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	गा	रे	सा	धनि	रे	रे	रे	रे
	पद	सो	–	म	नि	भं	–	–	–
७	ताल	आ०		नि०		वि०		प्र०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	गा	रे	सा	सा	धा	धा	मा	मा
	पद	मु	ख	क	म	लं	–	–	–

८	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	गा	गा	गा	मा	मा	निधनि	नी	नी
	पद	अ	स	म	—	हा	—	ट	—
९	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	गा	नी	नी	गा	गा	गा	गा
	पद	क	स	रो	—	ज	—	—	—
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	गा	गा	नी	नी	निध	पा	पा	पा
	पद	हृ	दि	सु	ख	द	—	—	—
११	ताल	आ०		ता०		वि०		प्र०	
	लघु	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
	स्वर	मा	पा	मा	पा	पा	पा	मा	मा
	पद	प्र	ण	मा	—	मि	लो	च	—
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
	स्वर	सा	मा	गा	निधनि	नी	नो	मा	गा
	पद	न	वि	शे	—	प	—	—	—

प्रस्तुत प्रस्तार मे 'म, प, धं, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि' अठारह स्वरो का उपयोग हुआ है। मन्द्रतम प्रयुक्त स्वर न्यास से पर है, तारतम प्रयुक्त निषाद का प्रयोग कामचार से है।

गान्धारादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह पर्दोवाली किन्नरी पहले पर्दे से अन्तिम पर्दे तक हमे उपर्युक्त अठारह स्वर दे देगी। चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर अन्तिम चार स्वर अन्तिम पर्दे पर मीड द्वारा मिलेंगे।

(१४) मध्यमोदीच्यवा-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार पञ्चमाश मध्यमोदीच्यवा का उदाहरण है। ग्रह स्वर पञ्चम, अपन्यास स्वर पञ्चम तथा न्यास स्वर मध्यम क्रमशः प्रस्तार के आदि, मध्य और अन्त मे है। चञ्चत्पुट ताल की चार आवृत्तियो मे यह प्रस्तार पूर्ण हुआ है।

स्वर-सख्या इस प्रकार है —

षड्ज	(अनश)	८
ऋषभ	(षाडवकारी)	१४
गान्धार	(अनश)	२४
मध्यम	(न्यास)	१६
पञ्चम	(अश, ग्रह)	२८
धैवत	(अनश)	१४
निषाद	(अनश)	४२

इस प्रस्तार मे निषाद का प्रयोग बहुल है। यह सामान्य नियम का अपवाद है।

पद

देहार्धरूपमतिकान्तिममलममलेन्दुकुन्दकुमुदनिभं
चामीकराम्बुरुहदिव्यकान्तिप्रवरगणपूजितमजेयम् ।
सुराभिष्टुतमनिलमनोजवमम्बुदोदधिनिनादमतिहासं
शिवं शान्तमसुरचमूमथन् वन्दे त्रैलोक्यनतचरणम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	धनि	नी	नी	मा	पा	नी	पा
	पद	दे	—	हा	—	र्ध	रू	—	प
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	रे	रे	गा	सा	रिग	गा	गा
	पद	म	ति	कां	—	ति	म	म	ल

३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	पद	म	म	ले	—	दु	कु	—	द

४	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	नी	धप	मा	निध	निध	पा	पा
	पद	कु	मु	द	नि	भ	—	—	—

५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	पा	रे	रे	रे	रे	रे	रे
	पद	चा	—	मी	—	क	रा	—	वु

६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	रिग	सा	सध	नी	नी	नी	नीं
	पद	रु	ह	दि	—	—	व्य	का	ति

७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	पा	नी	सा	पा	पा	गा	गा
	पद	प्र	व	र	ग	ण	पू	—	जि

८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	गा	पां	मा	निधं	नीं	नी	सा	सा
	पद	त	म	जे	—	यं	—	—	—

९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	पां	मां	धंनि	पां	पां	पां	पां
	पद	सु	रा	भि	ष्टु	त	म	नि	ल

१०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मां	पां	मां	रिग	गा	गा	गा	गा
	पद	म	नो	ज	—	व	—	मं	वु
११	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	पा	मा	पा	नी	नी	नी	नी
	पद	दो	—	द	धि	नि	ना	—	द
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	गा	मा
	पद	म	ति	हा	—	स.	—	—	—
१३	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	गा	गा	गा	गा	मा	निध	नी	नी
	पद	शि	वं	शां	—	त	म	सु	र
१४	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	नी	धप	मा	निध	निध	पा	पा
	पद	च	मू	म	थ	न	—	—	—
१५	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लवु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	रे	गा	सा	सा	मा	निधनि	नी	नी
	पद	व	—	दे	—	त्रै	लो	क्य	—
१६	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	नी	धां	पा	धा	पा	मा	मा
	घद	न	त	च्च	र	णं	—	—	—

प्रस्तुत प्रस्तार मे 'मं, पं, धं, निं, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि' अठारह स्वरो का प्रयोग है। मन्द्रतम प्रयुक्त स्वर मध्यम 'न्यास' है, तार स्थान में कामचार है। मध्यमादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह सारिकाओंवाली किन्नरी पहले पर्दे से अन्तिम पर्दे तक उपर्युक्त अठारह स्वर प्राप्त करा देगी। चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर अन्तिम चार स्वर मीड द्वारा मिलेगे।

(१५) कार्मारवी-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार ऋपभाश कार्मारवी का उदाहरण है। इसका आरम्भ ग्रहस्वर ऋपभ और अन्त न्यासस्वर पञ्चम पर हुआ है। अपन्यास स्वर पञ्चम प्रस्तार के मध्यम मे है। चञ्चत्पुट ताल की चार आवृत्तियो में यह प्रस्तार सम्पन्न हुआ है।

स्वर-सख्या इस प्रकार है—

पड्ज	(अनश)	१०
ऋपभ	(अश, ग्रह)	१९
गान्धार	(अनश)	२९
मध्यम	(अनश)	१७
पञ्चम	(पर्य्यायाश, न्यास)	२२
धैवत	(पर्य्यायांश)	८
निषाद	(अनश)	३४

अनश स्वरो का वहुल प्रयोग इस जाति की विशेपता है। भरत-विधान इस वहुलता का आधार है।

पद

त स्थाणुललितवामाङ्गसक्तमतितेज.प्रसरसौधाशुकान्ति-
फणिपतिमुखमुरोविपुलसागरनिकेतं सितपन्नगेन्द्र-
मतिकान्त पण्मुखविनोदकरपल्लवांगुलिविलासकीलन-
विनोद प्रणमामि देवयज्ञोपवीतकम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	रे	रे	रे	रे	रे	रे	रे	रे
	पद	तं	–	स्था	–	णु	ल	लि	त

२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	गा	सा	गा	सा	नी	नी	नी
	पद	वा	—	मां	—	ग	स	—	क्त
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	मा	नी	मां	पां	पां	गा	गा
	पद	म	ति	ते	—	जः	प्र	स	र
४	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	गा	पा	मा	पा	नी	नी	नी	नी
	पद	सौ	—	धां	—	शु	का	—	ति
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	रे	गा	सा	नी	रे	गा	रे	मा
	पद	फ	णि	प	ति	मु	खं	—	—
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	गा	रे	सा	नी	धनि	पा	पा
	पद	उ	रो	वि	पु	ल	सा	—	ग
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	पा	मा	पेरिग	गा	गा	गा	गा
	पद	र	नि	के	—	तं	—	—	—
८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रे	रे	गा	सम	मा	मा	पा	पा
	पद	सि	त	प	—	न्न	गे	—	न्द्र

९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	गा	गा
	पद	म	ति	का	–	तं	–	–	–
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	नी	पा	मा	धा	नी	सा	सा
	पद	प	–	ण्मु	ख	वि	नो	–	द
११	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	पद	क	र	प	–	ल्ल	वा	–	ङ्गु
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	मा	धा	नीं	सनिनि	धा	पा	पा
	पद	लि	वि	ला	–	स	की	–	ल
१३	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	गा	गा
	पद	न	वि	नो	–	दं	–	–	–
१४	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	नी	पा	धनि	गा	गा	गा	गा
	पद	प्र	ण	मा	–	मि	दे	–	व
१५	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सा	रें	गा	सा	नी	नी	नी	नी
	पद	य	–	ज्ञो	–	प	वी	–	त

१६	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	नी	धा	धा	पा	पा	पा	पा
	पद	कं	–	–	–	–	–	–	–

प्रस्तुत प्रस्तार में 'मं, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि' अठारह स्वरो का उपयोग है। प्रयुक्त मन्द्रतम स्वर मध्यम 'न्यास से पर' है। तारस्थान में निषाद तक प्रयोग कामचार से है।

षड्जादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह सारोंवाली किन्नरी तीसरे पर्दे से अठारहवें पर्दे तक सोलह स्वर तथा अन्तिम पर्दे पर मीड द्वारा अवशिष्ट दो स्वर प्राप्त करायेगी। चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर अन्तिम छः स्वर प्राप्त करना वादक की कुशलता पर निर्भर है।

(१६) गान्धारपञ्चमी-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार पञ्चमांश गान्धारपञ्चमी का उदाहरण है। प्रस्तार के आरम्भ एवं अन्त मे क्रमशः ग्रहस्वर पञ्चम एवं न्यास स्वर गान्धार है। अपन्यास स्वर ऋषभ प्रस्तार के मध्य में है। चञ्चत्पुट ताल की चार आवृत्तियो मे प्रस्तुत प्रस्तार सम्पन्न हुआ है।

स्वरसंख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(अनंश)	१०
ऋषभ	(अनंश, अपन्यास)	१४
गान्धार	(अनंश, न्यास)	१९
मध्यम	(अनंश)	१६
पञ्चम	(अंश, ग्रह)	२७
धैवत	(अनंश)	१२
निषाद	(अनंश)	४८

गान्धार न्यास एव पंचम अंश से अन्य स्वरों की सङ्गति, ऋषभ और मध्यम से अन्य स्वरो की सङ्गति तथा ऋषभ-मध्यम की पारस्परिक सङ्गति के परिणामस्वरूप निषाद का प्रयोग इस प्रस्तार में सर्वाधिक है।

पद

कान्त वामैकदेशप्रेङ्खोलमान-
कमलनिभं वरसुरभिकुसुमगन्धाधिवासितमनोज्ञ-
नगराजसूनुरतिरागरभसकेलीकुचग्रहलीलं
तं प्रणमामि देवं चन्द्रार्धमण्डितविलासकीलनविनोदम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	मप	मध	नी	धप	मा	धा	नी
	पद	का	—	—	—	—	—	—	—
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	सनिनि	धा	पा	पा	पा	पा	पा	पा
	पद	—	—	तं	—	—	—	—	—
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धा	नी	सा	सा	मा	मा	पा	पा
	पद	वा	—	मै	—	क	दे	—	श
४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	पद	प्रे	—	ङ्खो	—	ल	मा	—	न
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	नी	नी	धप	मा	निध	निध	पा	पा
	पद	क	म	ल	नि	भं	—	—	—
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

	स्वर	पा	पा	रे	रे	रे	रे	रे	रे
	पद	व	र	सु	र	भि	कु	सु	म
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	रिग	सा	सध	नी	नी	नी	नी
	पद	ग	–	धा	–	धि	वा	–	सि
८	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	नी	सा	रिस	रे	रे	रे	रे
	पद	त	म	नो	–	ज्ञ	–	–	–
९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	नी	गा	सा	निग	सा	नी	नी	नी
	पद	न	ग	रा	–	ज	सू	–	नु
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	मां	नी	मा	पा	पां	गा	गा
	पद	र	ति	रा	–	ग	र	भ	स
११	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	पां	मा	पा	नी	नी	नी	नी
	पद	के	–	ली	–	कु	च	–	ग्र
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	गा	गा
	पद	ह	ली	लं	–	तं	–	–	–
१३	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८

	स्वर	नी	नी	पा	धा	नी	गा	गा	गा
	पद	प्र	ण	मा	–	मि	दे	–	वं
१४	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	पद	च	–	द्रा	–	धं	मं	–	डि
१५	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	मा	धा	नी	सनिनि	धा	पा	पा
	पद	त	वि	ला	सकी	ल	–	–	–
१६	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	गा	गा
	पद	न	वि	नो	–	दं	–	–	–

इस प्रस्तार मे 'मं, प, धं, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स̍, रे̍' तेरह स्वरो का उपयोग है। प्रयुक्त मन्द्रतम स्वर मध्यम अपन्यास से पर है। तारतम प्रयुक्त स्वर ऋषभ अशस्वर पञ्चम से पाँचवाँ है।

गान्धारादि मूर्च्छना स्थापित करने पर उपर्युक्त तेरह स्वर किन्नरी पर पहले पर्दे से तेरहवे तक मिल जायँगे।

(१७) आन्ध्री-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार गान्धाराश आन्ध्री का उदाहरण है। ग्रह, अपन्यास एवं न्यास स्वर गान्धार प्रस्तार के आदि, मध्य और अन्त में है। चञ्चत्पुट ताल की चार आवृत्तियो मे प्रस्तुत प्रस्तार सम्पन्न हुआ है।

स्वर-संख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(अनश)	७
ऋषभ	(पर्यायांश)	३६
गान्धार	(अश, ग्रह, न्यास)	४४
मध्यम	(अनश)	१५

पञ्चम	(पर्यायाश)	१३
धैवत	(अनश)	४
निषाद	(पर्य्यायाश)	१९

ऋषभ-गान्धार एव निषाद-धैवत की सङ्गति के कारण तथा निषाद के अश संवादी होने के कारण ऋषभ और निपाद का प्रयोग अंश की अपेक्षा अल्प तथा इतर स्वरों की अपेक्षा वहुल है।

पद

तरुणेन्दुकुसुमखचितजटं त्रिदिवनदीसलिलधौतमुखं
नगसूनुप्रणयं वेदनिधिं परिणाहितुहिनशैलगृहम् ।
अमृतभवं गुणरहितं तमवनिरविशशिज्वलनजलपवन-
गगनतनु शरणं व्रजामि शुभमतिकृतनिलयम् ॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	गा	रे	रे	रे	रे	रे	रे	रे
	पद	त	रु	णे	—	न्दु	कु	सु	म
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	गा	रे	गा	रे	रे	रे	रे
	पद	ख	चि	त	ज	ट	—	—	—
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	रे	रे	गा	गा	रे	रे	मा	मा
	पद	त्रि	दि	व	न	दी	स	लि	ल
४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रे	गा	सा	धनि	नी	नी	नी	नी
	पद	धौ	—	त	मु	ख	—	—	—

५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	नी	रे	नी	रे	धंनि	धनि	पा	पा
	पद	न	ग	सू	–	नु	प्र	ण	य
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	पा	मा	रिग	गा	गा	गा	गा
	पद	वे	–	द	नि	धिं	–	–	–
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	रे	रे	गा	सस	मा	मा	पा	पा
	पद	प	रि	णा	–	हि	तु	हि	न
८	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	पा	मा	रिग	गा	गा	गा	गा
	पद	शै	–	ल	गृ	ह	–	–	–
९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	धा	नी	गा	गा	गा	गा	गा	गा
	पद	अ	मृ	त	भ	व	–	–	–
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	पा	पा	मा	रिग	गा	गा	गा	गा
	पद	गु	ण	र	हि	तं	–	–	–
११	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	नी	नी	नी	रे	रे	रे	रे
	पद	त	म	व	नि	र	वि	श	श्मि

१२	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रे	रे	गा	नी	सा	सा	नी	नी
	पद	ज्व	ल	न	ज	ल	प	व	न

१३	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	पा	पा	मा	रिग	गा	गा	गा	गा
	पद	ग	ग	न	त	नु	—	—	—

१४	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	रे	गा	सम	मा	मा	पा	पा
	पद	श	र	णं	—	व्र	जा	—	मि

१५	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	मा	नी	नी	सा	रे	गा	पा
	पद	शु	भ	म	ति	कृ	त	नि	ल

१६	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रिग	गा	गा	गा	गा	गा	गा	गा
	पद	यं	—	—	—	—	—	—	—

प्रस्तुत प्रस्तार में 'म, प, वं, निं, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि' अठारह स्वरो का उपयोग है। प्रयुक्त मन्द्रतम स्वर मध्यम इस जाति के अपन्यास स्वरो मे है। तारस्थान मे प्रयुक्त अन्तिम स्वर अंशस्वर गान्धार से पाँचवाँ है।

मध्यमादि मूर्च्छना स्थापित करने पर अठारह पर्दोवाली किन्नरी मेरु से सत्रहवे पर्दे तक हमे उपर्युक्त अठारह स्वरो की प्राप्ति करा देगी । चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर अन्तिम तीन स्वर मीड द्वारा मिलेगे ।

(१८) नन्दयन्ती-प्रस्तार

प्रस्तुत प्रस्तार पञ्चमाश नन्दयन्ती का उदाहरण है। केवल इसी जाति मे ग्रह-स्वर गान्धार अनंश होने पर भी है, जिससे प्रस्तार का आरम्भ हुआ है। प्रस्तार के मध्य मे अपन्यास पञ्चम तथा अन्त मे न्यासस्वर गान्धार है। चञ्चत्पुट ताल की आठ आवृत्तियो में यह प्रस्तार सम्पन्न हुआ है।

स्वरसख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(षाडवकारी)	५१
ऋषभ	(अनश)	२५
गान्धार	(न्यास)	५९
मध्यम	(अनश)	५१
पञ्चम	(अंश)	७०
धैवत	(अनश)	३२
निषाद	(अनश)	३०

पद

सौम्यं वेदाङ्गवेदकरकमलयोनि तमोरजोविवर्जितं हरं
भवहरकमलगृह शिव शान्त सन्निवेशनमपूर्वं
भूषणलीलमुरगेशभोगभासुरशुभपृथुलम्।
अचलपतिसूनुकरपंकजामलविलासकीलनविनोदं
स्फटिकमणिरजतसितनवदुकूलक्षीरोदसागरनिकाशम्।
अजशिर कपालपृथुभाजनं वन्दे सुखदं
हरदेहममलमधुसूदनसुतेजोऽधिकसुगतियोनिम्॥

प्रस्तार

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	गा	गा	गा	गा	पा	पा	धप	मा
	पद	सौ	–	—	—	—	—	—	—
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

	स्वर	धा	धा	धा	धा	धा	नी	सनिनि	धा
	पद	—	—	—	—	—	—	—	—
३	ताल	आ०		श०		वि०		पु०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	पां	पा	पां	पा	पां	पां	पा	पा
	पद	म्यं	—	—	—	—	—	—	—
४	ताल	आ		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धां	नी	मां	पां	गा	गां	गा	गा
	पद	वे	—	दा	—	ङ्ग	वे	—	द
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मा	रे	गा	गा	गा	गा	गा	गा
	पद	क	र	क	म	ल	यो	—	नि
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	मा	पा	पा	धा	निध	पा	पा
	पद	त	मो	र	जो	वि	व	—	—
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धा	नी	मा	पा	गा	गा	गा	गा
	पद	जि	त	—	—	—	—	—	—
८	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	गम	पा	पा	पा	मा	मा	गा	गा
	पद	हर	—	—	—	—	—	—	—
९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८

	स्वर	धा	नी	मा	पा	गा	गा	मा	गा
	पद	भ	व	ह	र	क	म	ल	गृ
१०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	मा	मा	मा	मा	मा	मा	मा
	पद	ह	—	—	—	—	—	-	—
११	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	रे	गा	मा	पा	पम	पा	पा	नी
	पद	शि	वं	शा	—	तं	सं	—	नि
१२	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रे	रे	रे	रे	पां	पां	मा	मा
	पद	वे	—	श	न	म	पू	—	वँ
१३	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	धा	नी	सर्निनि	धा	पा	पा	पां	पा
	पद	भू	ष	—	ण	ली	—	ल	—
१४	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	नी	मा	पा	गां	गां	गां	गा
	पद	उ	र	गे	—	श	भो	—	ग
१५	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	पा	पा	पा	घा	मा	गा	मा
	पद	भा	—	सु	र	शु	भ	पृ	थु
१६	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२

	स्वर	धा	धा	नी	धा	पा	पा	पा	पा
	पद	लं	—	—	—	—	—	—	—
१७	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	रे	गा	मा	पा	पम	पा	पा	नी
	पद	अ	च	ल	प	ति	सू	नु	—
१८	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	रे	रे	रे	पा	पां	पां	पा
	पद	क	र	प	—	क	जा	—	म
१९	ताल	आ०		ग०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	पा	पा	पा	पा	धा	मा	मा	मा
	पद	ल	वि	ला	—	स	की	—	ल
२०	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	पां	गा	गम	गा	गा	गां	गा
	पद	न	वि	नो	—	दं	—	—	—
२१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	रे	रें	गा	गा	मा	मां	मा	मा
	पद	स्फ	टि	क	म	णि	र	ज	त
२२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	पा	नी	मा	नी	धा	पा	पा
	पद	सि	त	न	व	द्रु	कू	—	ल
२३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४

	स्वर	सा	सा	धनि	धा	पा	पा	पा	पा
	पद	क्षी	—	रोद	—	सा	—	—	ग
२४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	सा	सा
	पद	र	नि	का	—	श	—	—	—
२५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	रे	रे	गा	गा	मा	मा	पा	पा
	पद	अ	ज	शि	रः	क	पा	—	ल
२६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	रे	रे	गा	मा	रिग	मा	मा
	पद	पृ	थु	भा	—	—	ज	न	—
२७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मा	नी	पा	नी	गा	गा	गा	गा
	पद	वं	—	दे	—	सु	ख	द	—
२८	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	मा	पा	पा	धा	धनि	निध	मा
	पद	ह	र	दे	—	ह	म	म	ल
२९	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	धा	धा	सा	नी	धा	नी	पा	पा
	पद	म	धु	सू	—	द	न	—	सु
३०	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

	स्वर	रे	रे	रे	रे	मा	पा	धा	मा
	पद	ते	—	जो	—	धि	क	—	सु
३१	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	नी	नी	नी	धा	पा	मा	मा
	पद	ग	ति	यो	—	—	—	—	—
३२	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	परिग	गा	गा	गा	गा	गा	गा
	पद	—	—	निं	—	—	—	—	—

प्रस्तुत प्रस्तार में 'रे, गं, मं, पं, धं, निं, स, रे, ग,म, प, ध, नि, स, रे' पन्द्रह स्वरों का प्रयोग है। प्रयुक्त मन्द्रतम स्वर 'न्यास' से पर तथा अंश-संवादी है। तारस्थानीय ऋषभ अंशस्वर पञ्चम से पाँचवाँ है।

पञ्चमादि मूर्च्छना स्थापित करने पर उपर्युक्त पन्द्रह स्वर, अठारह सारोवाली किन्नरी, चौथे पर्दे से अठारहवे पर्दे तक प्राप्त करायेगी। चौदह पर्दोवाली किन्नरी पर अन्तिम चार स्वर मीड द्वारा मिलेंगे।

पंचम अध्याय

साधारण

स्वर-साधारण

पूर्व स्थिति का जहाँ पूर्णतया अन्त न हो और पर स्थिति को भी जहाँ अनागत न कहा जा सके, वह स्थिति 'साधारण' स्थिति होती है। मान लीजिए, छाया मे जाने पर शीत का अनुभव होता है और धूप में जाने पर पसीना आने लगता है, तो न तो यही कहा जा सकता है कि शिशिर का अन्त हो गया है (क्योकि छाया मे शीत का अनुभव होता है) और न यही कहा जा सकता है कि वसन्त नहीं आया है, (क्योकि धूप मे पसीना आ रहा है)। फलतः शिशिर और वसन्त दोनों की विशेषताओं से युक्त इस काल मे 'काल-साधारणता' है।[1]

इसी प्रकार यदि कोई स्वर अपनी शुद्ध स्थिति की अपेक्षा चढ गया हो और अगले स्वर तक भी न पहुँचा हो, तो उसकी 'साधारण' अवस्था होगी, क्योकि न तो वह अपने मूल स्थान पर रहा है और न उसने अग्रिम स्वर की स्थिति प्राप्त की है।

गान्धार जव अपने स्थान से दो श्रुति चढ़ जाता है, अर्थात् मध्यम की दो श्रुतियों का ग्रहण कर लेता है, तव 'अन्तरगान्धार' कहलाता है।[2]

निपाद जव अपने स्थान से दो श्रुति चढ़ जाता है, अर्थात् षड्ज की दो श्रुतियो का ग्रहण कर लेता है, तव 'काकलीनिषाद' कहलाता है।[3]

१—छायासु भवति शीतं प्रस्वेदो भवति चातपस्थस्य।
न च नागतो वसन्तो न च निःशेषः शिशिरकालः॥
इति कालसाधारणता। —भरत०, व० स०, पृ० ४३६

२—एव गान्धारोऽप्यन्तरस्वरसंज्ञो गान्धारो न मध्यमः। —भरत०, व० स०, पृ० ४३७

३—द्विश्रुतिप्रकर्षणान्निषादवान् काकलीसञ्ज्ञो निषाद., न षड्ज.। द्वाभ्याम् अन्तरस्वरत्वात्। —भरत०, वं० सं०, पृ० ४३७

निषाद जब अपने स्थान से एक प्रमाणश्रुति चढ़ता है तब 'कैशिकनिषाद' कहलाता है और षड्ज जब अपने स्थान से एक प्रमाणश्रुति उतर जाता है, तब 'च्युतषड्ज' कहलाता है। ये दोनो क्रियाएँ होने पर कैशिकनिषाद और च्युतषड्ज में दो श्रुतियों का अन्तर रह जाता है।[४]

गान्धार जब अपने स्थान से एक प्रमाणश्रुति चढ़ता है, तब 'साधारण गान्धार' कहलाता है और और जब मध्यम अपने स्थान से एक प्रमाणश्रुति उतर जाता है, तब 'च्युतमध्यम' कहलाता है। ये दोनो अवस्थाएँ सम्पन्न होने पर साधारण गान्धार और च्युतमध्यम मे दो श्रुतियों का अन्तर रह जाता है।[५]

शार्ङ्गदेव ने इन चारो स्वर-साधारणो को क्रमशः अन्तर-साधारण, काकली-साधारण, षड्ज-साधारण एवं मध्यम-साधारण कहा है।[६]

प्रथम दो अवस्थाएँ, अन्तर-साधारण और काकली-साधारण एक स्वर में उत्पन्न विकार का परिणाम होती हैं, परन्तु 'षड्ज-साधारण' एवं 'मध्यम-साधारण' अवस्थाएँ दो-दो स्वरो की स्थान-विकृति का परिणाम है।

यह कहा जा चुका है कि प्रत्येक चतुःश्रुतिक स्वर की आदिम एवं अन्तिम श्रुतियो का परिमाण 'ग' है*, अर्थात् वे प्रमाणश्रुतियाँ हैं। षड्ज-साधारण मे कैशिक-निषाद अपने शुद्ध स्थान से 'ग' अन्तर चढ़ा हुआ है और षड्ज अपने स्थान से 'ग' अन्तर उतरा हुआ है। इसी प्रकार मध्यम-साधारण मे साधारण गान्धार अपनी शुद्ध स्थिति से एक 'ग' अन्तर चढा हुआ है और मध्यम अपनी मूल स्थिति से एक 'ग' अन्तर उतरा हुआ है। 'ग' अन्तर ही 'कैशाग्र' अन्तर है। षड्ज-साधारण एवं मध्यम-साधारण अवस्थाओ में स्वरो का अपने स्थान से एक 'ग' अन्तर हटना प्रयोग (गान-वादन क्रिया) की सूक्ष्मता का परिणाम है, इसी प्रयोगसूक्ष्मता के कारण इसे 'कैशिक' नाम दिया गया

४—निषादो यदि षड्जस्य श्रुतिमाद्या समाश्रयेत्।
ऋषभस्त्वन्तिमां प्रोक्तं षड्जसाधारणं तदा।
—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १४९

५—मध्यमस्यापि गपयोरेवं साधारणं मतम्। " " " "

६—स्वरसाधारण तत्र चतुर्धा परिकीर्तितम्॥
काकल्यन्तरषड्जैश्च मध्यमेन विशेषणात्। " " १४७

*देखिए, प्रथम अध्याय में श्रुतियो के परिमाण।

है।[७] षड्ज-साधारण का प्रयोग षड्जग्राम मे और मध्यम-साधारण का प्रयोग मध्यम-ग्राम मे होता है।

निम्नस्थ मण्डल-प्रस्तार मे यह स्थिति स्पष्ट है।

पहली श्रुति पर स्थित कैशिकनिषाद अपने मूलस्थान बाईसवीं श्रुति से एक 'ग' अन्तर चढ गया है और तीसरी श्रुति पर स्थित च्युत षड्ज अपने मूलस्थान चौथी श्रुति से एक 'ग' अन्तर उतर गया है।

दसवी श्रुति पर स्थित साधारण गान्धार अपने मूल स्थान नवी श्रुति से एक 'ग' अन्तर चढ़ गया है और बारहवी श्रुति पर स्थित च्युतमध्यम अपने मूलस्थान तेरहवीं श्रुति से एक 'ग' अन्तर उतर गया है। *

७—साधारणोऽत्र स्वरविशेष इति षड्जसाधारणम् ।
अस्य तु प्रयोगसौक्ष्म्यात् कैशिकमिति नाम निष्पद्यते ।

—भरत०, ब० सं०, पृ० ४३७

* यह केशाग्र अन्तर प्रयोग में व्यवहार्य स्वर-संगति का परिणाम है। मध्ययुग में उत्पन्न कुछ राग दोनों ग्रामो की थोड़ी-थोडी विशेषताओ को धारण करने के कारण 'द्विग्राम'

कैशिक निषाद और च्युत षड्ज में तथा साधारण गान्धार और च्युत-मध्यम में प्राप्त होनेवाला द्विश्रुतिक अन्तर 'क, ख'; ऋषभ-गान्धार, धैवत-निषाद, काकली-निषाद-षड्ज और अन्तर गान्धार-मध्यम में प्राप्त होनेवाले द्विश्रुतिक अन्तर 'ख, ग' से और निषाद, काकलीनिषाद एवं गान्धार अन्तरगान्धार में प्राप्त होनेवाले द्विश्रुतिक अन्तर 'ग, क' से विलक्षण है। फलतः यह द्विश्रुतिक अन्तर अनिष्ट न होकर इष्ट है।

महर्षि भरत ने स्वरसाधारण के दो प्रकारो, अर्थात् अन्तरगान्धार एवं काकली-निषाद का प्रयोग भी मध्यमाश मध्यमा, पञ्चमाश पञ्चमी एव षड्जांश षड्जमध्यमा जाति में बताया है।[८] 'कम्बल' और 'अश्वतर' इनका प्रयोग उन जातियों मे सामान्य रूप से बताते है, जिनमें निषाद या गान्धार अल्प हों,[९] फलतः आचार्य शार्ङ्गदेव ने षाड्जी जाति मे काकलीनिषाद के क्वचित् प्रयोग का जो विधान किया है,[१०] वह इन्हीं दोनो शास्त्रकारो के मत के अनुसार है। षाड्जी जाति मे निषाद लोप्य स्वर है।

कहलाते थे। वर्तमान 'भीमपलासी' मे 'म, प, नि, स, नि, ध, प' स्वर-समुच्चय हमें कैशिक निषाद और च्युत षड्ज का दर्शन कराता है, क्योकि इसमे कैशिक निषाद के बाद हम षड्ज का स्पर्श करके लौट आते है, परन्तु यदि षड्ज पर ठहर जायँ, तो वह अपने शुद्ध स्थान पर जाकर ठहरता है। इसी प्रकार 'नि, स, ग, म, ग, रे, स' स्वर-समुच्चय हमें साधारण गान्धार और च्युत मध्यम का साक्षात् कराता है, परन्तु जब हम मध्यम पर ठहरते है, तब वह मध्यम अपने ठीक स्थान पर लगता है। यह प्रयोग तन्त्रीबोध्य है।

८—स्वरसाधारणगतास्तिस्रो ज्ञेयास्तु जातयः।
मध्यमा पञ्चमी चैव षड्जमध्या तथैव च॥
आसामंगा (शा)स्तु विज्ञेया षड्जमध्यमपञ्चमाः।
यथास्वं .....

—भरत०, ब० सं०, पृ० ४३८

९—एतदल्पनिगास्वाहुः कम्बलाश्वतरादयः। —स० र०, अ. स०, स्वरा०, पृ० १७७

नाट्यशास्त्र के मुद्रित सस्करणो में 'अस्याल्पनिषादगान्धारासु जातिषु प्रयोगः' पाठ प्रक्षिप्त है। शार्ङ्गदेव का उपर्युक्त कथन इस सम्बन्ध मे प्रमाण है।

—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १९६

१०—पूर्णत्वे काकली क्वचित्।

जातियो में अन्तर स्वरों का प्रयोग आरोही में तथा अल्प करना चाहिए, अवरोही मे अन्तर स्वरो (अन्तर गान्धार और काकली निषाद) का प्रयोग जातियों मे सर्वथा निषिद्ध है।[11]

अन्तर स्वरो के प्रयोग की विधि इस प्रकार है—

षड्ज का उच्चारण करके क्रमशः काकली निषाद और धैवत का उच्चारण करना चाहिए अथवा 'षड्ज' एव 'काकली' का उच्चारण करके पुनः षड्ज एवं उससे परवर्ती स्वरो का उच्चारण करना चाहिए।[12]

इसी प्रकार मध्यम, अन्तर गान्धार, ऋषभ का उच्चारण या मध्यम, अन्तर गान्धार, मध्यम एव उससे परवर्ती स्वरो का उच्चारण करना चाहिए।[13]

कैशिक स्वरो (षड्ज-साधारण, मध्यम-साधारण) का उपयोग षड्जकैशिकी एवं कैशिकी जाति मे क्रमश. होता है। षड्जकैशिकी षड्जग्रामीय जाति है, अत. उसमे षड्जसाधारण का प्रयोग होता है और कैशिकी मध्यमग्रामीय जाति है, फलत. उसमें मध्यमसाधारण का प्रयोग होता है।[14]

११—अन्तरस्वरसयोगो नित्यमारोहिसंश्रयः।
कार्यः स्वल्पविशेषेण नावरोही कदाचन ॥ —भरत०, व० सं०, पृ० ४३७

१२—प्रयोज्यौ षड्जमुच्चार्य्य काकलीधैवतौ क्रमात्। ......
षड्जकाकलिनौ यद्वोच्चार्य षड्ज पुनर्व्रजेत्। तत्परान्यतमं चैव—
—स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० १४८

१३—एवं मध्यममुच्चार्य्य प्रयुञ्जीतान्तरर्षभौ।
..........मध्यमं चान्तरस्वरम्।
प्रयुज्य मध्यमो ग्राह्यस्तत्परान्यतमोऽथवा ॥
—स० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १४८

१४—यत्कैश्चिदेते सम्प्रोक्ते कैशिके सूक्ष्मदृष्टिभिः।
साधारणेन तद्राजराजसम्मतिमर्हति ॥
यतोऽभिनवगुप्तोक्तिरहस्यज्ञो क्षमाधिपः।
अन्यथैतद्वचोगुम्फयुक्तिव्याकरण व्यधात् ॥
कैशिकीषड्जकैशिक्यौ यतस्तत्त्वज्ञसम्मते।
एते कैशिकमाश्रित्य प्रवृत्ते ....।
क्षेत्रराजमतादेतत्स्वरसाधारणं स्फुटम् ॥

—कुम्भ, भ० को०, पृ० ९६५

षड्ज-साधारण अवस्था मे षड्ज की अन्तिम श्रुति ऋषभ के अधिकार-क्षेत्र में चली जाती है, फलतः ऋषभ चतुःश्रुतिक हो जाता है। मध्यम-साधारण अवस्था मे मध्यम की अन्तिम श्रुति माध्यमग्रामिक पञ्चम ले लेता है, फलतः वह चतुःश्रुतिक हो जाता है।

कैशिक स्वरों की प्रयोगजन्य अवस्था को देखते हुए ही मूर्च्छना-विधान में कैशिक-स्वरयुक्त मूर्च्छनाएँ नही मानी गयी है,[१५] अपितु अन्तर एवं काकली मे ही उनका अन्तर्भाव मान लिया गया है।[१६] इसके अतिरिक्त षड्ज-साधारण एव मध्यम-साधारण का प्रयोग ग्रामविशेष में नियत होने के कारण मूर्च्छनाओ के साधारण (अन्तर-काकलीयुक्त) प्रकार-निरूपण के प्रसंग मे षड्ज-साधारण एव मध्यम-साधारण की चर्चा अनुपयोगी है, क्योंकि भरत ने स्पष्ट कहा है कि षड्ज-साधारण षड्जग्राम मे और मध्यम-साधारण मध्यमग्राम मे होता है। यह आचार्य-रहस्य असम्प्रदायज्ञ व्यक्तियो के लिए दुर्ग्रह है।[१७]

साधारण स्वरो का ग्रामविशेष मे प्रयोग जाति-प्रकरण मे है। रागो मे अन्तर गान्धार एव काकली-निषाद का प्रयोग किसी ग्रामविशेष तक सीमित नही रहता।

१५—षड्जमध्यमयोः साधारणीकृतयोः स्वरूपेण भेदकत्वे सम्भवत्यपि काकल्यन्तरयोः साधारणयोरन्तर्भूतत्वेन तयोः पृथग्भेदकत्वम्।
—आचार्य्य कल्लिनाथ, सं० र० टी०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १०८

१६—साधारणस्वरौ निषादगान्धारवन्तौ तदादिविकृतास्तत्रैवान्तर्भूताः।
—मतङ्ग, कल्लिनाथोद्धृत, सं० र० टी०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १०८

१७—किञ्च ग्रामद्वये मूर्च्छनासाधारणप्रकारभेदनिरूपणावसरे प्रतिनियतग्रामवर्तिनोः षड्जमध्यमसाधारणयोरनुपयोगाच्च। यथोक्त भरतेन—'षड्जग्रामे षड्जसाधारणं मध्यमग्रामे मध्यमसाधारणम्' इति।........इत्याचार्यरहस्यमसंप्रदायविदुषां कृते दुर्ग्रहम्।
—आचार्य कल्लिनाथ, सं० र० टी०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १०८

यहाँ यह स्पष्टतया समझ लेना चाहिए कि अल्पनिषाद-गान्धार जातियो में अन्तरगान्धार एवं काकलीनिषाद का ही प्रयोग अभीष्ट है। षड्जसाधारण एवं मध्यमसाधारण के प्रयोग मे निषाद और गान्धार की अल्पता वाञ्छनीय नही। षड्जसाधारण के प्रयोगस्थल षड्जकैशिकी जाति एवं मध्यमसाधारण के प्रयोगस्थल कैशिकी जाति मे निषाद-गान्धार की अल्पता नही है।

नाटयशास्त्र के मुद्रित संस्करणो मे 'अस्याल्पनिषादगान्धारासु जातिषु प्रयोग.' पाठ प्रक्षिप्त है; शार्ङ्गदेव ने यह मत कम्बल और अश्वतर का बतलाया है और फलतः

स्वर-साधारण के विषय मे कुछ परवर्ती विद्वानो ने कहा है कि जब श्रुति के उत्कर्प से किसी स्वर का स्वरूप अस्फुट और लुप्त-सा हो जाता है, तब गीतज्ञ व्यक्ति उस स्थिति को स्वर-साधारण कहते है। षड्ज-पञ्चम एव ऋषभ-धैवत की श्रुतियो का अत्युत्कर्ष (दो श्रुतियो का उत्कर्प) नही होता। (षड्ज-पञ्चम के परवर्ती स्वर ऋषभ-धैवत त्रिश्रुतिक और ऋपभ-धैवत के परवर्ती स्वर गान्धार-निषाद द्विश्रुतिक है, अत)अत्युकर्प से षड्ज और पञ्चम मे वेसुरापन उत्पन्न हो जाता है और अवधान-हीनता आ जाती है। ऋपभ और धैवत को दो श्रुति चढाने पर क्रमश. गान्धार एवं निषाद मे उनका सकर हो जायगा और पश्चाद्वर्ती स्वरो की अभिव्यक्ति नही होगी, फलतः अपनी शुद्ध अवस्था से दो श्रुति चढे हुए अन्तर-गान्धार एव काकली-निपाद मे दो श्रुतियो का स्फुट उत्कर्प होता है।[१८]

अल्पनिषाद जाति 'षाड्जी' मे काकली का भी विधान किया है। यह सत्य है कि मध्यमा, पञ्चमी तथा षड्जमध्यमा जातियाँ भी 'अल्पनिपाद-गान्धार' है, परन्तु भरत के द्वारा इन विशिष्ट जातियो के नामो का निर्देश इस बात का सूचक है कि षाड्जी जैसी अल्पनिपाद जाति में काकली-प्रयोग भरत को वाञ्छनीय नही । भरतोक्त तीनों जातियो की अल्पनिपाद-गान्धारता देखकर ही कम्वल और अश्वतर ने इस नियम की सीमा बढ़ाकर अन्य जातियो को भी इस नियम के क्षेत्र मे सम्भवत. ले लिया है। फलतः षाड्जी मे भरत के द्वारा अनुक्त काकलीविधान कम्वल और अश्वतर को सम्मत होने के कारण ही शार्ङ्गदेव को माननीय हुआ है।

"स्वरसाधारण प्रोक्त मुनिभिर्भरतादिभि. ।
अशेषु समपेष्वेतद् यथास्व नियमाद् भवेत् ।
एतदल्पनिगास्वाहु. कम्वलाश्वतरादय. ॥"

—स० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १७७

कहकर आचार्य शार्ङ्गदेव ने दोनो मतो का स्पष्टतया पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। फलत· यह सिद्ध है कि शार्ङ्गदेव को उपलब्ध नाटचशास्त्र में 'अस्याल्प-निपादगान्धारादिपु जातिपु प्रयोग.।' पाठ नही था । नाटचशास्त्र के मुद्रित संस्करणो मे उपलभ्यमान यह पाठ प्रक्षिप्त है और अवसरानुकूल न होने के कारण असंगत है। इस पाठ ने अनेक विचारको के समक्ष उलझन उपस्थित की है।

१८—यदा श्रुतिसमुत्कर्पात् स्वनो लुप्त इवास्फुट. ।
गीतज्ञैर्गीयते ज्ञेय स्वरसाधारणं तदा ॥
अत्युत्कर्पस्तु सपयोर्न भवेद् रिधयोरपि ।

उपर्युक्त विधान बाईसो श्रुतियो का प्रत्यक्षीकरण होने पर अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है।

जाति-साधारण—

एक ग्राम मे उत्पन्न समानांश जातियों में होनेवाला समान गान जाति-साधारण है।[१९] दत्तिल इत्यादि मनीषियो ने शुद्ध-कैशिक-मध्यम इत्यादि रागो को ही जाति-साधारण कहा है।[२०]

वैस्वर्याद् (र्य) व्यवधानाच्च (धान च) श्रुतीना तेन जायते ॥
गन्योस्तु ताभ्या साङ्कर्य्ये स्वरव्यक्तिर्न लभ्यते ।
पारिशेष्यादतो गन्योः श्रुत्युत्कर्ष. स्फुटो भवेत् ॥
—पण्डितमण्डली, भ० को०, पृ० ७१३

आधुनिक स्वरो पर पृथक् विचार किया गया है। यहाँ केवल इतना समझ लेना चाहिए कि कोमल धैवत और कोमल ऋषभ पञ्चम एवं षड्ज से 'क' 'ख' अन्तर पर स्थित, धैवत और ऋषभ की, दूसरी श्रुति पर नही उत्पन्न होते, न हो सकते है।

१९—(अ) 'जातिसाधारणमेकांशाना विशेषाज्जातीनां तु समवायात् ।'
—भरत०, ब० सं०, पृ० ४३७

(आ) एकग्रामोद्भवास्वेकांशासु जातिषु यद् भवेत् ।
समानं गानमार्य्यास्तं जातिसाधारणं जगुः ॥
—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १५०

(इ) एकग्रामसमुत्पन्नास्वेकांशास्वपि जातिषु ।
यत्सम गानमार्य्यास्तज्जातिसाधारणं जगु. ॥
—पण्डित०, भ० को०, पृ० ७१७

(ई) एकांशोपचितास्वेकग्रामजेषु (जासु) च जातिषु ।
यद् गानं समतां प्राप्तं जातिसाधारण तु तत् ॥
—कुम्भ०, भ० को०, पृ० ९६६

२०—(अ) जातिसाधारणं केचिद् रागानेव प्रचक्षते ।
—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १५०

(आ) केचिद् रागा एव शुद्धकैशिकमध्यमादयो जातिसाधारणमित्याहुः ।
—सिंह०, सं० र०, अ० सं, स्वरा०, पृ० १५१

(इ) दत्तिलाद्याः पुनरिदं रागानेव प्रचक्षते ।
—कुम्भ०, भ० को०, पृ० ९६६

(ई) रागानेवोचुरपरे जातिसाधारणं बुधाः ।
—पण्डित०, भ० को०, पृ० ९२१

षष्ठ अध्याय

राग

महर्षि भरत ने सात ग्रामराग गिनाये है, उनके प्रयोग के अवसर भी निर्दिष्ट किये है,[1] अन्तर स्वरो के प्रयोग से जातिरागो का जन्म भी बताया है[2], परन्तु 'राग' का लक्षण नही किया है। महर्षि ने ग्रामरागो को जाति से उत्पन्न बताया है।[3] उन्होने यह भी कहा है कि लोक में जो कुछ गाया जाता है, वह सब कुछ जातियो मे स्थित है।[4] वस्तुतः जातियों के विशद परिसख्यान ने, जहाँ तिरसठ अंश है, तथा लक्षणविकृति से जहाँ जातियो के अनेक अवान्तर भेद सम्भव है, जातियो के क्षेत्र को इतना विस्तृत बना दिया है कि उसमे किसी भी 'राग' का अन्तर्भाव हो सकता है।

१—मुखे तु मध्यमग्राम. षड्जः प्रतिमुखे भवेत्।
गर्भे साधारितश्चैव अवमर्शे तु पञ्चम.॥
संहारे कैशिकः प्रोक्त. पूर्वरङ्गे तु षाडव.।
चित्रस्याष्टादशागस्य त्वन्ते कैशिकमध्यमः।
शुद्धाना विनियोगोऽयं ब्रह्मणा समुदाहृतः॥

—भरत०, भ० को०, पृ० ५४२

२—जातिरागं श्रुतिञ्चैव नयन्ते चान्तरस्वरा.।

—भरत०, ब० स०, पृ० ४३७

३—नन्वेते रागा ग्रामविशेषसबद्धा इति कुतोऽयं विशेषलाभः ?
उच्यते, भरतवचनादेवासौ विशेषो लभ्यते। तथा चाह भरतमुनि.—
'जातिसम्भूतत्वाद् ग्रामरागाणाम्' इति।

—कल्लि०, सं० टी०, अ० स०, राग०, १०८

४—यत्किञ्चिद् गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्।

—भरत०, " " "

षड्ज इत्यादि स्वरो और स्थायी इत्यादि वर्णो से विभूषित वह ध्वनिविशेष राग है, जिससे मनुष्यो के मन का रञ्जन होता हो[५]। विशिष्ट स्वर, वर्ण (गानक्रिया) से अथवा ध्वनिभेद के द्वारा जो जन-रञ्जन मे समर्थ है, वह राग है।[६] जो राग स्थायी, आरोही, अवरोही, सञ्चारी वर्णो से शोभन हो, वह सब कुछ (वर्णचतुष्टय) जहाँ दिखाई देता हो, वे राग कहे गये हैं।[७] जिनके द्वारा तीनो लोको मे विद्यमान प्राणियों के हृदय का रञ्जन होता है, भरत इत्यादि मुनियो ने उन्हे राग कहा है।[८]

रञ्जन के कारण ही राग की संज्ञा 'राग' है, यही राग की व्युत्पत्ति है।[९] राग शब्द 'अश्वकर्ण' जैसे शब्दो के समान रूढ, 'मन्थ' इत्यादि शब्दो के समान यौगिक अथवा 'पंकज' शब्द के समान योगरूढ है।[१०] यदि किसी व्यक्ति को कोई राग नही भाता, तो वह राग उसके लिए रञ्जक नही, परंतु उस अरञ्जक राग को भी रूढि के कारण राग ही कहा जाता है।[११]

५—योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविशेषित.।
रञ्जको जनचित्ताना स च राग उदाहृतः॥
—मतङ्ग, भ० को०, पृ० ९२१

६—स्वरवर्णविशेषेण ध्वनिभेदेन वा पुनः।
रज्यते येन यः कश्चित् स रागः सम्मतः सताम्॥
—मतङ्ग, भ० को०, पृ० ९२१

७—चतुर्णामपि वर्णानां यो रागः शोभनो भवेत्।
स सर्वो दृश्यते येषु तेन रागा इति स्मृता.॥
—काश्यप, कल्लि०, स० टी०, अ. सं०, राग०, पृ० ६-७

८—यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्त्रितयवर्तिनाम्।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः॥
—शुभङ्कर, भ० को०, पृ० ९२२

९—इत्येवं रागशब्दस्य व्युत्पत्तिरभिधीयते।
रञ्जनाज्जायते रागो व्युत्पत्तिः समुदाहृता॥
—मतङ्ग, भ० को०, पृ० ९२३

१०—अश्वकर्णादिवद् रूढो यौगिको वापि मन्थवत्।
योगरूढोऽथवा रागो ज्ञेयः पकजशब्दवत्॥
—मतङ्ग, कल्लि०, स० र०, अ० स०, राग०, पृ० २

११—रागशब्दस्य केवलरूढत्वं तु येन केनचिद् रागेण यः कश्चन न रज्यते, तं प्रति तस्यारञ्जकत्वात् 'अयं रागो मह्यं न रोचते' इति तद्वाक्यप्रयोगे द्रष्टव्यम्।

जातियाँ वास्तव मे 'मूल राग' है जिनमे विकार होने से अनेक रागो का जन्म होता है। जातियो के दस लक्षणो में प्रमुख लक्षण 'अश' का वर्णन करते हुए उसके लक्षण मे महर्षि ने कहा है कि राग का जिसमें निवास होता है और राग जिस स्वर से प्रवृत्त होता है. . .वह अशस्वर है।[12] इससे यह सिद्ध है कि महर्षि जातियो को भी 'राग' ही मानते है। ग्रामराग जातियो या मूल रागो से उत्पन्न अथवा उनके विकृत रूप हैं। महर्षि के कथन के अनुसार यदि अन्तर स्वरों का प्रयोग अवरोह मे भी हो, तो जातियाँ 'जातिराग' हो जाती हैं।[13]

यहाँ हमारे विचार का प्रधान विषय महर्षि के द्वारा निर्दिष्ट निम्नलिखित सात शुद्ध राग है[14]—

१—मध्यमग्राम (मध्यमग्रामीय)
२—षड्जग्राम (षड्जग्रामीय)
३—साधारित (षड्जग्रामीय)
४—पञ्चम (मध्यमग्रामीय)
५—कैशिक (मध्यमग्रामीय)
६—षाडव (मध्यमग्रामीय)
७—कैशिक मध्यम (षड्जग्रामीय)

(१) मध्यमग्राम

कश्यप का कथन है—

गान्धारी, मध्यमा और पञ्चमी जाति से मध्यमग्राम नामक राग का जन्म हुआ है। इसमे षड्ज अंशस्वर और मध्यम न्यासस्वर होता है।[15]

शार्ङ्गदेव का विधान है—

१२—रागस्तु यस्मिन् वसति यस्माच्चैव प्रवर्तते । —भरत०, व० सं०, पृ० ४३३

१३—अन्तरस्वरसयोगो नित्यमारोहिसंश्रयः ।
कार्यः स्वल्पविशेषेण नावरोही कदाचन ॥
क्रियमाणोऽवरोही स्यादल्पो वा यदि वा बहुः ।
जातिराग श्रुतिञ्चैव नयन्ते चान्तरस्वराः ॥ —भरत०, व० सं०, ४३७

१४—देखिए, सकेत १

१५—गान्धारीमध्यमाजात्यो. सपञ्चम्योः समुत्थितः ।
षड्जांशो मध्यमग्रामो मध्यमो न्यास एव च ॥ —कश्यप, भ० को० ४६५

"मध्यमग्राम राग का विनियोग हास्य एवं शृङ्गार मे है। यह राग गान्धारी, मध्यमा और पञ्चमी जातियो से मिलकर उत्पन्न हुआ है। काकली-निषाद का प्रयोग इसमे विहित है। इस राग का अश-ग्रह स्वर मन्द्र षड्ज, न्यास स्वर मध्यम और मूर्च्छना (मध्यमग्रामीय मध्यमादि) 'सौवीरी' है। 'प्रसन्नादि' और 'अवरोही' के द्वारा मुखसन्धि मे इसका विनियोग है। यह राग ग्रीष्मऋतु के प्रथम प्रहर में सदा रञ्जक है।"[१६]

आलाप

सां नीधापांधां धांधरि। गांसा। रिगानीसां। सगपांपपप निनिपनि सां सां गपसानिधनिनि निरिगासा। पां मं पं निधामा।

करण

निनिपपगंगंसंसंरिगं। नि सं सासा। ससंगगंपंपधंधं मधनिसनिध पापापापा पनी पनी सांसांसां गागासागासनी धनीनीनिनिरिगांसांसांपांपामापानिध पामामा।

पद

अमरगुरुममरपतिमजयं
जितमदनं सकलशशितिलकम्।
गणशतपरिवृतमशुभहरं
प्रणमत सितवृषरथगमनम्॥

आक्षिप्तिका—चञ्चत्पुट ताल

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सां	सां	गां	गां	पां	पां	मा	मा
	पद	अ	म	र	गु	रु	म	म	र

१६—गान्धारीमध्यमापञ्चम्युद्भवः काकलीयुतः।
मन्यासो मन्द्रषड्जांशग्रहः सौवीरमूर्च्छनः॥
प्रसन्नाद्यवरोहिभ्यां मुखसंधौ नियुज्यते।
मध्यमग्रामरागोऽयं हास्यशृंगारकारकः॥
ग्रीष्मेऽह्नः प्रथमे यामे ध्रुवप्रीत्यै......। —सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ५९

२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	गां	मा	मां	मा	धा	नी	सां	सा
	पद	प	ति	म	ज	यं	–	–	–

३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सां	सां	मां	मां	पां	पां	सां	सा
	पद	जि	त	म	द	नं	स	क	ल

४	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	रे	गा	नी	सा	सा	सा	सां	सा
	पद	श	शि	ति	ल	कं	–	–	–

५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	नी	नी	नी	नीं	धा	पा	मा	मा
	पद	ग	ण	श	त	प	रि	वृ	त

६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	गां	मां	गां	मां	धा	नी	सा	सा
	पद	म	शु	भ	ह	र	–	–	–

७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	रें	गां	नी	सां	सा	पा	पा
	पद	प्र	ण	म	त	सि	त	वृ	ष

८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	सा	सा	निध	पा	मा	मा	मा	मा
	पद	र	थ	ग	म	नं	–	–	–

उपर्युक्त आक्षिप्तिका मे 'सं, रे, गं, मं, प, धं, नि, स, रे, ग, म, प; ध, नि' इन चौदह स्वरो का उपयोग हुआ है। मध्यमादि मूर्च्छनायुक्त अठारह सारोवाली किन्नरी के चौथे पर्दे से सत्रहवे पर्दे तक ये चौदहो स्वर मिल जायँगे।

इस राग मे 'ग, रि, स, नि, ध, प, म' अवरोही वर्ण प्रयुक्त हो सकता है, तदनन्तर 'मां मां मा' के रूप मे प्रसन्नादि अलंकार सम्मिलित किया जा सकता है।

आक्षिप्तिका मे प्रयुक्त स्वरो की सख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(अंश)	१९
ऋषभ		२
गान्धार		७
मध्यम	(अंश, संवादी, न्यास)	१५
पञ्चम		८
धैवत		४
निषाद		१०

(२) षड्जग्राम

कश्यप का कथन है—

"षड्जग्राम षाड्जी और षड्जमध्यमा जाति से उत्पन्न सम्पूर्ण राग है। इसमे अशस्वर षड्ज और न्यासस्वर मध्यम है।"[१७]

शार्ङ्गदेव कहते हैं—

"षड्जग्राम नामक राग षड्जमध्यमा जाति से उत्पन्न हुआ है, सम्पूर्ण राग है। इसका ग्रह एवं अंशस्वर तार षड्ज है, न्यासस्वर मध्यम है, अपन्यास स्वर षड्ज है, अवरोही और प्रसन्नान्त अलंकार इसमे प्रयोज्य है। इसकी मूर्च्छना षड्जादि (उत्तर-मन्द्रा) है, इसमें काकली-निषाद एव अन्तर-गान्धार का प्रयोग होता है, वीर, रौद्र, अद्भुत रसो में, (नाटक की) प्रतिमुख (सन्धि) मे इसका विनियोग है। इस राग का देवता बृहस्पति है और वर्षाऋतु, दिन के प्रथम प्रहर मे यह गेय है।"[१८]

१७—षड्जांशो मध्यमन्यासं स्यात् षाड्जीषड्जमध्ययोः।
षड्जग्राम इति प्रोक्तः सम्पूर्णस्वरकस्तथा॥ —कश्यप० भ० को०, पृ० ६८८

१८—षड्जमध्यमया सृष्टस्तारषड्जग्रहांशक.।
सम्पूर्णो मध्यमन्यास.ः षड्जापन्यासभूषितः॥

आलाप

सं सं (स स)* री गधगरिस सनिधापाधाधारीगासां। री गा सा सग पनि धनिस सा सा। गसरिग पधनिप मामा।

करण

रीरी गाधा गरि सासा नीधपापा। रीरी गध परि सा सा सा सा। सा सा गानिधा रीरीगा। धा गारी सा सा निधपापा। री री पापा निधनि सा सा सा। सरि सरि धनिध पमामामामा।

पद

स जयतु भूताधिपतिः
परिकरभोगीन्द्रकुण्डलाभरणः।
गजचर्मपटनिवसनः
शशाङ्कचूडामणिः शम्भुः॥

आक्षिप्तिका—ताल चञ्चत्पुट

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	रें	रे	गा	सा	गा	रे	गा	सा
	पद	स	ज	य	तु	भू	—	ता	—

अवरोहिप्रसन्नान्तर्भूष. षड्जादिमूर्च्छन. ।
काकल्यन्तरसयुक्तो वीरे रौद्रेऽद्भुते रसे ॥
विनियुक्त प्रतिमुखे वर्षासु गुरुदैवतः।
गेयोऽह्नः प्रथमे यामे षड्जग्रामाभिधो बुधैः ॥

—स० र०, अ० सं०, राग०, पृ० २६—२७

* लक्षण मे तार षड्ज को इस राग का अंश एवं ग्रहस्वर माना गया है। रत्नाकर के मुद्रित सस्करणो मे इसके आलाप का आरम्भ मन्द्र षड्ज से हुआ है, जो हमारी दृष्टि मे लिपिक के प्रमाद का परिणाम है।

२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	धा	पा	पा	रे	रे	गा	धा
	पद	धि	प	तिः	—	प	रि	क	र
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	गा	रे	सा	सा	सा	सा	सा	सा
	पद	भो	—	गी	द्र	—	कुं	—	ड
४	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	सा	सा	गा	धनि	नी	नी	नी	नी
	पद	ला	—	भः	र	णः	—	—	—
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	गा	रिग	धा	धा	गा	गरि	सा	सा
	पद	ग	ज	च	—	मं	प	ट	नि
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	नी	धा	पा	पा	रे	रे	पा	पा
	पद	व	स	नः	—	श	शां	—	क
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	धा	नी	सा	सा	सा	सा	रिसरि
	पद	चू	—	डा	म	णिः	—	—	—
८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	पा	धा	निध	पा	मां	मां	मां	मा
	पद	शं	—	—	—	भुः	—	—	—

प्रस्तुत आक्षिप्तिका में स्वरसख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(अंश, ग्रह, अप०)	१७
ऋषभ		१२
गान्धार		१०
मध्यम	(न्यास)	४
पञ्चम		८
धैवत		९
निषाद		१०

प्रस्तुत राग का आलाप ग्रहस्वर षड्ज से आरम्भ हुआ है और न्यासस्वर मध्यम पर उसकी समाप्ति हुई है, जो न्यासस्वर है। करण और आक्षिप्तिका का आरम्भ अशस्वर से न होकर ऋषभ से हुआ है, जो करण एवं आक्षिप्तिका को प्रयोग का अनिवार्य अङ्ग सिद्ध करता है। जातियो के प्रस्तार सदा ग्रहस्वर से आरम्भ हुए हैं, परन्तु रागो की आक्षिप्तिकाओ मे ग्रहस्वर से आरम्भ करने का अनिवार्य बन्धन नही। करण और आक्षिप्तिका की समाप्ति न्यासस्वर पर ही हुई है।

(३) साधारित (शुद्ध साधारित)

शार्ङ्गदेव का कथन है—

"शुद्ध साधारित राग पड्ज-मध्यमा जाति से उत्पन्न हुआ है, तार पड्ज इसका ग्रह एव अंशस्वर है, निपाद और गान्धार का प्रयोग इस राग में अल्प है, इस राग का न्यासस्वर मध्यम है। यह राग सम्पूर्ण है और इसकी मूर्च्छना पड्जादि (उत्तरमन्द्रा) है। अवरोही प्रसन्नान्त से अलकृत है, इसका देवता सूर्य है, दिन के प्रथम प्रहर मे वीर, रौद्र रस में गेय है। गर्भसन्धि में इसका विनियोग है।"[१९]

१९—पड्जमध्यमया जातस्तारषड्जग्रहाशक ।
निगाल्पो मध्यमन्यासः पूर्णः पड्जादिमूर्च्छन. ।।
अवरोहिप्रसन्नान्तालकृतो रविदैवतः ।
वीरे रौद्रे रसे ज्ञेय. प्रहरे वासरादिमे ।
विनियुक्तो गर्भसन्धौ शुद्धसाधारितो बुधैः ।।
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १९–२०

मोक्षदेव कहते हैं—

"शुद्ध साधारित सम्पूर्ण राग है, पड्ज इसमें अंश एवं ग्रहस्वर है, निपाद-गान्धार अल्प हैं, न्यासस्वर मध्यम है, यह राग षड्ज-मध्यमा जाति से उत्पन्न हुआ है।"[२०]

आलाप*

सा पा धां रीपापाधारी पाधा सासापाधानीधा पामामा रीपा धारी पाधारी पाधा पाधापापा सासा मा। सा गा री मा। मगरि सासा सरिग पाधारीपाधारीपाधापाधा-सासा सारीगामाधापानीधापानीधापा सां सा।

करण

सस‡ पप धध रिरि पप धस साम्† २ (सस पध धध रिरि पप धस साम्)। रिरि पप धनि पप रिप धस सा सा २ (रिरि पप धनि पप रिप धस सा सा)। सस धध मंमं गारी गंमं रिग मम मगरिग सासा २ सस धस रिगं सासा पाधा निधप मंमं।

पद

उदयगिरिशिखरशेखरतुरगखुरक्षत विभिन्न घनतिमिरः।
गगनतलसकलविलुलितसहस्रकिरणो जयतु भानुः॥

आक्षिप्तिका—ताल चञ्चत्पुट

१ ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
स्वर	सा	सा	धा	नी	पा	पा	पा	पा
पद	उ	द	य	गि	रि	शि	ख	र

२०—सांशग्रहो निगाल्पः स्यात् षड्जमध्यमया कृतः।
संपूर्णो मध्यमन्यासः शुद्धसाधारितो मतः॥ —मोक्ष० भ० को०, पृ० ६७१

* प्रस्तुत आलाप और करण कल्लिनाथ की टीका के अनुसार शुद्धीकृत रूप में है।

‡ यह 'सा' के सानुस्वार उच्चारण का रूप है। 'दो' का चिह्न जिस स्वरसमूह के पुनरुच्चारण का सूचक है, वह कोष्ठक में पुनः लिख दिया गया है।

† यहाँ ग्रह तारषड्ज से होना चाहिए।

२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	धा	नी	नी	री	री	पा	पा
	पद	शे	ख	—	र	तु	र	ग	खु
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	रे	पा	पा	पा	धा	नी	पा	मा
	पद	र	—	क्ष	त	वि	भि	—	न्न
४	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	मा	धा	सा	सा	सा	सा	सा
	पद	ध	न	ति	मि	रः	—	—	—
५	ताल	आ०		नि०		वि.०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	धा	धा	सा	धा	सा	रे	गा	सा
	पद	ग	ग	न	त	ल	स	क	ल
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	रे	गा	पा	पा	पा	पा	पा	पा
	पद	वि	लु	लि	त	स	ह	—	स्र
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु.	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धा	मा	धा	मा	सा	सा	सा	सा
	पद	कि	र	—	णो	ज	य	—	तु
८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	पा	धा	निध	पा	मा	पा	मा	मा
	पद	भा	—	—	—	नुः	—	—	—

आक्षिप्तिका मे प्रयुक्त स्वरो की संख्या इस प्रकार है —

षड्ज	(अंश)	१४
ऋषभ		५
गान्धार	(अल्प)	२
मध्यम	(न्यास)	७
पञ्चम	(अश-सवादी)	१९
धैवत		१३
निषाद	(अल्प)	५

(४) पञ्चम (शुद्ध पञ्चम)

कश्यप का कथन है —

"शुद्ध पञ्चम, राग मध्यमा और पञ्चमी जातियों से मिलकर उत्पन्न हुआ है, इसमे अंश एव न्यासस्वर पञ्चम है। गान्धार और निषाद इसमें स्वल्प है।"[२१]

शार्ङ्गदेव कहते है —

"यह राग मध्यमा और पञ्चमी जातियो से उत्पन्न हुआ है, इसमें काकलीनिषाद एवं अन्तरगान्धार का प्रयोग है, इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर मध्य सप्तक का पञ्चम है, इसकी मूर्च्छना हृष्यका है, देवता कामदेव है, संचारी वर्ण इसमें शोभा देता है। ग्रीष्म ऋतु, दिन के प्रथम प्रहर मे गेय है, अवमर्श सन्धि में इसका विनियोग है।"[२२]

आलाप

पाधा मांधा नीधापापा। पधनीरिमपधामा धनि ध पापारीगा सासां। मांपमागा रीरी। रीमांपधा मा पनिधपापा। सांगा नीधा पप निरी मां पाधामाध निध पापा।

२१—मध्यमापञ्चमीजात्योःसम्भूतः शुद्धपञ्चमः।
अशोऽस्य पञ्चमो न्यासस्स्वल्पद्विश्रुतिकस्वरः॥
—कश्यप, भ० को०, पृ० ६६६

२२—मध्यमापञ्चमीजातः काकल्यन्तरसंयुतः।
पञ्चमांशग्रहन्यासो मध्यसप्तकपञ्चमः।
हृष्यकामूर्च्छनोपेतो गेयः कामादिदैवतः।
चारुसञ्चारिवर्णश्च ग्रीष्मेऽह्नः प्रहरेऽग्रिमे।
शृङ्गारहास्ययोः संधाववमर्शे प्रयुज्यते॥
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ९५

करण

पापधपधमधघनिध पापा । पापाधनि रिगपापा मधनिध पापा पपधनि । रीरी गंगं संसं गग रीरी रीरी मम पप धम धध निध पा ।

पद

जय विषमनयन मदनतनुदहन
वरवृषभगमन पुरदहन ।
नतसकलभुवन सितकमलवदन
भव मम भयहर भव शरणम् ॥

आक्षिप्तिका—चञ्चत्पुट ताल

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सां	सां	सा	सां	रीं	रीं	गां	सां
	पद	ज	य	वि	ष	म	न	य	न
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	गा	पम	गा	री	री	री	री
	पद	म	द	न	त	नु	द	ह	न
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	मां	सां	सां	सां	री	री	गां	सां
	पद	व	र	वृ	ष	भ	ग	म	न
४	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	मा	गा	पम	गा	री	री	रीं	री
	पद	पु	र	द	ह	न	—	—	—
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८

	स्वर	री	री	मां	मा	पा	मा	धा	मा
	पद	न	त	स	क	ल	भु	व	न
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	मा	धा	सां	सा	नी	धा	पा	मा
	पद	सि	त	क	म	ल	व	द	न
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धा	नी	री	मां	री	मां	पा	पा
	पद	भ	व	म	म	भ	य	ह	र
८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	मां	धा	नी	पा	पा	पा	पा
	पद	भ	व	श	र	णं	–	–	–

प्रस्तुत आक्षिप्तिका में प्रयुक्त स्वरो की सख्या निम्नलिखित है —

षड्ज	११
ऋषभ	१६
गान्धार	६
मध्यम	१४
पञ्चम (अंश)	१०
धैवत	६
निषाद	३

(५) कैशिक (शुद्ध कैशिक)

शार्ङ्गदेव का कथन है —

"शुद्ध कैशिक राग कार्म्मारवी एवं कैशिकी जाति से उत्पन्न हुआ है, इसमें अश एवं ग्रहस्वर तार षड्ज है, न्यासस्वर पञ्चम है, काकलीनिषाद का प्रयोग होता है। अवरोही वर्ण एव प्रसन्नान्त अलकार से विभूपित है और सम्पूर्ण राग है। इसकी मूर्च्छना षड्जादि (शुद्धमध्या) है। वीर, रौद्र एवं अद्भुत रस मे प्रयोज्य है, शिशिर

ऋतु मे गेय है, इसका देवता मङ्गल है। दिन के प्रथम प्रहर मे व्यवहार्य है और निर्वहण सन्धि मे इसका विनियोग है।"[२३]

मोक्षदेव कहते है —

"शुद्ध कैशिक कार्म्मारवी एवं कैशिकी जाति से उत्पन्न हुआ है, इसका न्यास पञ्चम है, इसमे काकलीनिषाद का प्रयोग है, सम्पूर्ण राग है और वीर, रौद्र एव अद्भुत रस मे इसका विनियोग है।"[२४]

आलाप

सा *सा गामा गारी गामां सानी सारी साधा माधा माधा नीधा पामा गामा पापा।

वर्तनी

सासासासां रीरीसासारीरी गागा सांसांसासा मामा गारी गारी सासारीरी पनि सासासासा रीरी मामा पापाधामा मामाधानी सासासासा रीरीगामा सासापापा धामागामा पामा पापापापा।

पद

अग्निज्वालाशिखाकेशि
माशशोणितभोजिनि ।
सर्वाहारिणि निर्मांसे
चर्म्ममुण्डे नमोऽस्तु ते ॥

२३—कार्मारव्याश्च कैशिक्याः सञ्जातः शुद्धकैशिक.।
तारषड्जग्रहाशश्च पञ्चमान्तः सकाकली ॥
सावरोहिप्रसन्नान्तः पूर्णः षड्जादिमूर्च्छनः ।
वीररौद्राद्भुतरसः शिशिरे भौमवल्लभः ।
गेयो निर्वहणे यामे प्रथमेऽह्नो मनीषिभि.॥
—स० र०, अ० स०, राग०, पृ० ८२

२४—कार्मारव्याश्च कैशिक्यास्तारषड्जग्रहांशक.।
पन्यास. काकलीयुक्तो विज्ञेयश्शुद्धकैशिक.।
वीररौद्राद्भुतरस. संपूर्णस्वरको मतः॥ —भ० को०, पृ० ६६४

* यहाँ सां (तारषड्ज) से ग्रह होना चाहिए।

आक्षिप्तिका—चञ्चत्पुट ताल

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सा	सा	सा	सा	सा	सा	नी	धा
	पद	अ	–	ग्नि	–	ज्वा	–	ला	शि
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	सा	सा	री	मा	सा	री	गा	मा
	पद	खा	–	के	–	शि	–	–	–
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सा	गा	री	सा	सा	सा	सा	सा
	पद	मां	–	–	–	स	शो	–	णि
४	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	सा	सा	सा	सा	नी	सा	नी	नी
	पद	त	भो	–	–	–	जि	नि	–
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मा	मा	गा	री	मा	मा	पा	पा
	पद	स	–	र्वा	–	हा	–	रि	णि
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	नी	पा	मा	धा	मा	धा	सा
	पद	नि	–	र्मा	–	से	–	–	–
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	सा	सा	सा	सा	नी	धा	पा	पा
	पद	च	–	–	में	मुं	डे	न	–

८	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धा	नी	गा	मा	पा	पा	पा	पा
	पद	मो	–	–	स्तु	ते	–	–	–

प्रस्तुत आक्षिप्तिका मे स्वरसंख्या इस प्रकार है—

षड्ज	(अश)	२५
ऋषभ		४
गान्धार		४
मध्यम		९
पञ्चम	(न्यास)	९
धैवत		६
निषाद		७

(६) षाडव (शुद्ध षाडव)

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है—

"षाडव राग मध्यमा जाति के विकृत रूप से उत्पन्न हुआ है, इसमें गान्धार एवं पञ्चम दुर्बल हैं, मध्यम न्यास एवं अशस्वर है, तार मध्यम इसका ग्रहस्वर है, इसमे काकलीनिषाद एवं अन्तरगान्धार का प्रयोग होता है, इसकी मूर्च्छना मध्यमादि है, अवरोही इत्यादि (सञ्चारी) वर्ण एवं प्रसन्नान्त अलकार इसके विभूषक है, पूर्वरङ्ग मे इसका विनियोग है, यह हास्य और शृंगार रस का दीपक है, पूर्व प्रहर मे गया है और शुक्र इसका देवता है।"[२५]

मध्यमा के विकृत रूप की व्याख्या करते हुए मोक्षदेव ने कहा है कि जातियो में मध्यस्थानीय अशस्वर ही ग्रहस्वर होता है, तार अंशस्वर से ग्रहण ही मध्यमा जाति का (इस प्रसग मे) विकार है।[२६]

२५—विकारिमध्यमोद्भूत. पाडवो गपदुर्वलः। न्यासाशमध्यमस्तारमध्यमग्रहसंयुतः॥
काकल्यन्तरयुक्तश्च मध्यमादिकमूर्च्छन.। अवरोह्यादिवर्णेन प्रसन्नान्तेन भूपित.॥
पूर्वरङ्गे प्रयोक्तव्यो हास्यशृङ्गारदीपक.। शुक्रप्रियः पूर्वयामे.... .....॥
—सं० र०, अ० स०, राग०, पृ ६३–६४

२६—लक्षणेनेह केनेयं विकृता मध्यमा भवेत्। तारमन्द्रावधिर्यस्मात्तदंशाभ्यामुदाहृतः॥
तस्मान्मध्यग्रहेणैव गातव्यं (व्या) जातयो यतः। तारमध्यग्रहेणेय विकृता मध्यमा मतः (ता)॥
—भ० को०, पृ० ६७१

मतङ्ग का कथन है कि अन्य छः रागों की अपेक्षा मुख्य होने के कारण इसका विनियोग पूर्वरङ्ग मे है, इस मुख्यता के कारण ही इसे 'षाडव' कहा गया है। इस षाडव का अर्थ 'षट्स्वर' नही, क्योकि यह राग सप्तस्वर होता है और इसका षट्स्वर होना सम्भव नही।[२७]

आलाप

मां* सारी नीधा साधानी माधा सारीगां धा सां धांमांरिगामां माधामारी गारी-नीधा सांधानीमांमां।

करण

ममरिग मम सस धनि सस धनि मा मां पपपपनि धममध धससरि गांगामा-रिगामामा।

वर्तनिका

साधनि पध मारि मानि धधाधधससरि मासासाधनी धपमां मां गारी गारी गासामाधामां गांरीगा गमारिगा सांसाधनी मां धनि धगसाधनि मां मां मां।

पद

पृथुगंडगलितमदजल-
मतिसौरभलग्नषट्पदसमूहम्।
मुखमिन्द्रनीलशकलै-
र्भूषितमिव गणपतेर्जयतु॥

आक्षिप्तिका—चञ्चत्पुट ताल

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मां	मा	धां	धां	सा	धा	नी	पा
	पद	पृ	थु	गं	—	ड	ग	लि	त

२७—अस्य च व्युत्पत्तिः कथिता मतङ्गेन—'षट्सु रागेषु मुख्यत्वात् षाडवः, सप्तस्वरत्वेन षट्स्वरत्वासम्भवात्। ननु कथं षट्सु रागेषु मुख्योऽयम्? उच्यते—'पूर्वरङ्गे तु शुद्धषाडवः प्रयोक्तव्यः' इति वचनादिति।

—सिंह०, सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ६४

* यहाँ तारमध्यम से ग्रह होना चाहिए।

२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	नी	मा	मा	मां	री	मा	री
	पद	म	दः	ज	ल	म	ति	सौ	–
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	धां	नी	सां	सा	गा	रिग	धा	धा
	पद	र	भ	ल	–	ग्न	–	पट्	प
४	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	सा	धा	सा	मग	मां	मां	मां	मां
	पद	द	स	मू	–	हं	–	–	–
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	मग	री	गा	मा	मा	मा	पम	गा
	पद	मु	ख	मिं	–	द्र	नी	–	ल
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	री	गा	सां	सां	मा	मां	मां	मां
	पद	श	क	लै	–	भ्रूं	पि	–	त
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	धां	नी	धा	सां	सां	सां	सा
	पद	मि	व	ग	ण	प	ते	–	–
८	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	गा	री	री	गा	मां	मा	मां	मां
	पद	–	–	र्जं	य	तु	–	–	–

प्रस्तुत आक्षिप्तिका मे प्रयुक्त स्वरों की संख्या इस प्रकार है —

षड्ज		११
ऋषभ		७
गान्धार	(दुर्बल)	९
मध्यम	(अंश, न्यास)	२४
पञ्चम	(दुर्बल)	२
धैवत		१०
निषाद		५

(७) कैशिकमध्यम (शुद्ध कैशिकमध्यम)

शार्ङ्गदेव का कथन है —

"यह राग षड्जमध्यमा और कैशिकी जाति से उत्पन्न है। ऋषभ-पञ्चम इस राग में वर्जित है। इसका अंश एवं ग्रहस्वर षड्ज एवं न्यासस्वर मध्यम है। प्रसन्नान्त अलंकार, अवरोही वर्ण एव आद्य (उत्तरमन्द्रा) मूर्च्छना से युक्त है। इसमें गान्धार अल्प है और निषाद काकली है। वीर, अद्भुत एवं रौद्र रस मे इसका प्रयोग करना चाहिए। यह चन्द्रप्रिय राग है, इसका गान (दिन के) पूर्व प्रहर में होना चाहिए और निर्वहण सन्धि मे इसका विनियोग है।"[२८]

मोक्षदेव का कथन है —

"शुद्ध कैशिकमध्यम कैशिकी और षड्जमध्यमा से उत्पन्न हुआ है। तार षड्ज इसका ग्रह एवं अंशस्वर है, न्यासस्वर मध्यम है, ऋषभ-पञ्चम इसमें वर्जित हैं, गान्धार अल्प है, निषाद काकली है, वीर, अद्भुत और रौद्र रस में इसका विनियोग है।"[२९]

२८—षड्जमध्यमया सृष्ट: कैशिक्या च रिपोज्झित.।
तारसांशग्रहो मान्त: शुद्धकैशिकमध्यम: ।
प्रसन्नान्तावरोहिभ्यामाद्यमूर्च्छनया युत: ।।
गान्धाराल्प: काकलीयुग्वीरे रौद्रेऽद्भुते रसे ।
चन्द्रप्रिय. पूर्वयामे सधौ निर्वहणे भवेत् ।।
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ७६

२९—कैशिकीषड्जमध्याभ्यां तारषड्जग्रहांशक: ।
मन्यास: स्यात् रिपत्यक्तो गान्धाराल्प: सकाकलि: ।
रसे वीरेऽद्भुते रौद्रे शुद्धकैशिकमध्यम: ।। —भ० को०, पृ० ६६५

आलाप

सां*धांमां धां सनि धसनी सां सां। सा धानी मां मां सा गां सां गा माधा माधा सां निध सनि सा सा धामां मधमगागमा सासाधामासगासागामाधास निध सानी सां सासाधानी मा मां।

करण

ससममधधममधसनिधसासांसांसा। संसंगम गमं मधमसानिधसां सां सां सां धंधं ममं धम सगसगमस गग धध सस गंस मम धमध सधनि मामा मामा।

पद

ओङ्कारमूर्तिसंस्थं
मात्रात्रयभूषितं कलातीतम्।
वरदं वरं वरेण्यं
गोविन्दकसस्तुतं वन्दे ॥

आक्षिप्तिका–चञ्चत्पुट ताल

१	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	सां	सा	धा	पा(मा?)	मा	धा	पां(मा?)	मां
	पद	ओ	–	का	–	र	मू	–	र्ति
२	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	पा(मा?)	मा	पा(मा?)		री(नी?)	मा	मा
	पद	सं	–	स्थ	–	मा	–	त्रा	–
३	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	धा	मा	नी	धा	नी	सां	सां
	पद	त्र	य	भू	–	पि	तं	–	क

---

* यहाँ ग्रहस्वर तारषड्ज होना चाहिए।

४	ताल	आ०		नि०		वि०		सं०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	नी	धा	नी	सां	सां	सां	सां	सा
	पद	ला	–	ती	–	तं	–	–	–
५	ताल	आ०		नि०		वि०		श०	
	लघु	१	२	३	४	५	६	७	८
	स्वर	धा	धा	मां	मा	री (नी?)	री (नी?)	सा	सा
	पद	व	र	दं	–	व	रं	–	व
६	ताल	आ०		नि०		वि०		ता०	
	लघु	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	स्वर	धा	धा	मा	मा	गां	गां	मां	गा
	पद	रे	–	ण्यं	–	गो	–	वि	–
७	ताल	आ०		श०		वि०		प्र०	
	लघु	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
	स्वर	नी	धा	मा	नी	धा	नी	सा	सा
	पद	द	क	सं	–	स्तु	–	तं	–
८	ताल	आ०		नि०		वि०		स०	
	लघु	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
	स्वर	धां	सा	धां	नी	मां	मां	मा	मा
	पद	वं	–	–	–	दे	–	–	–

'?' चिह्नित स्थलों पर 'पा' के स्थान 'मा' तथा 'री' के स्थान पर 'नी' होना चाहिए। प्रस्तुत मूल पाठ लिपिकदोप का परिणाम प्रतीत होता है। इस राग मे 'ऋषभ-पञ्चम' का परिहार लक्षणसिद्ध है। आलाप और करण मे भी इन दोनो स्वरो का प्रयोग नही।

हमारी दृष्टि से आक्षिप्तिका मे प्रयुक्त स्वरो की संख्या निम्नस्थ है—

षड्ज	१४
ऋषभ	०
गान्धार	३
मध्यम	२०

पञ्चम	०
धैवत	१४
निपाद	१३

ग्रामरागों के प्रकार

ग्रामरागो के पाँच प्रकार है, शुद्ध, भिन्न, गौड, वेसर और साधारण। भिन्न रागो के भी श्रुतिभिन्न, जातिभिन्न, शुद्धभिन्न और स्वरभिन्न ये चार भेद होते है।

(१) शुद्ध—

जो राग अन्य जातियो की अपेक्षा न करके अपनी जाति का अनुवर्तन करते है और उसी के उद्द्योतक होते है, वे शुद्ध कहलाते है।[३०]

(२) भिन्न—*

(अ) **स्वरभिन्न**—किसी राग के वादी, विवादी और अनुवादी ले लिये जायँ, परन्तु संवादी स्वर का परित्याग कर दिया जाय, तो स्वरभिन्न राग उत्पन्न होता है।[३१] स्वरप्रयोग मे भेद होने के कारण ही भिन्नपड्ज और भिन्नपञ्चम राग शुद्ध पाडव से भिन्न हो गये हैं।[३२]

(आ) **जातिभिन्न**—जनक जाति के अश, ग्रह इत्यादि का ग्रहण कर लेने पर भी प्रयोज्य स्वरों का क्रम, जनक जाति के क्रम से भिन्न होने एव वक्र तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म

३०—अनपेक्ष्यान्यजातीर्ये स्वजातिमनुवर्तका.।
स्वजात्युद्योतकाश्चैव ते शुद्धाः परिकीर्तिताः॥
—मतङ्ग, कल्लि०, सं० र० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० २५

* श्रुतिभिन्नो जातिभिन्न शुद्धभिन्नः स्वरस्तथा।
चतुर्भिर्भिद्यते यस्मात्तस्माद् भिन्नक उच्यते॥
—मतङ्ग, कल्लि०, स० र० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० २५

३१—यदा वादी गृहीतः स्यात्सवादी च विमोक्ष्यते।
विवादी चानुवादी च स्वरभिन्नः स उच्यते॥
—मतङ्ग, कल्लि० सं० र० टी०, अ० स०, राग०, पृ० २५

३२—विवादी चानुवादी च गृहीत स्यादित्यनुपङ्गः। शुद्धपाडवापेक्षया भिन्नपड्ज-भिन्नपञ्चमयोः स्वरप्रयोगभेदात् स्वरभिन्नत्वम्।
—कल्लि०, सं० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० २५

स्वरों के प्रयोग के कारण जातिभिन्न रागों की उत्पत्ति होती है।[३३] शुद्ध कैशिकमध्यम राग से ग्रह अश इत्यादि का साम्य होने पर भी जनक जाति के वर्ण भेद तथा सूक्ष्माति-सूक्ष्म स्वरों के प्रयोग में भेद होने के कारण भिन्न कैशिकमध्यम की जातिभिन्नता है।[३४]

(इ) **शुद्धभिन्न**—दूसरी जाति का परित्याग करके अपनी जाति और कुल (जाति से उत्पन्न शुद्ध राग) का विभूषण करने एव अपने कुल को ग्रहण करनेवाले राग शुद्ध-भिन्न कहलाते है।[३५] शुद्धकैशिक एवं भिन्नकैशिक के स्वरसंस्थान समान है, परन्तु शुद्ध-कैशिक तारस्थानव्यापी है और भिन्नकैशिक मन्द्रस्थानव्यापी। इसी अन्तर के कारण भिन्नकैशिक शुद्धकैशिक से भिन्न है।[३६]

(ई) **श्रुतिभिन्न**—जहाँ चतुःश्रुतिक स्वर भिन्न होकर द्विश्रुतिक हो जाता हो, परन्तु गान्धार द्विश्रुति ही रहता हो, वह राग श्रुति-भिन्न होता है।[३७] 'भिन्नतान' राग में निषाद षड्ज की दो श्रुतियाँ ग्रहण कर लेता है, गान्धार द्विश्रुति ही रहता है। अत भिन्नतान राग श्रुतिभिन्न है।[३८]

३३—जातीनामशकः स्याया अल्पकस्तु वहुस्तथा।
अल्पत्वं च बहुत्वं च प्रयोगाल्पवहुत्वत.।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मैर्वक्रैश्च जातिभिन्न. स उच्यते॥
—मतङ्ग, कल्लि०, सं० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० २५

३४—शुद्धकैशिकमध्यमापेक्षया भिन्नकैशिकमध्यमस्य ग्रहांशादिसाम्येऽपि स्वस्वजनक-जातिगतवर्णभेदात् सूक्ष्मातिसूक्ष्मस्वरप्रयोगभेदाच्च भिन्नकैशिकमध्यमस्य जाति-भिन्नत्वम्। —कल्लि०, स० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० २५

३५—परित्यजन्नन्यजाति स्वजातिकुलभूपणः।
स्वकं कुलं तु संगृह्णन् शुद्धभिन्नः प्रकीर्तितः॥
—मतङ्ग, कल्लि०, सं० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० २६

३६—शुद्धकैशिकभिन्नकैशिकयो. स्वरसंस्थानस्याविशेपेऽपि तारस्वरव्याप्तिमतः शुद्धकैशिकान्मन्द्रस्वरव्याप्तिमतो भिन्नकैशिकस्य शुद्धभिन्नत्वम्।
—कल्लि०, सं० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० २६

३७—चतुःश्रुतिः स्वरो यत्र भिन्नो द्विश्रुतिको भवेत्।
गान्धारो द्विश्रुतिश्चैव श्रुतिभिन्नः स उच्यते॥
—मतङ्ग, कल्लि०, सं० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० २६

३८—भिन्नतानरागे हि षड्जस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति निषाद.।.....गान्धारस्तु द्विश्रुतिरेव। अतोऽस्य श्रुतिभिन्नत्वम्।
—कल्लि०, स० टी०, अ० स०, राग०, पृ० २६

(३) गौड—

जिन रागों मे गाढ गमको और ओहाटीललित स्वरों के कारण गीति अखण्डित रूप से त्रिस्थानव्यापिनी रहती है, वे 'गौड' कहलाते हैं।[३९]

(४) वेसर—

जिन रागो में स्वरों का वेगपूर्वक सञ्चार होता है, वे 'वेसर' कहलाते हैं।[४०]

(५) साधारण—

जिन रागो में शुद्ध, भिन्न, गौड और वेसर; चारो प्रकार के रागों की विशेपताएँ समन्वित हो, वे 'साधारण' कहलाते हैं।[४१]

पञ्चविध ग्रामरागों के अवान्तर भेद[४२]

शुद्ध—सात शुद्ध रागो की विस्तृत चर्चा की जा चुकी है।

भिन्न—भिन्न राग पाँच हैं।

षड्जग्रामीय—(१) भिन्नकैशिकमध्यम, (२) भिन्नपड्ज।

मध्यमग्रामीय—(३) भिन्नतान, (४) भिन्नकैशिक, (५) भिन्नपञ्चम।

३९—पूर्वोक्ताया गौडगीतेः संबन्धाद् गौडका. स्मृता.।

—मतङ्ग, कल्लि०, स० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० २६

४०—स्वराः सरन्ति यद्वेगात्तस्माद् वेसरकाः स्मृताः।

—मतङ्ग, कल्लि०, स० टी०, अ० स०, राग०, पृ० २६

४१—शुद्धा भिन्नाश्च गौडाश्च तथा वेगस्वरा. परे।
कलिता यत्र तान् वक्ष्ये सप्त साधारणास्तत.॥

—मतङ्ग, कल्लि०, स० टी०, अ० स०, राग०, पृ० २६

४२—पड्जग्रामसमुत्पन्नः शुद्धकैशिकमध्यम.।
शुद्धसाधारितः पड्जग्रामो ग्रामे तु मध्यमे॥
पञ्चमो मध्यमग्राम. षाडवः शुद्धकैशिकः।
शुद्धा. सप्तेति भिन्ना. स्युः पञ्च कैशिकमध्यमः॥
भिन्नषड्जश्च षड्जाख्ये मध्यमे तानकैशिकौ।
भिन्नपञ्चम इत्येते गौडकैशिकमध्यम.॥
गौडपञ्चमकः पड्जे मध्यमे गौडकैशिकः।
इति गौडास्त्रयः पड्जे टक्कवेसरषाडवौ॥
ससौवीरौ मध्यमे तु वोट्टमालवकैशिकौ।
मालवः पञ्चमान्तोऽथ द्विग्रामष्टक्ककैशिकः॥

गौड—गौड राग तीन है—

षड्जग्रामीय—(१) गौडकैशिकमध्यम, (२) गौडपञ्चम,
मध्यमग्रामीय—(३) गौडकैशिक।

वेसर—वेसर राग आठ है—

षड्जग्रामीय—(१) टक्क, (२) वेसरपाडव, (३) सौवीर,
मध्यमग्रामीय—(४) वोट्ट, (५) मालवकैशिक, (६) मालवपञ्चम,
द्विग्रामसम्बद्ध—(७) टक्ककैशिक, (८) हिन्दोल।

साधारण—साधारण राग सात है—

षड्जग्रामीय—(१) रूपसाधार, (२) शक, (३) भम्माणपञ्चम,
मध्यमग्रामीय—(४) नर्त, (५) गान्धारपञ्चम, (६) षड्जकैशिक,
द्विग्रामसम्बद्ध—(७) ककुभ।

इस प्रकार—

शुद्ध	७
भिन्न	५
गौड	३
वेसर	८
साधारण	७
योग	३०

ग्रामरागो की संख्या तीस है।

उपराग—

उपरागो की उत्पत्ति भी जातियो से हुई है। ग्रामरागो के समीपस्थ होने के कारण इन्हे उपराग कहा गया है।[४३] उपरागो की सख्या आठ है। वे है—(१) शकतिलक,

---

हिन्दोलोऽष्टौ वेसरास्ते सप्तसाधारणास्ततः।
षड्जे स्याद् रूपसाधारः शको भम्माणपञ्चमः॥
मध्यमे नर्तगान्धारपञ्चमौ षड्जकैशिकः।
द्विग्रामः ककुभस्त्रिशद् ग्रामरागा अमी मताः॥
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ७–८

४३–जातिभ्यो जातानामपि ग्रामरागसमीपभावित्वादष्टानामुपरागत्वम्।
—कल्लि०, स० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० ९

(२) टक्कसैन्धव, (३) कोकिलापञ्चम, (४) रेवगुप्त, (५) पञ्चमपाडव, (६) भावनापञ्चम, (७) नागगान्धार, (८) नागपञ्चम।[४४]

राग

उपरागो के अनन्तर जातियों से ही उत्पन्न राग 'राग' है।[४५] उनकी सख्या वीस है। वे हैं — (१) श्रीराग, (२) नट्ट, (३) बङ्गाल प्रथम, (४) बङ्गाल द्वितीय, (५) भास, (६) मध्यमपाडव, (७) रक्तहस, (८) कोह्लहास, (९) प्रसव, (१०) भैरव, (११) ध्वनि, (१२) मेघराग, (१३) सोमराग, (१४) कामोद प्रथम, (१५) कामोद द्वितीय, (१६) आम्रपञ्चम, (१७) कन्दर्प, (१८) देशाख्य, (१९) कैशिकककुभ, (२०) नट्टनारायण।[४६]

भाषाजनक ग्रामराग

ग्रामरागो के आलापप्रकार भापा कहलाते हैं, भाषा शब्द का अर्थ यहाँ प्रकार है।[४७] इसी प्रकार विभापा और अन्तरभाषा शव्द भी क्रमशः (भाषा से विभाषा, विभापा से अन्तरभाषा) उत्पन्न आलापप्रकारो के वाचक हैं, रञ्जक होने के कारण इन सबको भी राग समझा जाना चाहिए। याष्टिक मुनि ने भाषाजनक राग पन्द्रह, मतङ्ग ने छः

४४–अष्टोपरागास्तिलकः शकादिष्टक्कसैन्धवः।
कोकिलापञ्चमो रेवगुप्त पञ्चमपाडवः।
भावनापञ्चमो नागगान्धारो नागपञ्चमः॥
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ९

४५–उपरागेभ्योऽनन्तर जातिभ्य एव जाताः श्रीरागादयो विंशतिः।
—कल्लि०, सं० टी०, सं० र०, अ० स०, राग०, पृ० ९

४६–श्रीरागनट्टौ बङ्गालौ भासमध्यमषाडवौ।
रक्तहसः कोह्लहास. प्रसवो भैरवो ध्वनिः॥
मेघराग. सोमरागः कामोदो चाभ्रपञ्चम.।
स्यातां कन्दर्पदेशाख्यौ ककुभान्तश्च कैशिकः।
नट्टनारायणश्चेति रागा विंशतिरीरिता.॥
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ९

४७–ग्रामरागाणामेवालापप्रकारा भाषावाच्याः। भाषाशव्दोऽत्र प्रकारवाची।
—मतङ्ग, कल्लि० स० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० १०

काश्यप ने बारह और शार्दूल ने चार ही बताये हैं।[४८] याष्टिकोक्त पन्द्रह (भाषाजनक) राग ये हैं—

(१) सौवीर, (२) ककुभ, (३) टक्क, (४) पञ्चम, (५) भिन्नपञ्चम, (६) टक्ककैशिक, (७) हिन्दोल, (८) वोट्ट, (९) मालवकैशिक, (१०) गान्धार-पञ्चम, (११) भिन्नषड्ज, (१२) वेसरषाडव, (१३) मालवपञ्चम, (१४) तान, (१५) पञ्चमषाडव।[४९]

१—सौवीर की भाषाएँ

सौवीर की चार भाषाएँ—(१) सौवीरी, (२) वेगमध्यमा, (३) साधारिता, (४) गान्धारी हैं।[५०]

२—ककुभ की भाषाएँ

ककुभ की छः भाषाएँ—(१) भिन्नपञ्चमी, (२) काम्भोजी, (३) मध्यमग्रामा, (४) रगन्ती, (५) मधुरी, (६) शकमिश्रा हैं।[५१]

४८—एवं विभाषाऽन्तरभाषाशब्दावपि तत्तदनन्तरोत्पन्नालापप्रकारवाचकावित्यवगन्तव्यम्। तासामपि रञ्जनाद् रागत्वं तथा च वक्ष्यति—'रञ्जनाद्रागता भाषारागाङ्गादेरपीष्यते' इति। तासां जनका याष्टिकोदिता भाषाजनकतया याष्टिकमुनिनोक्ताः। मतान्तराणामप्यत्रैवान्तर्भावाद्याष्टिकमतानुसारेणोद्दिश्यन्त इत्यर्थः। कथम्? मतंगः षडेव ग्रामरागान् भाषाजनकत्वेनाभाषत। काश्यपस्तु द्वादशैवावोचत्। शार्दूलः पुनश्चतुर एवाभ्यधादिति।

—कल्लि० सं० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० ११

४९—सौवीरः ककुभष्टक्कः पञ्चमो भिन्नपञ्चमः।
टक्ककैशिकहिन्दोल—वोट्टमालवकैशिकाः॥
गान्धारपञ्चमो भिन्नषड्जो वेसरषाडवः।
मालवः पञ्चमान्तश्च तानः पञ्चमषाडवः।
भाषाणां जनकाः पञ्चदशैते याष्टिकोदिताः॥

—सं० र०, अ० स०, राग०, पृ० १०

५०—भाषाश्चतस्रः सौवीरे सौवीरी वेगमध्यमा। साधारिता च गान्धारी......

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १०

५१—.....ककुभे भिन्नपञ्चमी। काम्भोजी मध्यमग्रामा रगन्ती मधुरी तथा।
शकमिश्रेति षट्......।

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १०

तीन विभाषाएँ

(१) भोगवर्धनी, (२) आभीरिका, (३) मधुकरी[५२]।

अन्तरभाषा

(१) शालवाहनिका है।[५३]

३—टक्क की भाषाएँ

टक्क की इक्कीस भाषाएँ—(१)त्रवणा, (२) त्रवणोद्भवा, (३) वैरञ्जी, (४) मध्यमग्रामदेहा, (५) मालववेसरी, (६) छेवाटी, (७) सैन्धवी, (८) कोलाहला, (९)पञ्चमलक्षिता, (१०)सौराष्ट्री, (११)पञ्चमी, (१२)वेगरञ्जी, (१३) गान्धारपञ्चमी, (१४) मालवी, (१५) तानवलिता, (१६) ललिता, (१७) रविचन्द्रिका, (१८) ताना, (१९) अम्बाहेरिका, (२०) दोह्या, (२१) वेसरी हैं।[५४]

विभाषाएँ

(१) देवारवर्धनी, (२) आन्ध्री, (३) गुर्जरी, (४) भावनी हैं।[५५]

४—पञ्चम की भाषाएँ

पञ्चम की दस भाषाएँ—(१)कैशिकी,(२) त्रावणी, (३) तानोद्भवा, (४) आभीरी, (५) गुर्जरी, (६) सैन्धवी, (७) दाक्षिणात्या, (८) आन्ध्री, (९) माङ्गली, (१०) भावनी हैं।[५६]

५२—........तिस्रो विभाषा भोगवर्धनी। आभीरिका मधुकरी...॥

—स० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १०

५३—.....तथैकान्तरभाषिका। शालवाहनिका......।

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १०

५४—......टक्के त्रवणा त्रवणोद्भवा। वैरञ्जी मध्यमग्रामदेहा मालववेसरी। छेवाटी सैन्धवी कोलाहला पञ्चमलक्षिता। सौराष्ट्री पञ्चमी वेगरञ्जी गान्धारपञ्चमी। मालवी तानवलिता ललिता रविचन्द्रिका। तानाऽम्बाहेरिका दोह्या वेसरीत्येकविंशतिः। भाषा. स्युः.....। —सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १०

५५—......रथ देवारवर्धन्यान्ध्री च गुर्जरी। भावनीति विभाषाः स्युश्चतस्रः...।

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ११

५६—......पञ्चमे पुनः। कैशिकी त्रावणी तानोद्भवाऽऽभीरी च गुर्जरी। सैन्धवी दाक्षिणात्याऽऽन्ध्री माङ्गली भावनी दश। इति भाषा....॥

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ११

विभाषाएँ]

दो विभाषाएँ—(१) भम्माणी, (२) आन्धालिका है।[५७]

५—भिन्नपञ्चम की भाषाएँ

भिन्नपञ्चम की चार भाषाएँ—(१) धैवतभूपिता, (२) शुद्धभिन्ना, (३) वाराही, (४) विशाला हैं।[५८]

विभाषा

(१) कौशली है।[५९]

६—टक्ककैशिक की भाषाएँ

टक्ककैशिक की दो भाषाएँ—(१) मालवा, (२) भिन्नवलिता है।[६०]

विभाषा

(१) द्राविडी है।[६१]

७—हिन्दोल की भाषाएँ

हिन्दोल की नौ भाषाएँ—(१) वेसरी, (२) चूतमञ्जरी, (३) षड्जमध्यमा, (४) मधुरी, (५) भिन्नपौराली, (६) गौडी, (७) मालववेसरी, (८) छेवाटी, (९) पिञ्जरी है।[६२]

हिन्दोल और प्रेङखक पर्य्यायवाची शब्द है।[६३]

५७—......विभाषे द्वे भम्माण्यान्धालिके। —सं० र०, अ० स०, राग०, पृ० ११

५८—चतस्रः पञ्चमे भिन्ने भाषा धैवतभूषिता। शुद्धभिन्ना च वाराही विशालेति...
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ११

५९—अथ कौशली। विभाषा .... —सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ११

६०—..... मालवाभिन्नवलिते टक्ककैशिके। भाषे द्वे.....
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ११

६१—......द्राविडीत्येका विभाषा..... —सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ११

६२—...... प्रेङखके नव। भाषाः स्युर्वेसरी चूतमञ्जरी षड्जमध्यमा।
मधुरी भिन्नपौराली गौडी मालववेसरी। छेवाटी पिञ्जरीत्येका...।
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ११

६३—प्रेङ्खक इति हिन्दोलपर्य्यायः। —कल्लि०, सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ११

८—वोट्ट की भाषा

वोट्ट की एक भाषा 'मांगली' है।[६४]

९—मालवकैशिक की भाषाएँ

मालवकैशिक की तेरह भाषाएँ—(१) बाङ्गाली, (२) माङ्गली, (३) हर्षपुरी, (४) मालववेसरी, (५) खञ्जनी, (६) गुर्जरी, (७) गौडी, (८) पौराली, (९) अर्धवेसरी, (१०) शुद्धा, (११) मालवरूपा, (१२) सैन्धवी, (१३) आभीरिका है।[६५]

विभाषाएँ

(१) काम्भोजी, (२) देवारवर्धनी है।[६६]

१०—गान्धारपञ्चम की भाषा

गान्धारपञ्चम की एक भाषा गान्धारी है।[६७]

११—भिन्नषड्ज की भाषाएँ

भिन्नषड्ज की सत्रह भाषाएँ—(१) गान्धारवल्ली, (२) कच्छेल्ली, (३) स्वरवल्ली, (४) निषादिनी, (५) त्रवणा, (६) मध्यमा, (७) शुद्धा, (८) दाक्षिणात्या, (९) पुलिन्दका, (१०) तुम्बुरा, (११) षड्जभाषा, (१२) कालिन्दी, (१३) ललिता, (१४) श्रीकण्ठिका, (१५) बाङ्गाली, (१६) गान्धारी, (१७) सैन्धवी है।[६८]

६४—वोट्टे भाषा तु माङ्गली। —कल्लि०, सं० र०, अ० स०, राग०, पृ० ११

६५—बाङ्गाली माङ्गली हर्षपुरी मालववेसरी।
खञ्जनी गुर्जरी गौडी पौराली चार्धवेसरी॥
शुद्धा मालवरूपा च सैन्धव्याभीरिकेत्यमू।
भाषास्त्रयोदश ज्ञेया विज्ञैर्मालवकैशिके॥
—सं० र०, अ० स०, राग०, पृ० ११–१२

६६—विभाषे द्वे तु काम्भोजी तद्वद् देवारवर्द्धिनी।
—सं० र०, अ० स०, राग०, पृ० १२

६७—गान्धारपञ्चमे भाषा गान्धारी —सं० र०, अ० स०, राग, पृ० १२

६८—.... . भिन्नषड्जके। गान्धारवल्ली कच्छेल्ली स्वरवल्ली निषादिनी।
त्रवणा मध्यमा शुद्धा दाक्षिणात्या पुलिन्दका।

विभाषाएँ

(१) पौराली, (२) मालवा, (३) कालिन्दी, (४) देवारवर्धनी हैं।[६९]

१२—वेसरषाडव की भाषाएँ

वेसरषाडव की दो भाषाएँ—(१) नाद्या, (२) वाह्यषाडवा हैं।[७०]

विभाषाएँ

(१) पार्वती, (२) श्रीकण्ठी हैं।[७१]

१३—मालवपञ्चम की भाषाएँ

मालवपञ्चम की तीन भाषाएँ–(१) वेदवती, (२) भावनी, (३) विभावनी हैं।[७२]

१४—तान की भाषा

तान की एक भाषा 'तानोद्भवा' है।[७३]

१५—पञ्चमषाडव की भाषा

पञ्चमषाडव की एक भाषा 'पोता' है।[७४]

तुम्बुरा षड्जभाषा च कालिन्दी ललिता ततः।
श्रीकण्ठिका च वाङ्गाली गान्धारी सैन्धवीत्यमूः। भाषाः सप्तदश ज्ञेयाः।

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १२

६९–......चतस्रस्तु विभाषिकाः। पौराली मालवा कालिन्द्यपि देवारवर्धनी।

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १२

७०–वेसरे षाडवे भाषे द्वे नाद्या वाह्यषाडवा।

—सं०, र० अ० सं०, राग०, पृ० १२

७१–विभाषे पार्वती श्रीकण्ठ्यथ

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १२

७२–......मालवपञ्चमे। भाषास्तिस्रो वेदवती भावनी च विभावनी।

—सं० र०, अ० स०, राग०, पृ० १२

७३–ताने तानोद्भवा भाषा..

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १२

७४–भाषा पञ्चमषाडवे। पोता...

—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १२

कुछ लोग रेवगुप्त नामक राग की एक भाषा 'शका' मानते है। मतङ्गकृत वृहद्देशी मे पल्लवी नामक एक ऐसी विभाषा तथा भासवलिता, किरणावली और शकवलिता नामक तीन अन्तरभाषाओ की चर्चा है, जिनके जनक राग नही बताये गये है।[७५] इस प्रकार समस्त भाषाओं का संकलन निम्न लिखित है—

१.	सौवीर	४
२.	ककुभ	६
३.	टक्क	२१
४.	पञ्चम	१०
५.	भिन्नपञ्चम	४
६.	टक्ककैशिक	२
७.	हिन्दोल	९
८.	वोट्ट	१
९.	मालवकैशिक	१३
१०.	गान्धारपञ्चम	१
११.	भिन्नषड्ज	१७
१२.	वेसरषाडव	२
१३.	मालवपञ्चम	३
१४.	तान	१
१५.	पञ्चमषाडव	१
	मतान्तर-रेवगुप्त	१
	योग	९६

७५—.........शकामेके रेवगुप्ते विदुर्विदः।
विभाषा पल्लवी भासवलिका किरणावली ॥
शकाद्या वलितेत्येतास्तिस्रस्त्वन्तरभाषिकाः।
चतस्रोऽनुक्तजनका वृहद्देश्यामिमाः स्मृताः ॥
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १२

समस्त विभाषाएँ—

ककुभ	३
टक्क	४
पञ्चम	२
भिन्न पञ्चम	१
टक्क कैशिक	१
मालव कै०	२
भिन्नषड्ज	४
वेसर षाडव	२
अनुक्त जनक	१
योग	२०

सब अंतरभाषाओ का संकलन यह है[७६]

ककुभ	१
अनुक्तजनक	३
योग	४

मतङ्ग ने मुख्या, स्वराख्या, देशजा एवं अन्योपरागजा नामक चार भाषाएँ बतायी है। जो अन्य किसी भाषा से प्रभावित न हो वह मुख्या, जो किसी स्वर के नाम पर हो वह स्वराख्या, जो किसी देश के नाम पर हो वह देशाख्या या देशजा एवं इन तीनो से उत्पन्न अन्योपरागजा कहलाती है। याष्टिक ने इन्ही चारो अर्थात् मूला को मुख्या, स्वराख्या को सकीर्णा, देशाख्या को देशजा और अन्योपरागजा को सङ्कीर्णा कहा है।

शुद्धा, आभीरी, रगन्ती तथा (टक्क, हिन्दोल एवं मालवकैशिकी से उत्पन्न) तीन प्रकार की मालववेसरी ये छः भाषाएँ मुख्या कही गयी है। शेष भाषाओ का लक्षण स्पष्ट है। जिन भाषाओ के लक्षण भिन्न है, उनमे भी कभी नाम का सादृश्य हो जाता है।

उपराग, भाषाजनक राग, भाषाराग, विभाषाराग एव अन्तरभाषाराग भरतोक्त ग्रामरागो से सम्वद्ध होने के कारण हमारी चर्चा का विषय वने है। विस्तारभय से उनके लक्षण नही दिये जा रहे है।

७६—एव षण्णवतिर्भाषा विभाषा विंशतिस्तथा।
चतस्रोऽन्तरभाषा स्यु. शार्ङ्गदेवस्य समता: ॥
—स० र०, अ० सं०, राग०, पृ० १३

जिनमें ग्रामोक्त रागो की छायामात्र हो, वे 'रागाङ्ग', जिनमें अङ्ग की छाया हो वे 'उपाङ्ग', जिनमे भाषाओ की छाया हो, वे 'भाषाङ्ग', करुणा, उत्साह, शोक इत्यादि व्यक्त करनेवाली प्रयोगक्रिया (गान-वादन-क्रिया) से जिनकी उत्पत्ति हो, वे 'उपाङ्ग' कहलाते है। 'रागाङ्ग', 'उपाङ्ग', 'भाषाङ्ग' एव 'क्रियाङ्ग' की गणना देशी रागों मे है, भरत-सम्प्रदाय से साक्षात् रूप मे सम्बद्ध न होने के कारण उनकी चर्चा नही की जा रही है।

अनुबन्ध (१)

कुछ परिभाषाओं का स्पष्टीकरण

प्रधानतया हमारा प्रतिपाद्य विपय वही है जो नाट्यशास्त्र की स्वरविधि में प्रतिपादित है, परन्तु मतङ्ग, शार्ङ्गदेव इत्यादि के जातिलक्षणों मे कुछ ऐसे पारिभाषिक शव्द आये है, जिनका स्पष्टीकरण इस पुस्तक के पाठको के लिए परमावश्यक है, फलतः ऐसे शव्दो का सक्षिप्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जाता है—

ताल

प्रतिष्ठार्थक 'तल्' धातु के पश्चात् अधिकरणार्थक 'घञ्' प्रत्यय लगने से 'ताल' शव्द वनता है, क्योकि गीत-वाद्य-नृत्य ताल मे ही प्रतिष्ठित होते है । लघु, गुरु, प्लुत से युक्त सशव्द एवं निःशव्द क्रिया द्वारा गीत, वाद्य, नृत्य को परिमित करनेवाला काल ताल कहलाता है ।[१]

लघु, गुरु, प्लुत

पॉच निमेप या पाँच ह्रस्व अक्षरों का उच्चारणकाल भरतवर्णित तालो में लघु या मात्रा कहलाता है ।* दो लघु एक गुरु का निर्माण करते है और तीन लघुओ से एक प्लुत वनता है । ये लघु, गुरु, प्लुत छन्द शास्त्र या व्याकरणशास्त्र के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत से भिन्न है ।

१—तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्घञि स्मृतः ।
गीतं वाद्यं तथा नृत्तं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ॥
कालो लघ्वादिमितया क्रियया सम्मितो मितिम् । गीतादेर्विदधत्तालः. . .
—स० र०, अ० सं०, ताला० पृ० ३–४

* निमेपा. पञ्च मात्रा स्यात् ।
—भरत०, व० सं०, पृ० ४७५ पर पादटिप्पणी में पाठभेद

गुरु का एक पर्याय 'कला' भी है, ताल-भाग को भी 'कला' कहते है तथा नि.शब्द एवं सशब्द क्रियाएँ भी 'कला' कहलाती है।

तालशास्त्र मे लघु का चिह्न 'I', गुरु का चिह्न 'S' और भरतवर्णित तालो मे 'प्लुत' का चिह्न भी 'S' है।

क्रिया[२]

क्रिया के दो भेद है, नि.शब्दा और सशब्दा। नि.शब्दा क्रिया के चार भेद है, आवाप, निष्क्राम, विक्षेप और प्रवेश। सशब्दा के भी चार भेद है—ध्रुव, शम्या, ताल और सन्निपात। सशब्दा क्रियाएँ 'पात' भी कहलाती है।

आवाप—उत्तान (चित, हथेली आकाश की ओर होने की स्थिति से युक्त) हाथ की अँगुलियो का सिकोड़ना या बन्द करना आवाप कहलाता है। संकेत 'आ०' है।

निष्क्राम—अधस्तल हाथ की अँगुलियो का फैलाना 'निष्क्राम' है। सङ्केत 'नि०' है।

विक्षेप—अँगुलियाँ फैलाये हुए उत्तान हाथ को दाहिने पार्श्व मे फेकना 'विक्षेप' है। संकेत 'वि०' है।

प्रवेश—अधस्तल हाथ की अँगुलियों का सिकोड़ना 'प्रवेश' है। सकेत 'प्र०' है।

ध्रुव—चुटकी वजाते हुए, हाथ को नीचे ले जाना 'ध्रुव' है। सकेत 'ध्रु०' है।

शम्या—दाहिने हाथ से ताली बजाना 'शम्या' है। सकेत 'श०' है।

ताल—वाये हाथ से ताली बजाना 'ताल' है। सकेत 'ता०' है।

सन्निपात—दोनो हाथो से ताली वजाना 'संनिपात' है। सकेत 'स०' है।

२—. . . . . क्रिया द्विधा। नि·शब्दा शब्दयुक्ता च नि शब्दा तु कलोच्यते।
स्यादावापोऽथ निष्क्रामो विक्षेपश्च प्रवेशकः।
नि शब्देति चतुर्धोक्ता सशब्दापि चतुर्विधा।
ध्रुव. शम्या ततस्ताल सनिपात इतीरिता।
पातः कला तु सा ज्ञेया तासां लक्ष्माभिदध्महे।
आवापस्तत्र हस्तस्योत्तानस्याङ्गुलिकुञ्चनम्।
निष्क्रामोऽधस्तलस्य स्यादङ्गुलीनां प्रसारणम्।
क्षेपो दक्षिणपार्श्वस्योत्तानस्य प्रसृताङ्गुलेः।
विक्षेपोऽधस्तलस्यास्य प्रवेशोऽङ्गुलिकुञ्चनम्।
ध्रुवो हस्तस्य पात. स्याच्छोटिकाशब्दपूर्वक.।
शम्या दक्षिणहस्तस्य तालो वामकरस्य तु।
उभयो सनिपात स्यात् . . . . .। —सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० ४–५

ताल के मुख्य भेद

भरतोक्त तालों में चतुरस्र अर्थात् चञ्चत्पुट (चच्चत्पुट, चञ्चूपुट) और त्र्यस्र अर्थात् चाचपुट (चापपुट) मुख्य है।[३] इन दोनो के तीन भेद; यथाक्षर (एककल), द्विकल और चतुष्कल होते है।[४] यथाक्षर से द्विगुण मात्राएँ होने के कारण द्विगुण और चतुर्गुण मात्राएँ होने पर चतुष्कल रूपो का निर्माण होता है।[५]

तालो का रूप जब ताल के नाम मे प्रयुक्त अक्षरो की स्थिति के अनुसार होता है, तब वे 'यथाक्षर' कहलाते है। यथाक्षर चञ्चत्पुट मे अन्तिम अक्षर 'ट' प्लुत होता है और चाचपुट मे नही।

सयुक्त वर्ण से पूर्व वर्ण ह्रस्व होने पर भी दीर्घ या गुरु माना जाता है, फलत: 'चञ्चत्पुट' शब्द मे अक्षर क्रमश: गुरु, गुरु, लघु, प्लुत है। इसलिए यथाक्षर चञ्चत्पुट का रूप 'ऽ ऽ। ऽ' और यथाक्षर चाचपुट का रूप 'ऽ।। ऽ' है। यथाक्षर चञ्चत्पुट में आठ और यथाक्षर चाचपुट में छ: मात्राएँ होती है।

पञ्चपाणि

चाचपुट ताल का एक भेद 'षट्पितापुत्रक' ताल है, जिसे 'पञ्चपाणि' और 'उत्तर' भी कहते है।[६] षट्पितापुत्रक ताल के आदिम एवं अन्तिम अक्षर यथाक्षर अवस्था में

३—त्र्यस्रश्च चतुरस्रश्च स तालो द्विविधः स्मृतः। —भरत०, ब० सं०, पृ० ४७६

चतुरस्रस्तु विज्ञेयः तालश्चञ्चू (ञ्च) त्पुटो बुधै.। —भरत०, का० सं०, पृ० ३४३

त्र्यस्रः स खलु विज्ञेयस्तालश्चापपुटो भवेत्। —भरत०, का० स०, पृ० ३४३

४—यथाक्षरश्च द्विकलश्चतुष्कल इति त्रिधा। —स० र०, अ० स०, त्यला०, पृ० ९

५—तौ चञ्चत्पुटचाचपुटौ (द्विगुणौ) द्विकलापेक्षया द्विगुणीकृतौ सन्तौ चतुष्कलावित्युच्येते। अष्टगुरुसंमितो द्विकलचञ्चत्पुटो द्विगुणीकृत्य षोडशगुरुसमितः संश्चतुष्कलो भवति। षड्गुरुसम्मितो द्विकलचाचपुटो द्विगुणीकृत्य द्वादशगुरुसम्मित. सश्चतुष्कलो भवति। —कल्लि०, स० टी०, अ० स०, ताला०, पृ० ११

६—षट्पितापुत्रकस्त्र्यस्रभेदः सोऽपि तथा त्रिधा। —सं० र०, अ० स०, ताला०, पृ० ११

तस्य षट्पितापुत्रकस्य उत्तरः पञ्चपाणिश्चेत्येतन्नामद्वयम्। —सिंह०, स० टी०, अ० सं०, ताला०, पृ० ११

प्लुत होते है । फलत. इसमें अक्षरों की स्थिति प्लुत, लघु, गुरु, गुरु, लघु, प्लुत अर्थात् 'ऽ।ऽऽ।ऽ' है। (३+१+२+२+१+३=) १२ मात्राओ से यथाक्षर पट्पिता-पुत्रक ताल बनता है।

यथाक्षर चञ्चत्पुट की तालक्रिया[७]

तालक्रिया	स०		श०		ता०	श०		
तालरूप	ऽ		ऽ		।	ऽ		
तालाक्षर	च		चत्		पु	ट		
मात्राएँ	१	२	३	४	५	६	७	८

द्विकल चञ्चत्पुट मे आठ गुरु अर्थात् सोलह लघु होते है—

द्विकल चञ्चत्पुट की तालक्रिया[८]

तालक्रिया	नि०		श०		वि०		ता०	
तालरूप	ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	
मात्राएँ	१	२	३	४	५	६	७	८
तालक्रिया	श०		प्र०		वि०		श०	
तालरूप	ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	
मात्राएँ	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

चतुष्कल चञ्चत्पुट ताल मे सोलह गुरु अर्थात् ३२ मात्राएँ होती है—

चतुष्कल चञ्चत्पुट की तालक्रिया[९]

१	तालक्रिया	आ		नि०		वि०		श०	
	तालरूप	ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	१	२	३	४	५	६	७	८
२	तालक्रिया	आ		नि०		वि०		ता०	
	तालरूप	ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

७–चञ्चत्पुटे त्वेककले सशताश यथाक्रमम् । —सं० र०, अ० स०, पृ० १४

८–निशौ निताश प्रविश द्विकले युग्मके मता. । —सं० र०, अ० स०, ताला०, पृ० १५

९– ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

आ नि वि श आ नि वि ता आ श वि प्र आ नि वि सं

इतिचतुष्कल-चच्चत्पुट-कलाविधि. । —सं० र०, अ० स०, ताला०, पृ० १७

३	तालक्रिया	आ०		श०		वि०		प्र०	
	तालरूप	ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
४	तालक्रिया	आ		नि०		वि०		स०	
	तालरूप	ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२

यथाक्षर चाचपुट की तालक्रिया[१०]

तालक्रिया	श०		ता०	श०	ता०	
तालरूप	ऽ		।	।	ऽ	
तालाक्षर	चा		च	पु	ट	
मात्राएँ	१	२	३	४	५	६

द्विकल चाचपुट की तालक्रिया[११]

द्विकल चाचपुट मे छः गुरु अर्थात् बारह मात्राएँ होती है—

१	तालक्रिया	नि०		श०	
	तालरूप	ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	१	२	३	४
२	तालक्रिया	ता०		श०	
	तालरूप	ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	५	६	७	८
३	तालक्रिया	नि०		सं०	
	तालरूप	ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	९	१०	११	१२

चतुष्कल चाचपुट में बारह गुरु अर्थात् २४ मात्राएँ होती हैं—

१०–शता शता (ताश ताश) इत्येककल-चाचपुट-कलाविधिः।

—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० १५

११–निशौ ताशौ निसमिति ज्ञेयाश्चाचपुटे क्रमात्।

—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० १५

चतुष्कल चाचपुट की तालक्रिया[१२]

१	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		श०	
	तालरूप	ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	१	२	३	४	५	६	७	८
२	तालक्रिया	आ०		ता०		वि०		श०	
	तालरूप	ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
३	तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		सं०	
	तालरूप	ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	
	मात्राएँ	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४

यथाक्षर षट्पितापुत्रक की तालक्रिया[१३]

तालक्रिया	स०			ता०	श०		ता०			श०	ता०	
तालरूप	ऽ			।	ऽ		ऽ			।	ऽ	
तालाक्षर	पट्			पि	ता		पु			त्र	क	
मात्राएँ	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

द्विकल पट्पितापुत्रक ताल मे बारह गुरु या चौबीस मात्राएँ होती है, परन्तु एक पाद-भाग चार-चार मात्राओ का होता है।

द्विकल षट्पितापुत्रक की तालक्रिया[१४]

१	तालक्रिया	नि०		प्र०	
	मात्रा	१	२	३	४

१२– ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
आ नि वि श आ ता वि श आ नि वि सं इति चतुष्कल-चाचपुटकलाविधि।
—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० १७

१३– ऽ । ऽ ऽ । ऽ
सं ता श ता श ता इत्येककलपट्पितापुत्रककलाविधि।
—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० १५

१४– निप्रताशनितानिशताप्रनिसं तथोत्तरे। इति द्विकल-षट्पितापुत्रककलाविधिः।
—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० १५

२	तालक्रिया	ता०		श०	
	मात्रा	५	६	७	८
३	तालक्रिया	नि०		ता०	
	मात्रा	९	१०	११	१२
४	तालक्रिया	नि०		श०	
	मात्रा	१३	१४	१५	१६
५	तालक्रिया	ता०		प्र०	
	मात्रा	१७	१८	१९	२०
६	तालक्रिया	नि०		स०	
	मात्रा	२१	२२	२३	२४

चतुष्कल षट्पितापुत्रक की तालक्रिया[15]

चतुष्कल षट्पितापुत्रक मे चौवीस गुरु अर्थात् ४८ मात्राएँ होती है ।

तालक्रिया	आ		नि०		वि०		प्र०	
मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८
तालक्रिया	आ०		ता०		वि०		श०	
मात्रा	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		ता०	
मात्रा	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		श०	
मात्रा	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
तालक्रिया	आ०		ता०		वि०		प्र०	
मात्रा	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०

१५– ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
आ नि वि प्र आ ता वि श आ नि वि ता
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
आ नि वि श आ ता वि प्र आ नि वि सं

इति चतुष्कल-पट्पितापुत्रककलाविधि. । —सं० र०, अ० स०, ताला०, पृ० १७

तालक्रिया	आ०		नि०		वि०		सं०	
मात्रा	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८

पूर्वोक्त तीन तालो केअतिरिक्त उद्घट्ट एवं संपक्वेष्टाक नामक दो और ताल भी भरतोक्त है, परन्तु जातियो और रागो के प्रस्तारो मे चतुष्कल चञ्चत्पुट और चतुष्कल पञ्चपाणि ताल का ही प्रयोग हुआ है, अत. इन्ही का विशिष्ट वर्णन किया गया है। पञ्चपाणि ताल त्र्यस्र चाचपुट का एक भेद है, इसी लिए चाचपुट का वर्णन किया गया है।

चञ्चत्पुट ताल के प्रथम पादभाग मे कनिष्ठा, द्वितीय पादभाग मे सम्मिलित कनिष्ठा-अनामिका, तृतीय पादभाग में सम्मिलित कनिष्ठा-अनामिका-मध्यमा एवं चतुर्थ पादभाग मे सम्मिलित कनिष्ठा-अनामिका-मध्यमा-तर्जनी से तालक्रिया करनी चाहिए।[१६]

चाचपुट के तीन पादभागो मे क्रमश कनिष्ठा, कनिष्ठा-अनामिका एव कनिष्ठा-अनामिका-तर्जनी से तालक्रिया करनी चाहिए। मध्यमा का प्रयोग इस ताल की तालक्रिया मे वर्जित है।[१७]

पञ्चपाणि ताल के छः पादभागो मे क्रमश. कनिष्ठा, कनिष्ठा-अनामिका, कनिष्ठा-अनामिका-मध्यमा, कनिष्ठा-अनामिका-तर्जनी-मध्यमा, कनिष्ठा-तर्जनी से तालक्रिया करनी चाहिए।[१८]

मार्ग

महर्षि भरत ने चित्र, वार्तिक, दक्षिण ये तीन 'मार्ग' वताये है। शार्ङ्गदेव ने 'ध्रुव' नामक एक और मार्ग भी कहा है। ध्रुवमार्ग मे एक, चित्र मे दो, वार्तिक में चार और दक्षिण मार्ग मे आठ मात्राओ से एक पाद-भाग (कला) का निर्माण होता

१६–प्रथमे पादभागे स्यात् कलाङ्गुल्या कनिष्ठया।
तया चानामयान्यत्र ताभ्यां मध्यमया तथा।
तृतीये स्याच्चतसृभिस्तुर्ये चच्चत्पुटस्य तु॥
—सं० र०, अ० स०, ताला०, पृ० १४

१७–ओजस्य पादभागे तु कला मध्याङ्गुली विना।
—स० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० १४

१८–पञ्चपाणे. कनिष्ठादिचतुष्केण कनिष्ठया।
तर्जन्या च पृथक् पादभागषट्के क्रमात्कला.॥

है ।[१९] इसी लिए चित्रमार्ग में यथाक्षर या एककल, वार्तिक मार्ग में द्विकल और दक्षिण मार्ग मे चतुष्कल ताल का प्रयोग होता है ।

परिवर्तन या आवृत्ति

पादभागादि से युक्त ताल का दुहराना परिवर्त (न) या आवृत्ति कहलाता है ।[२०]

मान (परिमिति, परिमाण, प्रमाण, नाप)

विश्रान्तियुक्त तालक्रिया से तालो का 'मान' किया जाता है ।[२१]

लय

तालक्रिया के अनन्तर (अगली तालक्रिया से पूर्व तक) किया जानेवाला विश्राम 'लय' कहलाता है । शीघ्रतम लय 'द्रुत,' उससे द्विगुण 'मध्य' तथा उससे द्विगुण 'विलम्बित' कहलाती है । चित्र, वार्तिक एवं दक्षिण मार्ग में विश्रान्तिकाल के परिमाण में भेद होने के कारण, क्रमशः लय मे क्षिप्रभाव, मध्यभाव एवं चिरभाव के कारण लय के अनेक भेद हो जाते है । फलतः क्षिप्रभाव में द्रुत, मध्य, विलम्बित; मध्यभाव में द्रुत, मध्य, विलम्बित तथा चिरभाव मे द्रुत, मध्य एवं विलम्बित भेदों का पृथक्-पृथक् रूप होता है ।[२२]

तीनों मार्गो मे एक मात्रा का काल पॉच लघु अक्षरो के उच्चारणकाल के समान होता है, तथापि चित्र मार्ग में दस लघु अक्षरो के उच्चारणकाल से परिमित काल के पश्चात् होनेवाली लय 'द्रुत' कहलाती है, वार्तिक मार्ग मे बीस लघु अक्षरो के उच्चारण काल के पश्चात् उत्पन्न होनेवाली लय 'मध्य' कहलाती है, दक्षिण मार्ग में चालीस लघु अक्षरों के उच्चारणकाल के पश्चात् उत्पन्न होनेवाली लय 'विलम्बित' कहलाती है ।

१९—मार्गा. स्युस्तत्र चत्वारो ध्रुवश्चित्रश्च वार्तिक. । दक्षिणश्चेति तत्र स्याद् ध्रुवके मात्रिका कला । शेषेपु द्वे चतस्रोऽष्टौ क्रमान्मात्राः कला भवेत् ॥

—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० ५

२०—आवृत्तिः पादभागादेः परिवर्तनमिष्यते । —स० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० २४

२१—विश्रान्तियुक्तया काले क्रियया मानमिष्यते ।

—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० २४

२२—क्रियानन्तरविश्रान्तिर्लय. स त्रिविधो मत. । द्रुतो मध्यो विलम्वश्च द्रुतः शीघ्रतमो मतः । द्विगुणद्विगुणौ ज्ञेयौ तस्मान्मध्यविलम्बितौ । मार्गभेदाच्चिरक्षिप्रमध्यभावैरनेकधा ॥

किसी स्थान को जाने के तीन मार्ग है, दूसरा मार्ग पहले मार्ग की अपेक्षा दुगुना लम्बा है, तीसरे मार्ग की लम्बाई दूसरे मार्ग की अपेक्षा भी द्विगुण है। एक ही गति से चलनेवाले तीन व्यक्तियो मे प्रथम व्यक्ति प्रथम मार्ग से लक्ष्यस्थल पर जितने समय मे पहुँचेगा, दूसरे मार्ग से चलनेवाला उससे द्विगुण और तीसरे मार्ग से चलनेवाला उससे भी द्विगुण समय मे लक्ष्य स्थल तक पहुँचेगा। अपेक्षया पहले व्यक्ति के पहुँचने का काल द्रुत, दूसरे व्यक्ति के पहुँचने का काल मध्य एवं तीसरे व्यक्ति के पहुँचने का काल विलम्बित होगा। मार्ग-भेद से लय-भेद की स्थिति भी ऐसी ही है।

इस लय का उपयोग अक्षर, शब्द या वाक्य मे नही होता। क्योकि बोलचाल के समय इनकी जो लय होती है, उसका सङ्गीत से कोई सम्बन्ध नही है।[२३]

यति

लय की प्रवृत्ति (प्रयोग) का नियम 'यति' कहलाता है। उसके तीन भेद 'समा', 'स्रोतोगता' और 'गोपुच्छा' है।

समा

आदि, मध्य एवं अन्त में समान लय से युक्त यति 'समा' है। द्रुत, मध्य एवं विलम्बित लय के भेद से इसके तीन भेद हो जाते हैं।

स्रोतोगता

स्रोत जलवृद्धि से पूर्व विलम्बित गति से चलता है, परन्तु जल-वृद्धि होने पर उसका वेग बढ़ जाता है। इसी प्रकार आदि मे विलम्बित लय, मध्य मे मध्य लय एवं अन्त में द्रुत लयवाली यति स्रोतोगता कहलाती है। विलम्बित और मध्य लयवाली दूसरी 'स्रोतोगता' तथा मध्य एव द्रुत लयवाली तीसरे प्रकार की 'स्रोतोगता' यति होती है।

गोपुच्छा

गौ की पूँछ अन्त मे विस्तृत होती है, फलतः आदि में द्रुत, मध्य मे मध्य एवं अन्त मे विलम्बित लयवाली यति 'गोपुच्छा' होती है। द्रुत एवं मध्य लयवाली द्वितीय 'गोपुच्छा' और मध्य-विलम्बित लयवाली तृतीय 'गोपुच्छा' कहलाती है।[२४]

२३—लयोऽक्षरे पदे वाक्ये योऽसौ नात्रोपयुज्यते।

—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० २५

२४—लयप्रवृत्तिनियमो यतिरित्यभिधीयते।

समा स्रोतोगता चान्या गोपुच्छा त्रिविधेति सा॥

ग्रह

ताल मे 'सम', 'अतीत' और 'अनागत' तीन 'ग्रह' है।

गीत, वाद्य, नृत्य के साथ होनेवाला ताल का आरम्भ 'समपाणि' या 'समग्रह', गीत, वाद्य, नृत्य के पश्चात् होनेवाला ताल का आरम्भ 'अवपाणि' या 'अतीतग्रह' तथा गीत, वाद्य, नृत्य से पूर्व होनेवाला ताल का आरम्भ 'उपरिपाणि' या 'अनागतग्रह' कहलाता है।

सम, अतीत और अनागत ग्रहो मे लय क्रमशः मध्य, द्रुत और विलम्बित होती है।[२५]

प्रकरण-गीतक और ब्रह्म-गीत

इन तालो का आश्रय लेकर (१) मद्रक, (२) अपरान्तक, (३) उल्लोप्य, (४) प्रकरी, (५) ओवेणक, (६) रोविन्दक, (७) उत्तर नामक सात गीतो का वादन किया गया है। सात गीत (१) छन्दक, (२) आसारित, (३) वर्धमान, (४) पाणिक, (५) ऋक्, (६) गाथा, (७) साम भी हैं। ब्रह्मा ने मोक्ष के लिए शिवस्तुति मे इनका प्रयोग किया है।[२६]

आदिमध्यावसानेषु लयैकत्वे समा त्रिधा।
लयत्रैधादादिमध्यावसानेपु यथाक्रमात्॥
चिरमध्यद्रुतलया तदा स्रोतोगता मता।
अन्या विलम्बमध्याभ्या मध्यद्रुतवती परा॥
द्रुतमध्यविलम्बै स्याद् गोपुच्छा द्रुतमध्यभाक्।
द्वितीयान्या भवेन्मध्यविलम्बितलयान्विता॥

—स० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० २६

२५—समोऽतीतोऽनागतश्च ग्रहस्ताले त्रिधा मत.। गीतादिसमकालस्तु समपाणिः समग्रह.। सोऽवपाणिरतीत. स्याद्यो गीतादौ प्रवर्तते। अनागतः प्राक् प्रवृत्तग्रहस्तूपरिपाणिकः। लयाः क्रमात्समादौ स्युर्मध्यद्रुतविलम्बिता.॥

—स०, र०, अ० स०, ताला०, पृ० २७-२८

२६—एतैः प्रकरणाख्यानि तालैर्यानि जगुर्बुधा। तानि गीतानि वक्ष्यामस्तेषामाद्य तु मद्रकम्। अपरान्तकमुल्लोप्य प्रकर्योवेणक तत.। रोविन्दकोत्तरे सप्त गीतकानीत्यवादिषु.। छन्दकासारिते वर्धमानक पाणिक तथा। ऋचो गाथा च सामानि गीतानीति चतुर्दश। शिवस्तुतौ प्रयोज्यानि मोक्षाय विदधे विधिः॥

—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० २९

इन गीतो मे भेद उपभेद भी है, हमने इनकी चर्चा 'ध्रुवा' से सम्बद्ध होने के कारण की है।

पदाश्रित गीति

स्थायी, आरोही, अवरोही वर्णो से अलंकृत पद एव लय से युक्त गानक्रिया 'गीति' कहलाती है। गीति के चार प्रकार—मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता और पृथुला है।[२७]

मागधी

प्रथम पादभाग (कला) मे विलम्वित लय से युक्त पद को गाकर, दूसरे पादभाग में कुछ और शव्दो को सम्मिलित करने के पश्चात् मध्यलय मे गाने के अनन्तर तीसरे पादभाग मे कुछ और शव्दो को सम्मिलित करके द्रुतलय मे गाना 'मागधी' गीति है।[२८] इस गीति का जन्म मगध देश मे हुआ है। यदि चार मात्राओ का एक पादभाग मान लिया जाय, तो मागधी गीति का उदाहरण यह होगा—

पहली कला	१	२	३	४
(पादभाग)	मा	गा	मा	धा
	दे	–	व	–
दूसरी कला	५	६	७	८
	धनि	धनि	सनि	धा
	दे	व	रु	द्रं
तीसरी कला	९	१०	११	१२
	रिग	रिग	मग	रिस
	देव	रुद्र	व	दे

२७—वर्णाद्यलङ्कृता गानक्रिया पदलयान्विता।गीतिरित्युच्यते सा च वुधैरुक्ता चतुर्विधा।। मागधी प्रथमा ज्ञेया द्वितीया चार्धमागधी। सम्भाविता च पृथुला . ।।
—स० र०, अ० स०, स्वरा०, पृ० २८०

२८—गीत्वा कलायामाद्यायां विलवितलय पदम्। द्वितीयाया मध्यलय तत्पदान्तर—सयुतम्। सतृतीयपदे ते च तृतीयस्या द्रुते लये। इति त्रिरावृत्तपदां मागधी जगदुर्बुधाः।।
—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० २८०

अर्धमागधी

प्रथम कला मे 'देवं' पद का मागधी के समान उच्चारण, दूसरी कला में 'देवं' के पश्चात् 'वं' के साथ 'रुद्रं' का उच्चारण और तीसरी कला मे 'रुद्र' के पश्चार्द्ध 'द्रं' के साथ 'वदे' का उच्चारण 'अर्धमागधी' है।[२९] उदाहरण—

१—	१	२	३	४
	मा	री	गा	सा
	दे		वं	
२—	५	६	७	८
	सा	सा	धा	नी
	व	रु	द्रं	–
३—	९	१०	११	१२
	पा	धा	पा	मा
	द्रं	वं	दे	–

कुछ लोगो के अनुसार अर्धमागधी मे अवशिष्ट दो पदों की दो बार आवृत्ति होनी चाहिए।[३०] जैसे—

१—	१	२	३	४
	मा	मा	मा	मा
	दे		वं	
२—	५	६	७	८
	धा	सा	धा	नी
	दे	वं	रु	द्रं
३—	९	१०	११	१२
	पा	निध	मा	मा
	रु	द्रं	वं	दे

२९—पूर्वयोः पदयोरर्धे चरमे द्विर्पदोदिते।
तदाऽर्धमागधी प्राहुः। —सं० र०, अ० सं०, स्वर०, पृ० २८२

३०—द्विरावृत्तपदान्तरे...। —सं० र०, अ० सं०, स्वर, पृ० २८३ पर पाठभेद

सम्भाविता

दीर्घ अक्षरो का आधिक्य एवं पदो का सङ्कोच होने पर सम्भाविता गीति होती है।[३१] जैसे —

१—	१	२	३	४
	धा	मा	मा	रिग
	भ	–	क्त्या	–
२—	५	६	७	८
	री	गा	सा	सा
	दे	–	वं	–
३—	९	१०	११	१२
	नी	धा	सा	नी
	रु	–	द्र	–
४—	१३	१४	१५	१६
	धा	नी	मा	मा
	वं	–	दे	–

पृथुला

जिसमे अधिकांश पद ह्रस्व अक्षरो से निर्मित हो, वह 'पृथुला' गीति होती है।[३२] जैसे—

१—	१	२	३	४
	मा	गा	री	गा
	सु	र	न	त
२—	५	६	७	८
	सा	धनि	धा	धा
	ह	र	प	द

३१–सङ्क्षेपितपदा भूरिगुरुः सम्भाविता मता।
—सं० र०, अ० सं०, स्वर०, पृ० २८४

३२–भूरिलघ्वक्षरपदा पृथुला सम्मता सताम्।
—सं० र०, अ०, सं०, स्वर०, पृ० २८५

३—	९	१०	११	१२
	धा	सा	धा	नी
	यु	ग	लं	–
४—	१३	१४	१५	१६
	पा	निधप	मा	मा
	प्र	ण	म	त

स्वराश्रित गीति

स्वराश्रित गीतियाँ पाँच है—शुद्ध, भिन्न, गौडी, वेसरा और साधारणी। यही पाँच गीतियाँ शुद्ध, भिन्न, गौड, वेसर एव साधारण नामक पाँच ग्रामराग-भेदो का निर्माण करती है।[३३]

मतङ्ग, कल्लिनाथ एवं सिहभूपाल के मत मे ये पाँचो गीतियाँ 'दुर्गामत' के अनुसार है।[३४] कल्लिनाथ के समक्ष प्रस्तुत भरत-नाट्यशास्त्र मे भी इन पाँचो गीतियों का उल्लेख था।[३५]

शुद्धा

अवक्र एवं ललित स्वर शुद्धा गीति का निर्माण करते है।[३६]

३३—पञ्चधा ग्रामरागाः स्युः पञ्चगीतिसमाश्रयात्। गीतयः पञ्च शुद्धा च भिन्ना गौडी च वेसरा। साधारणीति..। —सं० र०, अ० सं०, रागा०, पृ० ३

३४—गीतय. पञ्च विज्ञेयाः शुद्धा भिन्ना च वेसरा। गौडी साधारणी चैव इति दुर्गामते मतम्॥ —मतङ्ग, सिह०, सं० टी०, राग०, पृ० ५

शुद्धादयस्तु प्राधान्येन स्वराश्रिता इतीह ग्रन्थकार एताः पञ्च गीतीर्दुर्गामतानुसारेणालक्षयत्। —कल्लि०, सं० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० ६

तत्र दुर्गामतमाश्रित्य पञ्च गीतय इत्युक्तम्।

—सिह०, सं० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० ५

३५—तथा चाह भरतः—

'पूर्वरङ्गे तु शुद्धा स्याद् भिन्ना प्रस्तावनाश्रया। वेसरा मुखयोः कार्य्या गर्भे गौडी विधीयते। साधारितावमर्शे स्यात् सन्धौ निर्वहणे तथा। ...

—भरत०, कल्लि०, सं० टी०, अ० सं०, राग०, पृ० ३२

३६—.....शुद्धा स्यादवक्रैर्ललितैः स्वरैः। —सं० र०, अ०, सं०, राग०, पृ० ३

भिन्ना

वक्र स्वरो एवं सूक्ष्म तथा मधुर गमको से युक्त गीति भिन्ना कहलाती है।[३७]

गौडी

त्रिस्थानव्यापी प्रगाढ़ गमको और 'ओहाटी' के कारण ललित स्वरो के द्वारा तीनो स्थानो मे अखण्ड रूप से स्थिति गौडी कहलाती है।[३८]

ठोडी को हृदय पर रखकर मन्द्र स्वरो को कोमलतापूर्वक कम्पित गमक करके इस प्रकार निकालने से 'ओहाटी' की व्यक्ति होती है, जिसमे श्रोताओ को 'ह' और 'ओ' के सम्मिलित उच्चारण जैसी ध्वनि सुनाई दे। 'ओकार' और 'हकार' पर 'अटन' (गमन) करने के कारण ही इस क्रिया को 'ओहाटी' कहा जाता है।[३९]

वेसरा

आरोही, अवरोही, स्थायी एव सञ्चारी वर्णो मे अत्यन्त रक्तिपूर्वक वेगवान स्वरो से रागो को गाना 'वेसरा' (वेगस्वरा) गीति है।[४०]

साधारणी

पूर्वोक्त चारो गीतियो की विशेषताओ को सम्मिलित करके गाना 'साधारणी' गीति है।[४१]

पद

विभक्तियुक्त शब्द 'पद' है।[४२] अक्षरसम्वद्ध प्रत्येक वस्तु 'पद' है।[४३] स्वर-

---

३७—भिन्ना वक्रै. स्वरै सूक्ष्मैर्मधुरैर्गमकैर्युता। —स०, र०, अ० स०, राग०, पृ ३

३८—गाढैस्त्रिस्थानगमकैरोहाटीललितै. स्वरै। अखण्डितस्थिति स्थानत्रये गौडी मता सताम्॥ —स० र०, अ० स०, राग०, पृ० ३

३९—ओहाटी कम्पितैर्मन्द्रैर्मृदुद्रुततरैः स्वरै.। हकारौकारयोगेण हृन्न्यस्ते चिबुके भवेत्॥ —स० र०, अ० स०, राग०, पृ० ३

४०—वेगवद्भिः स्वरैर्वर्णचतुष्केऽप्यतिरक्तित। वेगस्वरा रागगीतिर्वेसरा चोच्यते वुधै॥ —स० र०, अ० स०, राग०, पृ० ६

४१—चतुर्गीतिश्रित लक्ष्म श्रिता साधारणी मता। —सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० ६

४२—विभक्त्यन्त पद ज्ञेयम्... —भरत०, गा० स०, अध्याय १४, पृ० २१४

४३—यत्स्यादक्षरसंवद्ध तत्सर्व पदसंज्ञितम्। —भरत०, व० सं०, पृ० ५३५

तालानुभावित गान्धर्व मे प्रयोज्य वस्तु को 'पद' कहा जाता है।[४४] पद के दो भेद 'चूर्ण पद' और 'निवद्ध पद' हैं।[४५]

चूर्ण पद या अनिवद्ध पद

छन्दोविधि के अनुसार जो निबद्ध न हो, जिसमें अक्षरों की संख्या नियत न हो, जिसमें शब्दों की संख्या अर्थ के अनुसार हो, ऐसा सार्थक शब्दसमूह 'चूर्ण पद' कहलाता है।[४६]

निवद्ध पद

छन्दोविधि के अनुसार जो निवद्ध अक्षरों से युक्त हो, जिसमे अक्षरों की संख्या नियत हो, जो यतिच्छेद से युक्त हो, वह सार्थक शब्दसमूह 'निवद्ध पद' कहलाता है। (वह अनेक छन्दों से उत्पन्न होता है।[४७])

गीत

दशांश-लक्षणलक्षित स्वरसंनिवेश (राग या जाति), पद, ताल एवं मार्ग इन चार अंगो से युक्त गान गीत कहलाता है।[४८]

वहिर्गीत या निर्गीत

जिनमे सार्थक शब्दो के स्थान पर निरर्थक 'शुष्काक्षरो' या 'स्तोभाक्षरो' का प्रयोग हो, वे 'निर्गीत' या 'वहिर्गीत' कहलाते हैं।[४९] निर्गीत का अर्थ निरर्थक गीत

४४–गान्धर्व यन्मया प्रोक्तं स्वरतालपदात्मकम्।
पदे तस्य भवेद् वस्तु स्वरतालानुभावितम्॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ५३५ पाठ-भेद

४५–विभक्त्यन्तं पदं ज्ञेयं निवद्धं चूर्णमेव वा। —भरत०, गा० सं०, अ० १४, पृ० २३४

४६–अनिवद्धं पदवृन्द तथा चानियताक्षरम्। अर्थापेक्षाक्षरयुतं ज्ञेयं चूर्णपदं वुधैः॥
—भरत०, व० सं०, पृ० २२४

४७–निवद्धाक्षरसंयुक्तं यतिच्छेदसमन्वितम्। निबद्धं तु पदं ज्ञेयं प्रमाणनियताक्षरम्॥
—भरत०, गा० सं०, अ० १४, पृ० २३४

४८–ग्रहांशादिदशलक्षणलक्षितस्वरमात्रसनिवेशविशेषो रागः। तैः स्वरैः पदैस्तालै-र्मार्गैरेवं चतुर्भिरङ्गैरुपेतं ध्रुवादिसंज्ञकं गीतम्।
—कल्लि०, सं०, र०, अ० सं०, राग०, पृ० ३३

४९–निर्गीतं गीयते यस्मादपदं वर्णयोजनात।—भरत०, गा० २ सं०, अ० ५, पृ० २२३

है।[५०] इस निर्गीत के आविष्कारक नारद हैं।[५१] इसको विशेषतया असुरों ने अपनाया, इसलिए देवताओं ने इसे वहिर्गीत कहना आरम्भ कर दिया।[५२]

स्तोभाक्षर या शुष्काक्षर

स्तोभाक्षरों या 'शुष्काक्षरो' का उपदेश ब्रह्मा ने किया है। वे हैं—

झण्टु, जगतिप, वलितक, कुचझल, गितिकल, पशुपति, दिगिनिगि, दिग्रे, गणपति, तिचा।[५३]

आचार्य शार्ङ्गदेव के अनुसार—

'झण्टु जगतिप बलिकित कुचझल तितिझल पशुपति दिगिदिगि वादिगोंग गणपति तितिधा' है। झण्टुं के स्थान पर 'ऋंटुं', 'दिगिदिगि' के स्थान पर 'दिग्ले', 'तितिधा' के स्थान 'तेचाम्' या 'तेन्नाम्' पाठ भी मिलते हैं। ओंकार और स्वर-व्यञ्जनयुक्त 'हकार' की गणना भी स्तोभाक्षरों मे है।[५४]

ये स्तोभाक्षर पादपूर्ति के लिए भी उपयोगी हैं और ये सार्थक शब्दो की भाँति छन्दोवद्ध भी हो सकते हैं।

शुष्काक्षरयुक्त एक विशिष्ट छन्द का रूप नौ गुरु, छः लघु और तीन गुरु है। उदाहरण इस प्रकार है—[५५]

ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	।	।	।	।	।	।	ऽ	ऽ	ऽ
१	२	३	४	५	६	७	८	९,	१	२	३	४	५	६,	१	२	३
दि	ग्ले	दि	ग्ले	झं	टुं	झ	टु	जं	वु	क	व	लि	त	क	ते	त्ते	न्नाम्

वर्णा झण्टुमादयः स्थाय्यादयश्च।

—अभि०, भरत०, गा० २ सं०, अ० ५, पृ० २२३

५०—निर्गीतमिति तावदाद्य नाम। निरर्थकं गीतमिति।

—अभि०, भरत०, गा० २ स०, अ० ५, पृ० २२३

५१—नारदाद्यैस्तु गन्धर्वैस्सभायां देवदानवाः। निर्गीतं श्राविताः सम्यग्लयताल-समन्वितम्॥ भरत०, गा० २ सं०, अ० ५, पृ० २२१

५२—एवं निर्गीतमेतत्तु दैत्यानां स्पर्धया द्विजाः। देवानां वहुमानेन वहिर्गीतमिति स्मृतम्॥

—भरत०, गा० २ सं०, अ० ५, पृ० २२२

५३—नान्य०, भ० को०, पृ० ७४७

५४—सं० र०, अ० सं०, ताल०, पृ० १२९

५५—भरत०, व० सं०, पृ० ७९

इस छन्द में सार्थक पदों की योजना भी सम्भव है और प्रत्येक छन्द में शुष्काक्षरों की भी योजना सम्भव है। इसी प्रकार अवनद्ध वाद्यो के पाटाक्षरो (बोलो) से भी छन्द का निर्माण सम्भव है।

पूर्वोक्त मद्रक इत्यादि सप्त गीतों का लम्बा विधान है, वह विधान सप्तरूप विधान कहलाता है। वहिर्गीत उस सप्तरूप विधान से युक्त होते हैं। शुष्काक्षरो का गान 'स्तोभक्रिया' भी कहलाता है।

ध्रुवा-गीत

गीति का आधारभूत नियत पदसमूह 'ध्रुवा' कहलाता है।[५६] नारद इत्यादि द्विजो ने अनेक प्रकार से जिन गीताङ्गो का विनियोग किया है, उन सबकी सज्ञा 'ध्रुवा' है।[५७] जो ऋचाएँ, पाणिका एव गाथाएँ है, जो सप्तरूप के अङ्ग और प्रमाण है उन सबकी सज्ञा 'ध्रुवा' है।[५८] इनमे वाक्य, वर्ण, यति, पाणि और लय के अविचल रूप से संवद्ध रहने के कारण इन्हें 'ध्रुवा' कहा गया है।[५९]

'जाति' (वृत्ताक्षरप्रमाण), 'प्रकार' (सम, अर्धसम, विपम इत्यादि), 'प्रमाण' (पट्कल, अप्टकल), 'स्थान' तथा नाम इन पॉच कारणो से ध्रुवाओ के अनेक भेद हो जाते हैं।[६०]

प्रयोग के अवसरों मे भेद होने से ध्रुवा के पॉच प्रकार—प्रावेशिकी, नैष्क्रामिकी, आक्षेपिकी, प्रासादिकी और अन्तरा हो जाते है।[६१]

५६—ध्रुवा-गीत्याधारो नियत. पदसमूहः।
—अभि० गा० सं० २, अध्या० ६, पृ० २७०

५७—ध्रुवासज्ञानि तानि स्युर्नारदप्रमुखैर्द्विजैः। गीताङ्गानीह सर्वाणि विनियुक्तान्यनेकशः॥
—भरत०, ब० स०, पृ० ५३२

५८—या ऋच पाणिका गाथास्सप्तरूपाङ्गमेव च।
सप्तरूपप्रमाणं च तद् ध्रुवेत्यभिसज्ञितम्॥
—भरत०, व० स०, पृ० ५३२

५९—वाक्यवर्णा ह्यलङ्कारा यतयः पाणयो लयाः। ध्रुवमन्योन्यसंवद्धा यस्मात्तस्माद् ध्रुवा. स्मृता॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ५३३

६०—जाति(:)स्थानं प्रकारश्च प्रमाणं नाम चैव हि।
ज्ञेया ध्रुवाणां नाट्यज्ञैर्विकल्पाः पञ्चहेतुकाः॥ —भरत०, का० सं०, पृ० ४१७

६१—प्रवेशाक्षेपनिष्क्रामप्रासादिकमथान्तरम्।
गान पञ्चविधं ज्ञेय . . . . ॥ " "

प्रावेशिकी

नाटक में अंकारम्भ के समय पात्र रङ्गमञ्च पर आकर विभिन्न रसों और अर्थों से युक्त जिस ध्रुवा का गान करे, वह 'प्रावेशिकी' ध्रुवा कहलाती है।[६२]

नैष्क्रामिकी

अङ्क के अन्त में पात्रो के निष्क्रमण के समय निष्काम के गुणो से युक्त जो ध्रुवा गायी जाती है, उसे 'नैष्क्रामिकी' कहते हैं।[६३]

आक्षेपिकी

विधि के जाननेवाले गुणी नाट्य में क्रम का उल्लङ्घन करके जिस ध्रुवा का प्रयोग करते हैं, वह 'आक्षेपिकी' है।[६४]

प्रासादिकी

जो ध्रुवा अन्य रस को प्राप्त अवस्था का, अपने आक्षेप से, परिवर्तन करके रङ्ग-स्थल में प्रसन्नता का सञ्चार कर देती है, वह 'प्रासादिकी' कहलाती है।[६५]

अन्तरा

पात्र के विपादयुक्त, विस्मृत, क्रुद्ध, सुप्त, मत्त, विश्रान्त, मूर्च्छित या पतित होने पर दोपो को ढकने के लिए प्रयुक्त होनेवाली ध्रुवा 'अन्तरा' कहलाती है।[६६]

अन्य दृष्टियो से होनेवाले ध्रुवा-भेदो पर विचार इस अवसर पर अनावश्यक होने के कारण नही किया जा रहा है।

६२—नानारसार्थयुक्ता नृणां या गीयते प्रवेशेषु ।
प्रादेशिकी तु नाम्ना विज्ञेया सा ध्रुवा तज्ज्ञैः । —भरत०, व० सं०, पृ० ५८९.

६३—अङ्कान्ते निष्क्रमणे पात्राणां गीयते प्रयोगेषु ।
निष्क्रामोपगतगुणा विद्यान्नैष्क्रामिकी तां तु ॥ —भरत०, व० स०, पृ० ५८९

६४—क्रममुल्लङ्घ्य विधिज्ञैः क्रियते या द्रुतलयेन नाट्यविधौ ।
आक्षेपिकी ध्रुवासौ..... —भरत ०, व० स०, पृ० ५८९

६५—या च रसान्तरमुपगतमाक्षेपवशात् प्रसादयति ।
राग (रङ्ग) प्रसादजननी विद्यात्प्रासादिकी तां तु ॥
—भरत०, व० सं०, पृ० ५८९

६६—विषण्णे विस्मृते क्रुद्धे सुप्ते मत्तेऽथ सङ्गते ।
गुरुभारावसन्ने च मूर्च्छिते पतिते तथा ॥ —भरत०, का० सं०
दोपप्रच्छादने या च गीयते सान्तरा ध्रुवा ॥ —भरत०, व० सं० पृ० ५८९

ध्रुवापद

ध्रुवा-गान के लिए महर्षि ने अनेक वृत्तो एवं छन्दों का विधान किया है, जो गेय है। वे ध्रुवापद या ध्रुवावृत्त कहलाते है। वे अनेक हैं।

पूर्वरङ्ग

रङ्गस्थल मे सब से पूर्व किया जानेवाला प्रयोग पूर्वरङ्ग कहलाता है।[६७] गीत, ताल, वाद्य, नृत्त, पाठ्य इत्यादि समस्त या व्यस्त रूप में नाटक से पूर्व प्रयुक्त किये जाने पर भी नाट्याङ्ग रहते हैं और उनकी संज्ञा 'पूर्वरङ्ग' होती है।[६८] इसके अनेक अङ्ग है।

सन्धियाँ

नाटक में वर्ण्य वस्तु के विकास की विभिन्न अवस्थाओ को व्यक्त करनेवाले स्थल सन्धि कहलाते हैं। वे पाँच हैं,—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण।[६९]

आलाप

ग्रह, अंश, मन्द्र, तार, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, वहुत्व, षाडव और औडुव की स्थिति जहाँ दिखाई दे, उसे रागालाप कहा जाता है।[७०] आलाप में अपन्यास स्वरों पर रुका नहीं जाता इसलिए वह एकाकार होता है।[७१]

६७—यस्माद्रङ्गे प्रयोगोऽयं पूर्वमेव प्रयुज्यते ।
तस्मादयं पूर्वरङ्गो विज्ञेयो द्विजसत्तमाः ॥

६८—गीततालवाद्यनृत्तपाठ्यं व्यस्तसमस्ततया प्रयुज्यमानं यन्नाटयाङ्गभूतं स पूर्वरङ्ग इत्युक्तं भवति। —अभि०, गा० सं० र०, अध्या० ५, पृ० २०९

६९—मुखं प्रतिमुखञ्चैव गर्भो विमर्श एव च ।
तथा निर्वहणञ्चेति नाटके पञ्च सन्धयः ॥
—भरत०, गा० सं०, अध्याय० १९, पृ० २३

७०—ग्रहांशतारमन्द्राणां न्यासापन्यासयोस्तथा ।
अल्पत्वस्य वहुत्वस्य षाडवौडुवयोरपि ।
अभिव्यक्तिर्यत्र दृष्टा स रागालाप उच्यते ॥
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० २०—२१

७१—अपन्यासेष्वविरम्यैकाकारेण प्रवृत्त आलापः ।
—कल्लि० सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० २१

रूपक

अपन्यास स्वरों पर रुक रुककर किया जानेवाला 'आलाप' रूपक कहलाता है, उसमे गीतखण्ड पृथक्-पृथक् दिखाई देते है।[७२] रञ्जक स्वर-सन्दर्भ गीत कहलाता है।[७३]

आक्षिप्तिका

चञ्चत्पुट इत्यादि तालो और तीनो मार्गो (मे से एक) से विभूषित स्वर तथा पदो से गूँथी हुई रचना 'आक्षिप्तिका' कहलाती है।[७४]

वर्तनी

प्रबन्ध के अन्तर्गत लयबद्ध परन्तु तालहीन विलम्ब आलाप 'वर्तनी' है।[७५] इसके पूर्व आलाप होता है।

करण

वर्तनी ही द्रुत लय मे प्रयुक्त होने पर 'करण' कहलाती है।[७६]

७२—रूपकं तद्वदेव स्यात् पृथग्भूतविदारिकम् ।
—स० र०, अ० सं०, राग०, पृ० २१

स (आलाप) एवापन्यासेषु विरम्य विरम्य प्रवृत्तो रूपकमिति।
—कल्लि०, स० टी०, अ० स०, राग०, पृ० २१

७३—रञ्जकः स्वरसन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते ।
—स० र०, अ० सं०, प्रब०, पृ० १८७

७४—चञ्चत्पुटादितालेन मार्गत्रयविभूषिता ।
आक्षिप्तिका स्वरपदग्रथिता कथिता बुधैः ॥
—सं० र०, अ० सं०, राग०, पृ० २१

७५—वर्तिन्यां वा विवर्तिन्यामालप्पस्तालवर्जितः ।
आदावारोप्यते यस्याः सा स्यादालापपूर्विका ॥
—सोमराज, भ० को०, पृ० ५८७

७६—मन्तव्योऽत्र सदा भेदैः (दो) वर्तिन्याः करणस्य च ।
सविलम्बस्वरैरेव वर्तिनी कथिता बुधैः ॥ —सोमराज, भ० को० पृ० ५८७

अनुबन्ध (२)

रस एवं स्वर-सन्निवेश

भावो को अभिव्यक्त करने की चेष्टा प्राणिमात्र का स्वभाव है। भावाभिव्यक्ति के साधनों मे नाद के उस रूप का भी एक विशिष्ट स्थान है, जो व्याकरण की दृष्टि से 'निरर्थक' होता है और जिसमे अभिधा वृत्ति नही होती।[1]

ये निरर्थक कहे जानेवाले नाद स्वतन्त्र रूप से भी भाव-व्यञ्जन मे समर्थ होते है और भाषा की भी सहायता करते है। भाषा के जिस वाचन को 'पाठ' की सज्ञा दी जाती है, वह स्वरसवलित होने पर ही पाठ कहलाता और वक्ता के वास्तविक अभिप्राय का वोध कराता है। उस अवस्था मे स्वर अपने स्थानो का स्पर्शमात्र करते हुए ऊँचे-नीचे होते है, उनके अवधानपूर्ण अनुरणनात्मक स्वरूप का स्पष्टीकरण उस समय नही होता। यदि ऐसा हो, तो पाठ एव गान मे कुछ भेद ही न रह जाय।[2]

अस्तु, भावव्यञ्जन की दृष्टि से हमारे मनीषी पूर्वजों ने पाठ-प्रयोज्य अनुरणन-हीन ध्वनियो का भी सप्रयोग वर्गीकरण किया है एवं जिन निष्कर्षो पर वे पहुँचे है, वे चिरकाल की सतत साधना के परिणाम है। उन्होने कहा है कि शब्दों को सस्वर एवं

१—इह येयं प्रथमेन सवित्स्पन्देन प्राणोल्लासनया वर्णादिरूपविशेषहीना वाग् जन्यते, सा नादरूपा सती हर्षशोकादिचित्तवृत्ति विधिनिषेधाद्यभिप्रायं वा तत्कार्य्यलिङ्ग-तया वा तादात्म्येन वा श्रुत्यन्तादि गमयतीति तावत् स्थितम्।

—अ० भा०, गा० सं०, अ० १७, पृ० ३८७

२—उदात्तानुदात्तस्वरितकम्पितरूपतया स्वराणा यद्रक्तिप्रधानत्वमनुरणनमयं तत्त्यागेनोच्चनीचमध्यमस्थानसंस्पर्शित्वमात्रं पाठ्योपयोगीति। यदि स्वरगता रक्तिः पाठ्ये प्राधान्येनावलम्ब्येत तदा गानक्रियासौ स्यात्, न पाठ.।.... तस्माद् गानवैलक्षण्याय रक्तिलक्षणं धर्म्ममनादृत्योच्चादिस्थानसंस्पर्श एवात्र प्रधानमिति...। —अ० भा०, गा० सं०, अ० १७, पृ० ३८५-३८६

उचित स्वर रूप मे बोला जाय, तभी वे प्रयोक्ता के अर्थ का साधन करते है, अन्यथा वे हानिकारक भी हो सकते हैं ।[३]

'पाठ्य' वस्तु मे स्वर-प्रयोग हमारे विचार का विषय यहाँ नही। गेय स्वरसमुच्चय मे भाव-व्यञ्जन की शक्ति ही हमारा प्रस्तुत विषय है। गीत या रञ्जक स्वर-सन्दर्भ से रस-परिपाक की प्रक्रिया को समझने के लिए नाट्यरस की प्रक्रिया को समझना परमावश्यक है।

नाट्य मे रसप्रक्रिया

स्थायी भाव

हम जो कुछ देखते, सुनते या अनुभव करते हैं, उसका सस्कार हमारे मन पर पड़ता है। अनुभव क्षणिक होने के कारण नष्ट हो जाता है, परन्तु वह एक स्थायी संस्कार छोड़ जाता है, जिसे 'वासना' भी कहा जाता है। अनुकूल या उद्बोधक सामग्री पाकर हमारे मन मे सुप्तप्राय ये सस्कार जाग जाते है। वे सस्कार इस जन्म के तथा पूर्व जन्मो के भी हो सकते हैं। इन सस्कारो की गणना असम्भव है, तथापि प्राचीन आचार्य्यों ने उनको निश्चित करने की सीमित चेष्टा की है। ये स्थायी भाव कहलाते है। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और भय आठ स्थायी भाव हैं, परवर्ती आचार्यों ने एक नवाँ स्थायीभाव निर्वेद भी माना है। इन नवो स्थायी भावो मे भी कुछ प्रधान है।

विभाव

विभाव दो हैं—'आलम्वन' और 'उद्दीपन।' नायिका एव नायक इत्यादि स्थायी भावो को उद्बुद्ध करने के कारण 'आलम्वन' कहलाते है। वाह्य परिस्थितियाँ, प्राकृतिक सौन्दर्य इत्यादि वस्तुएँ आलम्बन विभावो के द्वारा उद्बुद्ध स्थायी भावो को उद्दीप्त करने के कारण 'उद्दीपन विभाव' कहलाती हैं।

३—दुष्टः शब्द स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमान हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात् ॥
—महाभाष्य मे उद्धृत

अथ यदब्रवीद् इन्द्रशत्रुर्वर्धस्वेति तस्माडु हैनमिन्द्र एव जघान। अथ यद् ह शश्वद-वक्ष्यद् इन्द्रस्य शत्रुर्वर्धस्वेति शश्वदु ह स इन्द्रमेवाहनिष्यत् ।
—शतपथ ब्राह्मण, का० १, प्र० ५, ब्रा० २

अनुभाव

उद्‌वुद्ध एवं उद्‌दीप्त वासनाओ या स्थायी भावो के प्रभाव से मनुष्य की चेष्टाए विभिन्न हो जाती हैं। इन चेष्टाओं या भाव-भगिमाओ को 'अनुभाव' कहा जाता है।

सञ्चारी या व्यभिचारी भाव

मनुष्य के मन में स्थायी रूप से न रहनेवाले अर्थात् अस्थायी रूप से व्यक्त होनेवाले भाव सञ्चारी या व्यभिचारी कहलाते हैं। ये अनेको स्थायी भावो के उद्‌बोध के समय प्रकट होते हैं, इसी 'व्यभिचार' के कारण इन्हें व्यभिचारी कहा जाता है। ये निम्नलिखित तेतीस हैं—

(१) निर्वेद, (२) ग्लानि, (३) शंका, (४) असूया, (५) मद, (६) श्रम, (७) आलस्य, (८) दैन्य, (९) चिन्ता, (१०) मोह, (११) स्मृति, (१२) वृति, (१३) पीडा, (१४) चपलता, (१५) हर्ष, (१६) आवेग, (१७) जड़ता, (१८) गर्व, (१९) विपाद, (२०) औत्सुक्य, (२१) निद्रा, (२२) अपस्मार, (२३) सुप्त, (२४) विवोध, (२५) अमर्प, (२६) अवहित्थ, (२७) उग्रता, (२८) मति, (२९) व्याधि, (३०) उन्माद, (३१) मरण, (३२) त्रास, (३३) वितर्क।

रसों की संख्या

प्रधान रस चार है—शृंगार, रौद्र, वीर एवं वीभत्स। इन्ही से क्रमशः हास्य, करुण, अद्‌भुत एव भयानक रसो की उत्पत्ति होती है। शृंगार की अनुकृति हास्य, रौद्र का कर्म्म करुण, वीर का कर्म्म अद्‌भुत एवं वीभत्स का दर्शन भयानक रस है।[४]

रसाभिव्यक्ति

"विभावो, अनुभावो और व्यभिचारी भावो के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।"[५] यह महर्षि भरत का रससम्बन्धी विख्यात सूत्र है। इस सूत्र के 'संयोग'

४—शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्‌भुतोत्पत्तिर्वीभत्साच्च भयानकः॥
शृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्यस्तु प्रकीतित।
रौद्रस्यैव च यत्कर्म्म स ज्ञेयः करुणो रस.॥
वीरस्यापि च यत्कर्म्म सोऽद्‌भुतः परिकीर्तितः।
वीभत्सदर्शनं यच्च ज्ञेय. स तु भयानक.॥
—भरत०, गा० स० २, अ० ६, पृ० २९७-२९८

५—विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः।
—भरत०, गा० सं० २, अ० ६, पृ० २७२

और 'निष्पत्ति' शब्द की व्याख्याएँ विभिन्न आचार्यो ने विभिन्न प्रकार से की हैं। उनमे निम्नोक्त चार दृष्टिकोण अत्यन्त प्रसिद्ध है।

मीमांसक भट्ट लोल्लट का दृष्टिकोण

आचार्य भट्ट लोल्लट का मत है कि सीता आदि आलम्वन विभावों और उद्यान इत्यादि उद्दीपन विभावो से राम आदि आश्रयो मे रति इत्यादि भावो का जन्म होता है। कटाक्ष, भुजाक्षेप इत्यादि अनुभावो (कार्यो) से वे प्रतीतियोग्य होते है, निर्वेद आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट होते है। साक्षात् सम्बन्ध से वह रस (स्थायीभाव) अनुकरणीय (राम इत्यादि) मे जन्म लेता है और उनका अनुकरण करनेवाले नटो (अभिनेताओ) मे प्रतीयमान (सहृदयो द्वारा आरोप्यमाण) होता है।[६]

इस मत का निष्कर्ष यह है कि सर्प के न होने पर भी सर्प के रूप मे देखी हुई रस्सी से भय का उदय जिस प्रकार होता है, उसी प्रकार राम की, सीताविषयक, रति (अभिनय के समय) विद्यमान न होने पर भी नट की नाट्यनिपुणता के कारण नट मे प्रतीत होती हुई सहृदयो के हृदय मे चमत्कार अर्पित करती एव रसपदवी को प्राप्त होती है।[७]

आचार्य भट्ट लोल्लट का यह दृष्टिकोण 'उत्पत्तिवाद' कहलाता है। इसमे रस की उत्पत्ति ऐतिहासिक राम इत्यादि व्यक्तियो में और गौणरूपेण उसकी प्रतीति सामाजिकों में मानी है, फलत. सामाजिको (दर्शको या श्रोताओ) का कोई सम्बन्ध 'रस' के साथ नही रह जाता। अत. भट्ट लोल्लट से असहमति प्रकट करके आचार्य शकुक ने अपने 'अनुमितिवाद' की स्थापना की।[८]

६—विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्वनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः, अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्य्यैः प्रतीतियोग्यः कृत, व्यभिचारिभिर्निर्वेदादिभि. सहकारिभिरुपचितो मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्य्ये तद्रूपतानुसन्धानान्नर्तकेऽपि प्रतीयमानो रसः। इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः।

—का० प्र०, पृ० ८७

७—तदयं निर्गलितोऽर्थः—यथा असत्यपि सर्पे सर्पतयाऽवलोकिताद् दाम्नोऽपि भीतिरुदेति, तथा सीताविषयिणी अनुरागरूपा रामरतिरविद्यमानाऽपि नर्तके नाट्यनैपुण्येन तस्मिन् स्थितेव प्रतीयमाना सहृदयहृदये चमत्कारमर्पयन्त्येव रसपदवीमधिरोहति। —वामन, का० प्र०, पृ० ८८

८—उक्ते प्रथमव्याख्याने अनुकार्य्ये रामादावेव रसनिष्पत्त्या सामाजिके रस-

नैयायिक आचार्य शंकुक का दृष्टिकोण

शंकुक का कथन है कि रस नट में नही होता, परन्तु सामाजिको की वासना उस नट में स्थायी भाव का अनुमान करके रस का आस्वाद करती है। कुशल नट (अभिनेता) काव्यार्थ के साक्षात् और शिक्षा के अनुसार किये हुए अभ्यास से नाट्य-कर्म्म द्वारा अपने आप में उन कृत्रिम कार्य्य, कारण एवं सहकारियों का प्रकाश करता है, जो विभाव इत्यादि कहलाते है और सामाजिको के द्वारा कृत्रिम नही माने जाते। नट मे रस की प्रतीति उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार चित्रनिर्मित अश्व मे अश्व की प्रतीति होती है। यह प्रतीति 'सम्यक् प्रतीति' (राम ही यह है, यही राम है), 'मिथ्या प्रतीति' ('यह राम नही है'—इस पश्चात्कालीन ज्ञान से पूर्व होनेवाले भ्रम 'यह राम है'), 'सशय प्रतीति' (यह राम है या नही है) और 'सादृश्य प्रतीति' (यह राम के सदृश है) की अपेक्षा विलक्षण होती है। सौन्दर्य (चमत्कार) के कारण रसनीय (आस्वाद्यमान) होने से वस्तु (रति) अन्य अनुमीयमान (अनुमान-ज्ञेय) पदार्थों से भिन्न होती है।[१]

निष्कर्ष यह है कि जिस प्रकार कुहरे से आवृत स्थान मे कुहरे को धुआँ समझने के कारण धुएँ के साथ रहनेवाली अग्नि का अनुमान होता है, उसी प्रकार नट के द्वारा निपुणतापूर्वक विभाव आदि को 'ये मेरे ही हैं' इस रूप मे प्रकाशित किये जाने

निष्पत्त्यभावात् सामाजिकानां चमत्कारानापत्तिरित्यरुचि मनसि निधाय... श्रीशंकुकमत द्वितीयम्।

—वामन, वही, पृ० ८८

१—राम एवायम् अयमेव राम इति, 'न रामोऽयम्' इत्यौत्तरकालिके बाधे रामोऽयमिति, रामः स्याद् वा न वाऽयमिति, रामसदृशोऽयमिति च सम्यङ-मिथ्या-संशय-सादृश्यप्रतीतिभ्यो विलक्षणया चित्रतुरगादिन्यायेन रामोऽयमिति प्रतिपत्त्या ग्राह्ये नटे......काव्यानुसन्धानबलाच्छिक्षाभ्यासनिर्वर्तितस्वकार्य-प्रकटनेन च नटेनैव प्रकाशितै. कारणकार्यसहकारिभिः कृत्रिमैरपि तथाऽनभिमन्यमानैर्विभावादिशब्दव्यपदेश्यैः 'सयोगात्' गम्यगमकभावरूपाद् अनुमीयमानोऽपि वस्तुसौन्दर्यबलाद्रसनीयत्वेनान्यानुमीयमानविलक्षणः स्थायित्वेन सभाव्यमानो रत्यादिर्भावस्तत्रासन्नपि सामाजिकानां वासनया चर्व्यमाणो रस इति श्रीशकुकः।

—का० प्र०, वही सं०, पृ० ८८-९०

के कारण, वस्तुत अविद्यमान विभाव इत्यादि के द्वारा उनमे नियत रति अनुमीयमान होने पर भी अपने सौन्दर्य के कारण सामाजिको द्वारा आस्वाद का विपय वनती और चमत्कार का आधान करती हुई 'रसत्व' को प्राप्त होती है ।[10]

इस मत मे कई असङ्गतियाँ है। नट-रूप राम का रामत्व निश्चित नही, परन्तु उसे अनुमान का आधार वनाया जा रहा है। अनुभाव इत्यादि हेतु भी कल्पित या कृत्रिम है, परन्तु उन्हे अकृत्रिम माना जा रहा है। कृत्रिम हेतु के द्वारा साध्य स्थायी भाव भी सम्भावित मात्र (अयथार्थ) है। अनुमिति भी कल्पित है।

सांख्यवादी भट्ट नायक के द्वारा अन्य मतों की आलोचना

भट्ट नायक का कथन है कि राम इत्यादि अनुकार्य ओर नट इत्यादि अनुकर्ता मे रस की स्थिति मानने से सामाजिको के हृदय के साथ उस पर-गत रस का कोई सम्वन्ध नही वन सकेगा और वह तटस्थ सामाजिक के लिए निष्प्रयोजन होगा।

यदि रस की स्थिति स्वगत (सामाजिको के हृदय मे) माने, तो भी सङ्गति नही वैठती, क्योकि सीता इत्यादि विभावो के द्वारा रस की उत्पत्ति होती है, जो सामाजिको के प्रति विभाव नही होते, अपितु राम इत्यादि के प्रति होते है।

यदि यह कहा जाय कि साधारणीकरण व्यापार के द्वारा सीता इत्यादि से सीतात्व इत्यादि निकल जाते है, उनमे सामान्य कान्तात्व इत्यादि रह जाता है, फलत. वे सामाजिको के प्रति भी विभाव आदि हो सकते है, तो यह कथन भी युक्तियुक्त नही। क्योकि जव देवता इत्यादि का वर्णन होता है, तो उनके प्रति सामाजिको के हृदय मे पूज्य वुद्धि हो जाती है जो सावारणीकरण मे वाधक है।

यदि यह कहा जाय कि अपनी कान्ता का स्मरण होने से सामाजिको को रसास्वाद होता है, तो यह भी ठीक नही। क्योकि रसास्वाद के क्षणो मे न तो अपनी कान्ता याद आती है और रसास्वाद उन्हे भी होता है, जिनकी कान्ता न तो थी और न है।

१०—एतन्मतस्यायं निष्कर्ष·—यथा कुज्झटिकाकुलिते देशेऽसतोऽपि धूमस्याभिमानाद् धूमनियतस्य वह्नेरनुमानम्, तथा नटेनैव सुनिपुण 'ममैवैते विभावादय·'—इति प्रकाशितैस्तत्रासद्भिरपि विभावादिभिस्तन्नियता रतिरनुमीयमानापि निजसौन्दर्यवलात् सामाजिकानामास्वाद्यमानतया चमत्कारमादधती रसतामेतीति रतेरनुमितिरेव रसनिष्पत्ति· ।

—वामन, का० प्र० टी०, वही सं०, पृ० ९०

रस की अभिव्यक्ति मानने पर भी सङ्गति नही बैठती, क्योकि अभिव्यक्ति तो उस वस्तु की होती है, जो पहले से सिद्ध हो, अन्धकार मे पहले से विद्यमान वस्तुओं का प्रकाशन दीपक करता है, परन्तु रस की सत्ता उसके अनुभव से पूर्व या पश्चात् नही रहती। फलतः—

भट्ट नायक का दृष्टिकोण

परगत या स्वगत भाव से रस प्रतीत, उत्पन्न या अभिव्यक्त नही होता, अपितु काव्य एवं नाटच मे, अभिधा वृत्ति से अतिरिक्त, भावकत्व व्यापार से विभाव आदि का साधारणीकरण (व्यक्तिविशेष अंश के परित्याग से उपस्थापन) हो जाता है। अत. भावकत्व व्यापार से भाव्यमान (साधारणीकृत होते हुए) स्थायी भाव की भुक्ति होती है। इस भुक्ति का कारण अन्य ज्ञेय वस्तुओ के सम्पर्क से शून्य स्थिति या सत्त्वोद्रेक से प्रकाशरूप आनन्दमय साक्षात्काररूप भोग होता है।[11]

इस मत का निष्कर्ष यह है कि जिस प्रकार शब्द का व्यापार अभिधावृत्ति (शब्द का सीधा सादा अर्थ बतानेवाली वृत्ति) है, उसी प्रकार काव्य एव नाटच मे अभिधा से विलक्षण 'भावकत्व' एवं 'भोजकत्व' दो व्यापार है। काव्यार्थ के बोध के पश्चात्, भावकत्व व्यापार से विभावादि रूप सीता आदि, सीतात्व को और राम-सम्बन्धिनी रति रामत्व से सम्बद्ध अंश को छोडकर, सामान्यतया कामिनीत्व रतित्व आदि के रूप मे उपस्थापित होते है। उक्त रीति से साधारणीकृत विभाव आदि का

११—न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभिव्यज्यते, अपि तु काव्ये नाटचे चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्व-व्यापारेण भाव्यमानः स्थायी तत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्त्वेन भोगेन भुज्यते इति भट्टनायकः।

—का० प्र०, वही सं०, पृ० ९०

काव्ये दोषाभावगुणालकारमयत्वलक्षणेन नाटचे चतुर्विधाभिनयरूपेण निविडनिजमोहसंकटकारिणा विभावादिसाधारणीकरणात्मनाऽभिधातो द्वितीये-नांशेन भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानो रसोऽनुभवस्मृत्यादिविलक्षणेन रज-स्तमोऽनुवेधवैचित्र्यबलाद् द्रुतिविस्तारविकासलक्षणेन सत्त्वोद्रेक-प्रकाशानन्दमय-निजसंविद्विश्रान्तिलक्षणेन परब्रह्मास्वादसविधेन भोगेन परं भुज्यते (इति भट्टनायकः)।

—अभिनव०, गा० सं० २, अ० ६, पृ० २७७

योग भोजकत्व व्यापार से होता है, तत्पश्चात् सहृदय सामाजिक उस भोजकत्व व्यापार के द्वारा रति का आस्वाद करते है।[१२]

भट्ट नायक के इस मत से श्रीमान् अभिनवगुप्तपादाचार्य को सन्तोष न हुआ और उन्होने भावकत्व एव भोजकत्व व्यापारो की कल्पना को प्रमाणहीन और उस प्रकार के साक्षात्कार की कल्पना को भी प्रमाणहीन माना है। वे भावकत्व एव भोजकत्व दोनो को व्यञ्जना का ही रूप मानते है।* इनके मत मे साधक काव्य है, साधन व्यञ्जना है और साध्य रस है। इनका दृष्टिकोण निम्नोक्त है—

आलंकारिक आचार्य अभिनवगुप्त का दृष्टिकोण

अभिनवगुप्तपादाचार्य्य का कथन है कि लोक मे प्रमदा के कटाक्ष इत्यादि से जो सहृदय व्यक्ति यह निश्चित अनुमान कर लेते हैं कि उसके हृदय मे व्यक्तिविशेष के प्रति रति है, उन्ही को काव्य मे रस का आस्वाद होता है।

लोक मे जो प्रमदा इत्यादि लौकिक कारण होते है, वे काव्य और नाटच मे विभावन इत्यादि अलौकिक (काव्यगत, नाटचगत) व्यापारो से युक्त हो जाने के कारण विभाव इत्यादि कहलाने लगते और लौकिक कारणत्व का परित्याग कर देते हैं।

'ये विभाव मेरे है—न मेरे है, न शत्रु के है—न तटस्थ व्यक्ति के हैं' इन लौकिक सम्वन्ध-विशेषो के स्वीकार या परिहार के अनिर्णय के कारण वे विभाव सामान्यतया कामिनी इत्यादि रूपो मे रह जाते है।

१२—शब्दस्याभिधारूपवत् काव्यनाटचयोस्तद्विलक्षणं भावकत्वभोजकत्वनामक व्यापारद्वयमतिरिक्तमस्ति, काव्यार्थवोधोत्तरमेव तत्राद्येन भावकत्वव्यापारेण विभावादिरूपसीतादयो रामसंवन्धिनी रतिश्च सीतात्वरामत्वसम्वन्धाशमपहाय सामान्यत. कामिनीत्वरतित्वादिनैवोपस्थाप्यते, अन्त्येन भोजकत्वव्यापारेण तु उक्तरीत्या साधारणीकृतविभावादिसहकृतेन सा रतिः सहृदयैरास्वाद्यते (अत एव असत्या अपि रतेरास्वादः अलौकिकत्वादुपपन्नः) इति रतेरास्वाद एव रसनिष्पत्तिरिति।

—वामन, का० प्र०, वही सं०, पृ० ९१

*वाचक, लाक्षणिक और व्यञ्जक शब्दो मे क्रमश अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना वृत्तियाँ रहती है। ये वृत्तियाँ क्रमशः वाच्यार्थ (शब्दो के सीधे सादे अर्थ), लक्ष्यार्थ (वाच्यार्थ के असघटित होने पर उससे सम्वन्ध रखनेवाले अर्थ) एव व्यंग्यार्थ (वाच्यार्थ एव लक्ष्यार्थ से भिन्न एवं विलक्षण अर्थ) का वोध कराती है। व्यञ्जना वृत्ति आलकारिको द्वारा मानी गयी है। 'रस' व्यग्य होता है।

इन साधारणीकृत विभावो के द्वारा, सामाजिको मे वासनात्मक रूप से स्थित रत्यादि स्थायी भावो की अभिव्यक्ति होती है। साधारण (व्यक्तिविशेष के सम्बन्ध से हीन) उपाय के बल से वे विभाव उस समय सामाजिको की परिमित (सीमित) स्थिति को 'विगलित' कर देते है और उन सामाजिको मे एक ऐसी अपरिमित चित्त-वृत्ति का उदय हो जाता है, जिसमे अन्य वेद्य विषयो के साथ उन सामाजिको का कोई सम्पर्क नही रहता। फलत समस्त सहृदयो के सवाद (एक स्थान पर देखी हुई वस्तु के, अन्य स्थान मे, वैसे ही दर्शन) के पात्र साधारण्य के द्वारा सहृदयो को रस का आस्वाद होता है।

वह रस सामाजिको से, उनके अपने आकार के समान, अभिन्न होता है, आस्वाद्य-मानता ही उसका प्राण है। सहृदयो को रसास्वाद उसी प्रकार होता है जिस प्रकार पानक-रस (इलायची, मिर्च, शर्करा, कर्पूर, खटाई इत्यादि को मिलाकर बनाये हुए पेय पदार्थ के स्वाद) का होता है। वह रस सर्वत्र परिस्फुरित होता हुआ-सा, हृदय मे प्रविष्ट होता हुआ-सा, प्रत्यङ्ग को (अमृत के समान) स्पर्श करता हुआ-सा, अन्य समस्त ज्ञेय पदार्थो का तिरोधान करता हुआ-सा, ब्रह्मास्वाद का अनुभव कराता हुआ-सा और लौकिक सामग्रीजन्य आस्वाद की अपेक्षा विलक्षण एव चमत्कारपूर्ण होता है।

वह रस उत्पाद्य (कार्य) नही होता, क्योकि कारण के विनाश से तो कार्य का विनाश हो जाता है, परन्तु सीता आदि विभावो के वस्तुत न होने पर भी सहृदय सामाजिको को रसास्वाद होता है। वह रस 'ज्ञाप्य' भी नही होता, क्योकि ज्ञापन तो पहले से सिद्ध वस्तु का होता है, रस पहले से सिद्ध नही होता, अपितु विभाव आदि के द्वारा व्यञ्जित होकर आस्वाद्य होता है।

यदि यह कहा जाय कि 'कारक' और 'ज्ञापक' के अतिरिक्त यह तृतीय विलक्षण वस्तु कहाँ से निकल आयी? तो यह तीसरी विलक्षण या अलौकिक वस्तु यही विद्यमान है, क्योकि अलौकिक कार्य के लिए अलौकिक कारण भी होना चाहिए, अत विभावादि व्यञ्जको की अलौकिकता उनका दूषण न होकर भूषण ही है।

चर्वणा की उत्पत्ति को ही व्यवहार मे रसोत्पत्ति कह दिया जाता है, फलत रस को कार्य भी कह दिया जाय। वह प्रत्यक्ष इत्यादि लौकिक ज्ञान, अपक्व योगियो के प्रमाणनिरपेक्ष ध्यानजन्य ज्ञान, और पक्व योगियो के लौकिक सस्पर्श से शून्य स्वस्वरूप-विषयक एव आत्ममात्र-विषयक ज्ञान से भी ग्राह्य नही होता। क्योकि उसमे विभाव आदि अलौकिक पदार्थ भी रहते है, इसी लिए वह रस लोकातीत स्व-सवेदन (ज्ञान) का विषय होता है, अत उसे ज्ञेय भी कह दिया जाय।

रसग्राहक ज्ञान निर्विकल्पक नही होता, क्योंकि उसमे विभावादि-सम्बन्ध प्रधान होता है और निर्विकल्पक ज्ञान तो नाम, रूप, जाति-विशेषो से रहित होता है। वह स्वसंवेदन सविकल्पक ज्ञान भी नही, क्योकि अलौकिकानन्दमय रस के आस्वाद की अवस्था में अन्य पदार्थों का ज्ञान नही होता। फलत- इन दोनो ज्ञानो की अपेक्षा वह विलक्षण भी है और उभयात्मक भी, अत उसकी अलौकिकता सिद्ध होती है।[13]

गीत और रस

रञ्जक स्वर-सन्दर्भ गीत कहलाता है। गीत कण्ठ, तन्त्री या सुषिर से अभिव्यक्त हो सकता है। ये तीनो जब मिल जाते है, तब स्वर्ण, गन्ध और कोमलता का

१३—लोके प्रमदादिभि स्थाय्यनुमानेऽभ्यासपाटववता काव्ये नाट्ये च तैरेव कारणत्वादिपरिहारेण विभावनादिव्यापारवत्वादलौकिकविभावादि—शब्दव्यवहार्यैर्ममैवैते शत्रोरेवैते तटस्थस्यैवैते, न ममैवैते न शत्रोरेवैते न तटस्थस्यैवैते—इति सम्बन्धविशेषस्वीकारपरिहारनियमानध्यवसायात् साधारण्येन प्रतीतैरभिव्यक्तः सामाजिकाना वासनात्मतया स्थित स्थायी रत्यादिको नियतप्रमातृगतत्वेन स्थितोऽपि साधारणोपायबलात् तत्कालविगलितपरिमितप्रमातृभाववशोन्मिषितवेद्यान्तरसम्पर्कशून्यापरिमितभावेन प्रमात्रा सकलहृदयसंवादभाजा साधारण्येन स्वाकार इवाभिन्नोऽपि गोचरीकृतश्चर्व्यमाणतैकप्राणो विभावादिजीवितावधि पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः पुर इव परिस्फुरन् हृदयमिव प्रविशन् सर्वाङ्गीणमिवालिङ्गन् अन्यत् सर्वमिव तिरोदधत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् अलौकिकचमत्कारकारी शृङ्गारादिको रसः।

स च न कार्य्यः, विभावादिविनाशेऽपि तस्य सम्भवप्रसङ्गात्, नापि ज्ञाप्यः सिद्धस्य तस्यासम्भवात्, अपि तु विभावादिभिर्व्यञ्जितश्चर्वणीयः। कारकज्ञापकाभ्यामन्यत् क्व दृष्टमिति चेत्, न क्वचिद् दृष्टमित्यलौकिकसिद्धेर्भूषणमेतन्न दूषणम्। चर्वणानिष्पत्त्या तस्य निष्पत्तिरुपचरितेति कार्य्योऽप्युच्यताम्, लौकिकप्रत्यक्षादिप्रमाणताटस्थ्यावबोधशालिमितयोगिज्ञानवेद्यान्तरसस्पर्शरहित—स्वात्ममात्रपर्यवसितपरिमितेतरयोगिसवेदनविलक्षण—लोकोत्तरस्वसवेदनगोचर इति प्रत्येयोऽप्यभिधीयताम्। तद्ग्राहकं च न निर्विकल्पकं विभावादिपरामर्शप्रधानत्वात्। नापि सविकल्पक चर्व्यमाणस्यालौकिकानन्दमयस्य स्वसवेदनसिद्धत्वात्। उभयाभावस्वरूपस्य चोभयात्मकत्वमपि पूर्ववल्लोकोत्तरतामेव गमयति न तु विरोधमिति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यपादाः।

—का० प्र०, वही स०, पृ० ९५

मिश्रण-सा हो जाता है, परन्तु निरपेक्ष रहकर भी ये तीनों साधन पृथक्-पृथक् रूप मे भी 'गीत' की ही अवतारणा करते है। भगवान् वेदव्यास ने भगवान् कृष्ण के वेणु-वादन को 'वेणु-गीत' कहा है।

प्राचीन आचार्यो ने गीत में व्यञ्जना शक्ति मानी है[१४], इसी लिए वे गीत से रस-व्यञ्जना के सिद्धान्त का समर्थन करते है।[१५] आनन्दवर्धन तथा उनके विरोधी भी गीत-शब्दो मे रस-व्यञ्जना की शक्ति मानते है और कहते है कि गीत के शब्द अवाचक होने पर भी रस-व्यञ्जक होते है।[१६]

जिस प्रकार सार्थक शब्दो का एक वाचक रूप होता है, उसी प्रकार गेय स्वरो का एक विशिष्ट रूप होता है। 'स्थायी' (आधारभूत) स्वर की अपेक्षा स्वरविशेष का अन्तर उसके स्वरूप को स्पष्ट करता है। जिस प्रकार वाक्य के अङ्गभूत शब्द वाच्यार्थ के पश्चात् व्यंग्यार्थ का बोध कराते है, उसी प्रकार गेय स्वरसन्दर्भ के अङ्गभूत स्वर अपने स्वरूप के पश्चात् भाव या रस का बोध कराते है। अर्थात् गेय स्वर का 'स्वरूप' व्यंग्यार्थ के बोधन में वही कार्य करता है, जो व्यञ्जक शब्दो का वाचक रूप करता है। गीत मे स्वरो का अपना स्वरूप ही व्यञ्जना का माध्यम है, उन्हे व्यंग्यार्थ बोधन के लिए सार्थक शब्दो के समान वाचकता पर निर्भर नही रहना होता।

आचार्य आनन्दवर्धन का कथन है कि जिन नील, मधुरम्-इत्यादि वस्तुओं का इन्द्रियजन्य ज्ञान सभी को होता है, भिन्न-मति व्यक्ति भी उन वस्तुओ के विषय मे

१४—न हि यैवाभिधानशक्ति. सैवावगमनशक्तिः। अवाचकस्यापि गीतशब्दादेः रसादिलक्षणार्थावगमात्।

—ध्व०, कारि० ३३, वृ, पृ० ३४६

१५—ननु शब्द एव प्रकरणाद्यवच्छिन्नो वाच्यव्यङ्ग्ययोः सममेव प्रतीतिमुपजनयतीति किं तत्र क्रमकल्पनया। न हि शब्दस्य वाच्यप्रतीतिपरामर्श एव व्यञ्जकत्वे निबन्धनम्। तथा हि गीतादिशब्देभ्योऽपि रसाभिव्यक्तिरस्ति। न च तेषामन्तरा वाच्यपरामर्श.।

—ध्व०, कारि० ३३, वृ०, पृ० ३३४

१६—तथा हि गीतध्वनीनामपि व्यञ्जकत्वमस्तीति रसादिविषयम्। न च तेषा वाचकत्वं लक्षणा वा कथञ्चिल्लक्ष्यते। शब्दादन्यत्रापि विषये व्यञ्जकत्वस्य दर्शनाद् वाचकत्वादिशब्दधर्मप्रकारत्वमयुक्तं वक्तुम्।

—ध्व०, कारि० ३३, वृ०, पृ० ३५८

मतभेद के शिकार नही होते। जिस वस्तु के नील रूप का निर्बाध ज्ञान हो रहा हो, उसके विषय में कोई भी नही कहेगा कि वह वस्तु पीली है, नीली नही। उसी प्रकार वाचक शब्दो, अवाचक गीतध्वनियो एवं अशब्द चेष्टाओ (मुद्राओ) की सर्वानुभवसिद्ध व्यञ्जकता को भला कौन अस्वीकृत कर सकता है?[१७]

रसकौमुदीकार श्रीकण्ठ भी काव्य, गीत एवं नाटच को निरपेक्ष रूप मे अर्थात् पृथक्-पृथक् रस का उद्गम स्थान मानते है।[१८]

भाषा की अपेक्षा नाद के प्रभाव का क्षेत्र अधिक व्यापक है। भाषाविशेष का मर्मज्ञ सहृदय व्यक्ति ही काव्य के द्वारा रसास्वाद करता है, परन्तु गीत का प्रभाव बच्चो पर भी पडता है।[१९] गीत से तो तिर्यक् योनियो मे उत्पन्न प्राणी भी आनन्द-मग्न होते और प्राण तक दे देते है।[२०] नाद के इस प्रभाव के कारण ही महर्षि भरत ने गीत को नाटच की शय्या कहा है। गीत के द्वारा 'असहृदय' व्यक्तियों के हृदय मे पडी हुई राग-द्वेष की ग्रन्थियाँ भी घुल जाती है, उनका हृदय भी तरल हो जाता है और वे भी सहृदयो के समान ही रसास्वाद करने लगते है।

तिर्यक् योनि मे उत्पन्न होनेवाले प्राणी अपने भावो की अभिव्यक्ति भी नाद के द्वारा ही करते है, हमारे पास उनके मनोभावो को जानने का यही साधन है। भाषा भले ही कभी-कभी ठीक-ठीक मनोभावो को अभिव्यक्त करने मे समर्थ न हो, परन्तु नाद कभी असफल नही होता। हर्ष, शोक इत्यादि चित्तवृत्तियो को व्यक्त करनेवाले नाद-रूप सार्वभौम है, वे भाषा की भाँति एकदेशीय नहीं। कालिदास के मूल काव्य

१७—न हि नीलमधुरादिष्वशेषलोकेन्द्रियगोचरे बाधारहिते तत्त्वे परस्परं विप्रतिपन्ना दृश्यन्ते। न हि बाधारहित नीलं नीलमिति ब्रुवन्नपरेण प्रतिषिध्यते नैतन्नील पीतमेतदिति। तथैव व्यञ्जकत्व वाचकानां शब्दानामवाचकाना च गीत-ध्वनीनामशब्दरूपाणा च चेष्टादीना यत्सर्वेषामनुभवसिद्धमेव तत्केनापह्नूयते।
—ध्व०, कारिका ३३, वृ०, पृ० ३७६

१८—नाटचे गीते च काव्ये त्रिषु वसति रसश्शुद्धबुद्धस्वभाव.।
—भ० को०, पृ० ५२९

१९—अज्ञातविषयास्वादो बाल· पर्य्यङ्किकागत.।
रुदन् गीतामृत पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते॥

२०—वने चरन् तृणाहारश्चित्रं मृगशिशु. पशुः।
लुब्धो लुब्धकसङ्गीते गीते यच्छति जीवितम्॥

का आनन्द असस्कृतज्ञ व्यक्ति नही ले सकता, परन्तु नाद-सौन्दर्य-जनित आनन्द का अनुभव प्रत्येक को होता है।[२१]

रस का स्वरूप

रस के स्वरूप को हम एक बार पुन ध्यान मे रख ले —

"रजोगुण एव तमोगुण से अस्पृष्ट अन्त.करण सत्त्व कहलाता है[२२] या बाह्य विषयो से चित्तवृत्तियो को हटानेवाला अन्त करण का धर्मविशेप 'सत्त्व' है[२३]। रजोगुण एव तमोगुण को दबाकर 'सत्त्व' का प्रकाशित होना उसका 'उद्रेक' कहलाता है।[२४] सत्त्व के उद्रेक के कारण अखण्ड, स्वयप्रकाश, आनन्दस्वरूप चेतना 'रस' है। अन्य पदार्थो का ज्ञान उस चेतना के समय नही होता। वह चेतना या अनुभूति ब्रह्मास्वाद-सहोदर है। अलौकिक चमत्कार, अर्थात् रजोगुण एव तमोगुण के दब जाने के परिणामस्वरूप हो जानेवाला चित्त का विस्तार, इसका प्राण है। कुछ प्राक्तन पुण्यशाली सहृदय सामाजिक उसी प्रकार उस रस का अनुभव करते है, जिस प्रकार वे अपने आपसे अभिन्न अपने आकार का अनुभव करते है।"[२५]

२१—तथा च प्राण्यन्तरस्य मृगसारमेयादेरपि नादमाकर्ण्य भयरोषशोकादि प्रतिपद्यते, तदय नादाच्चित्तवृत्त्याद्यवगमोऽनुमान तावत्। ये त्वेते वर्णविशेपास्ते तन्नादरूपसामान्यात्मकपदतन्नु (न्तु) ग्रन्थिमया इव प्राच्यप्रयत्नातिरिक्तनिमित्तान्तरापेक्षा, तत एवानभिप्रेतेऽन्यथापि प्रयोक्तु शक्या, अत एव दृप्टव्यभिचारा। नादस्तु झटित्युद्भिन्नमुखरागपुलकस्थानीयो नान्यथासिद्धोऽन्यथासिद्ध शब्दार्थ बाधते। —अभि०, गा० स०, अध्या० १७, पृ० ३८७

२२—रजस्तमोभ्यामस्पृष्ट मन. सत्त्वमिहोच्यते।
—सा० दर्पण, परि० ३, कारिका ३ के पश्चात् उद्धृत

२३—इत्युक्तप्रकारो बाह्यमेयविमुखतापादक. कश्चनान्तरो धर्म्म. सत्त्वम्।
—सा० दर्पण, परि० ३, कारिका ३ के पश्चात् वृत्ति

२४—तस्योद्रेको रजस्तमसी अभिभूय आविर्भाव.।
—सा० दर्पण, परि० ३, कारिका ३ के पश्चात् वृत्ति

२५—सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मय.।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदर॰॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राण. कैश्चित् प्रमातृभि॰।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥

जो लोग स्वभाव से ही स्वच्छ दर्पण के समान हृदय से युक्त है, वे अपने मन को ससारोचित क्रोध, लोभ, इच्छा आदि के वशीभूत नही होने देते, उनके लिए 'दश रूपको' (रूपक के दस भेदो) के श्रवण मात्र से वह 'रस' स्पष्ट होता है, जो साधारण रसनात्मक चर्वणा के द्वारा ग्राह्य है। जो लोग वैसे विशुद्धान्त.करण नही उन्हे भी वैसी चर्वणा कराने के लिए नट आदि की प्रक्रिया है। ऐसे लोगो के क्रोध, शोक आदि से ग्रस्त हृदय की ग्रन्थियों का भञ्जन करने के लिए महर्षि भरत ने 'गीत' आदि (वाद्य, नृत्य) की प्रक्रिया विरचित की है।[२६]

उपर्युक्त पक्तियो से हम इन निष्कर्षो पर-पहुँचते हैं—

(अ) रस एक विशेष चेतना है, जो रजोगुण एव तमोगुण के दब जाने पर होती है।

(आ) मनुष्य उस चेतना के क्षणो मे रज एवं तम से उत्पन्न व्यक्तिगत चिन्ता, क्रोध, शोक इत्यादि से मुक्ति पा लेता है।

(इ) गीत अर्थात् स्वरसन्निवेश भी रजोगुण एव तमोगुण से उत्पन्न व्यक्तिगत हर्ष, शोक इत्यादि हृदयग्रन्थियो का भञ्जन करने अर्थात् रजोगुण एवं तमोगुण को दबाकर सत्त्व का उद्रेक करने मे समर्थ है।

स्वरसन्निवेश से रसपरिपाक की प्रक्रिया

दूसरो को सुनाने एव आनन्दित करने की दृष्टि से गीत की सृष्टि करते समय गायक या वादक जिन भावो की अभिव्यक्ति करता है, वे वास्तविक भावों का अभिनय ही होते है। करुण भावो की अभिव्यक्ति के समय कलाकार लौकिक रूप में पीडित नही होता। फलत. स्वरो द्वारा भावो का अभिनय करते समय कलाकार की स्थिति अभिनेता से भिन्न नही होती। हाँ, अभिनेता की अपेक्षा उसके पास साधन सीमित होते है। गायक सार्थक शब्दो का आश्रय लिये बिना ही स्वरसंवलित, शुष्काक्षरो से अथवा आलाप द्वारा भावाभिव्यक्ति करता है, उसकी कण्ठध्वनि अनुकूल 'काकु' से

२६—तत्र ये स्वभावतो निर्मलमुकुरहृदयास्त एत्र संसारोचितक्रोधमोहाभिलाष-परवशमनसो न भवन्ति। तेषां तथाविधदशरूपकाकर्णनसमये साधारण-रसनात्मकचर्वणाग्राह्यो रससञ्चयो नाट्यलक्षण स्फुट एव। ये त्वतथाभूता-स्तेषा प्रत्यक्षोचिततथाविधचर्वणालाभाय नटादिप्रक्रिया। स्वगतक्रोधशोकादि-सकटहृदयग्रन्थिभञ्जनाय गीतादिप्रक्रिया च मुनिना विरचिता।

—अभिनव०, गा० स० २, अ० ६, पृ० २९१

युक्त होती है और उसकी मुद्राएँ भावानुकूल होती जाती है, परन्तु वह अभिनेता के समान पात्रविशेष के वेप इत्यादि से युक्त नही होता।

गायक स्वरसन्निवेश के द्वारा जिन भावो की अभिव्यक्ति करता है, वे 'साधारण्य' एवं 'प्राणिमात्र-हृदयसवाद' के कारण 'सावधान' श्रोताओ की, रजस्तमोनिर्मित रागद्वेषरूप ग्रन्थियों को विगलित करके उनके हृदय मे उस चेतना का अनुभव करा देते हैं, जिसे 'रस' कहा जाता है।

स्वरसन्निवेश की इसी शक्ति के कारण हरिण-जैसे प्राणी मे भी उस लौकिक भय का विगलन हो जाता है, जो लौकिक स्थिति मे उसे लुब्धक से चौकन्ना रखता है। फलतः स्वरसन्निवेश के प्रभाव से सहृदय हरिण सहृदयता का अभिनय मात्र करनेवाले कलाकार लुब्धक की हृदयहीनता का ग्रास बन जाता है।

महाकवि कालिदास ने कहा है कि रम्य दृश्यो को देखकर और मधुर शब्दो को सुनकर प्राणी के मन में जन्मान्तर से स्थित भावनाएँ जाग जाती है।[२७] जहाँ तक नाद-माधुरी का सम्बन्ध है, वह तिर्यक् योनि के प्राणियो तक को तो प्रभावित करती ही है, श्रीमद्भागवत के अनुसार जड़ प्रकृति भी उससे प्रभावित होती है।[२८]

गान-क्रिया मे स्थायी, उसके संवादी एवं सञ्चारी स्वरों का कार्य

नाट्य की रस-प्रक्रिया में सीता आदि आलम्बन विभाव, पुष्पवाटिका इत्यादि उद्दीपन विभाव, आश्रय की चेष्टा आदि अनुभाव और निर्वेद, उत्सुकता इत्यादि संचारी भावों के संयोग से रस-निष्पत्ति होती है।

स्वर-सन्निवेश के द्वारा रस-प्रक्रिया में स्थायी भाव का आलम्बन 'अंश स्वर' होता है, जिसकी संज्ञा 'स्थायी स्वर' होती है। 'स्थायी स्वर' का संवादी स्वर 'उद्दीपन विभाव' का कार्य करता है, प्रयुज्यमान 'अनुवादी स्वर' अनुभाव का कार्य करते है और 'स्थायी स्वर' को उभारते रहते है एवं 'सञ्चारी स्वर' सञ्चारी भावों के प्रकाशक होते है।

२७—रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् पर्य्युत्सुकोभवति यत्सुखितोऽपि जन्तु.।
तच्चेतसा स्मरति नूनमवोधपूर्व भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥
—अभिज्ञानशाकुन्तल

२८—नद्यस्तदा तदुपधार्य्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगा.।
आलिङ्गनस्थगितमूर्तिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहारा:॥
—श्रीमद्भागवत, स्कन्ध१०, अ० २१, श्लो० १५

अतः यह कहा जा सकता है—

स्थायी स्वर पर आलम्बित, उसके सवादी स्वर द्वारा उद्दीप्त, अनुवादी स्वरों द्वारा अनुभावित और सञ्चारी स्वरो द्वारा परिपोपित, सहृदयों की वह चेतनाविशेप 'रस' है, जिसकी अनुभूति के समय रजस्तमोगुण-जनित उनकी रागद्वेषादि ग्रन्थियाँ विगलित हो जाती है।

स्थायी स्वर, सवादी स्वर, अनुवादी स्वर एव सञ्चारी स्वर ये चारो ही परिभापाएँ नाटचशास्त्र मे आयी है। नाटचशास्त्र मे स्वर-सन्निवेश के द्वारा स्वतन्त्ररूपेण रस-परिपाक पर पृथक् विचार उसी प्रकार नही किया गया है, जिस प्रकार श्रव्य काव्य अथवा मुक्तक काव्य मे रस-परिपाक पर विचार नही।

जिस प्रकार वाह्य प्रकृति के साहचर्य मे आकर सहृदय की हृदय-ग्रन्थियाँ विगलित हो जाती है, उसी प्रकार नाद-सौन्दर्य उसके हृदय को विगलित कर देता है। ऐसी स्थिति मे रस-परिपाक के लिए किसी कथा या घटना की आवश्यकता नही होती।

स्थायी स्वरों का रसो मे विनियोग

स्थायी स्वर	रस	स्थायी भाव
षड्ज	वीर, अद्भुत, रौद्र	उत्साह, विस्मय, क्रोध
ऋषभ	वीर, अद्भुत, रौद्र	उत्साह, विस्मय, क्रोध
गान्धार	करुण	शोक
मध्यम	शृङ्गार, हास्य	रति, हास
पञ्चम	शृङ्गार, हास्य	रति, हास
धैवत	वीभत्स, भयानक	भय, जुगुप्सा
निपाद	करुण	शोक

जब तक स्वर 'स्थायी' नही होता, तव तक वह 'भाव' का प्रकाशक होता है, 'रस' का नही। उस अवस्था मे उसके द्वारा अभिव्यक्त भाव 'सञ्चारी' होता है, स्थायी भाव नही। उस समय वह स्वरविशेप 'स्थायी स्वर' पर आलम्बित स्थायी भाव का परिपोपण करता है।

अनुभव यह सिद्ध करता है कि जिन रागो मे मध्यम स्थायी स्वर होता है, वे सयोग शृगार और जिनमे पञ्चम अशस्वर होता है, वे विप्रलम्भ (वियोग) शृङ्गार के व्यञ्जक होते है।

अन्तरगान्धार एव काकली निषाद भी शोकव्यञ्जक होते हैं, ये भरतसंप्रदाय में स्थायी नही होते।

जातिप्रयोग एवं रागप्रयोग में रसाभिव्यञ्जक स्वर प्रयोज्य स्थायी स्वर होता है। अतएव 'स्थायी स्वर' परिवर्तित होने पर एक ही 'जाति' पृथक्-पृथक् रसों मे विनियुक्त होती है।

उदाहरणतया षाड्जी जाति के पाँच रूप होते है, क्योंकि इसके अंशस्वर या स्थायी स्वर षड्ज, गान्धार, मध्यम, पञ्चम एवं धैवत होते है। षड्ज स्थायी स्वर होने पर वीर, अद्भुत, रौद्र, गान्धार या निषाद अंश होने पर करुण, मध्यम या पंचम के स्थायी होने पर शृङ्गार एवं धैवत के अंश होने पर बीभत्स या भयानक रस की अभिव्यक्ति होती है।

स्थायी स्वर मे भेद होने पर प्रयोज्य सप्तक का रूप बदल जायगा, क्योंकि स्थायी या अंश स्वर ही सप्तक या स्थान का आरम्भक स्वर होता है। इस प्रकार षाड्जी के एक शुद्ध भेद एवं चार अंश विकृत भेदो के लिए स्थायीभेद से हमे पाँच सप्तक मिलेंगे, जिनके रूप निम्नलिखित है—

१—षड्जांश षाड्जी के लिए—स, ३रे, २ग, ४म, ४प, ३ध, २नि, ४स

इन आठ स्वरों मे प्रथम सात स्वर षाड्जग्रामिक उत्तरमन्द्रा का आरोह है, अन्तिम स्वर 'अंश' स्वर षड्ज का मध्य सप्तकीय रूप है। ये स्वर हमे षाड्जी का शुद्ध रूप देंगे और षाड्जी जाति का विशिष्ट वर्ण अर्थात् स्वरसन्निवेश हमे षड्ज अंश होने के कारण वीर, अद्भुत या रौद्र रस की अनुभूति करायेगा।

२—गान्धारांश षाड्जी के लिए—ग, ४म, ४प, ३ध, २नि, ४स, ३रे, २ग*

---

* आधुनिक ठाठवादी शीघ्रतापूर्वक इस सप्तक को सरलता के साथ 'स, रे, ग, मं, प, ध, नि' कह देगे। उससे केवल एक लाभ यह होगा कि उन्हे भरत-सम्प्रदाय में 'तीव्र मध्यम' का दर्शन हो जायगा, जो कि वास्तव मे भरत का धैवत है और 'स्थायी' गान्धार से ग्यारह श्रुतियो के अन्तर पर स्थित है। परन्तु इस सप्तक के द्वारा अभिव्यक्त होनेवाले रस का सिद्धान्त उनकी पहुँच से बाहर रहेगा।

एक विचित्र परिणाम यह होगा कि

'ग, ४म, ४प, ३ध, २नि, ४स, ३रे, २ग' को—

'स, ४रे, ४ग, ३म, २प, ४ध, ३नि, २स' कहने से चतुश्रुतिक ऋषभ और धैवत की सृष्टि होगी, त्रिश्रुतिक मध्यम बनेगा, जो षड्ज से ग्यारह श्रुति दूर होगा और एक ऐसा गान्धार उत्पन्न होगा, जो षड्ज से आठ श्रुतियो की दूरी पर होगा, षड्ज से सत्रह श्रुतियो के अन्तर पर स्थित एक नवीन धैवत का जन्म होगा। इस संज्ञावाले इन स्वरो

इस अवस्था मे स्थायी स्वर गान्धार है, जिसका स्थायित्व करुण रस का अभिव्यञ्जक है। शुद्ध षाड्जी मे निषाद का प्रयोग अल्प होता है, परन्तु गान्धारांश अवस्था मे अंश-संवादी होने के कारण उसका प्रयोग अनल्प होगा। षड्जांश अवस्था मे जो बहुलता षड्ज एवं उसके संवादी पञ्चम को प्राप्त थी, वही स्थिति इस अवस्था मे गान्धार एवं निषाद की होगी। हाँ, न्यास स्वर षड्ज ही होगा।

३—मध्यमांश षाड्जी के लिए—म, ४प, ३ध, २नि, ४स, ३रे, २ग ४म*

स्वरो की यह स्थिति 'मध्यम' के स्थायी होने का परिणाम है। इस अवस्था मे षाड्जी का स्वर-सन्निवेश शृंगार की अभिव्यक्ति करेगा। मध्यम एवं उसके संवादी षड्ज का बहुत्व रहेगा।

४—पञ्चमांश षाड्जी के लिए—प, ३, ध, २ नि, ४ स, ३ रे, २ ग, ४ म, ४ प†

की कोई स्थिति भरत-सम्प्रदाय मे नही, फलतः पूर्वोक्त स्वरो की भरतोक्त संज्ञाएँ ही वैज्ञानिक है।

*उत्तर-भारतीय सरस्वती वीणा मे ठीक यही—

'म, ४प, ३ध, २नि, ४स, ३रे, २ग, ४म'

'स, ४रे, ३ग, २म, ४प, ३ध, २नि, ४स' कहलाते है, जिनके ऋषभ-धैवत मे संवाद नही, क्योकि वस्तुतः ये दोनो क्रमशः प्राचीन पञ्चम और ऋषभ है, जिनमे बारह श्रुतियो का अन्तर है।

पाश्चात्य डायटॉनिक स्केल इस मूर्च्छना मे अन्तर गांधार करने से बनता है, जो उत्तर भारतीय वीणा का विलावल है। यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस चतुश्रुतिक धैवत की बात आधुनिक ठाठवादी करते है, उसका अस्तित्व उत्तर-भारतीय सरस्वती वीणा में नही। इस सरस्वती वीणा के शुद्ध धैवत का मध्यम के साथ षड्जान्तरभाव है और वह मध्यम से आठ नही, सात श्रुतियो के अन्तर पर स्थित है। उत्तर-भारतीय सरस्वती वीणा के मध्यम और धैवत प्राचीन मध्यमादि मूर्च्छना के निषाद और ऋषभ है, जिनमे सात श्रुतियों का अन्तर है।

मध्यमादि सान्तरा मूर्च्छना के स्वरो को षड्ज इत्यादि करने से चतुश्रुतिक ऋषभ की सृष्टि होती है, जो धैवत के साथ संवाद नही करता, अतः भरतोक्त संज्ञाएँ ही वैज्ञानिक है।

† आधुनिक ठाठवादी इन—

'प, ३ध, २नि, ४स, ३रे, २ग, ४म, ४प' को

'स, ३रे, २ग, ४म, ३प, २ध, ४नि, ४स'—

यह पञ्चमांश स्थिति वियोग-शृंगार को अभिव्यक्त करेगी। इस अवस्था में पञ्चम एवं उसके सवादी 'पड्ज' का बहुत्व होगा।

५—धैवतांश षाड्जी के लिए—'ध, २ नि, ४ स, ३ रे, २ ग, ४ म, ४ प, ३ ध' *

कह देगे, परन्तु त्रिश्रुतिक ऋषभ का अस्तित्व उनके यहाँ नही। इन 'स' और 'प' मे वारह श्रुतियो का अन्तर होने के कारण इनमे परस्पर सवाद नहीं होगा, क्योंकि वस्तुतः ये 'पञ्चम' और 'ऋपभ' है। पञ्चम को 'अङ्गद का चरण' माननेवाले सज्जनो को पञ्चम का यह 'च्युतत्व' भला कैसे स्वीकार्य होगा। 'धैवत' जो कि मूर्च्छना का 'गान्धार' है, वह स्थायी स्वर पञ्चम से चौदह श्रुतियो के अन्तर पर स्थित है। पड्ज से चौदह श्रुतियो के अन्तर पर स्थित किसी 'ध' की स्थिति की सङ्गति भी ठाठवाद मे कैसे होगी ? अतएव इन स्वरो के प्राचीन नाम ही वैज्ञानिक है।

आधुनिक मालकोस, दरवारी और आसावरी रागो का 'धैवत' भैरव के 'धैवत' से उतरा हुआ कहा जाता है। वास्तविक स्थिति यह है 'धैवत' कही जानेवाली यह ध्वनि पञ्चमादि षाड्जग्रामिक मूर्च्छना का गान्धार है, जो अंश स्वर 'पञ्चम' से चौदह श्रुतियों के अन्तर पर स्थित है।

इन रागो मे तानपूरे का पञ्चमवाला तार मध्यम मे मिलाया जाना चाहिए। आसावरी और दरवारी में जव 'म प ग' तान मे पञ्चम का स्पर्शमात्र होता है, तव 'पञ्चम' उतरा हुआ लगता है। कुशल तन्त्रीवादक इसी लिए इस स्वर-समुदाय में पञ्चम को 'मीड' द्वारा व्यक्त करते है, स्थिर सारिका के पञ्चम का प्रयोग नही करते, धैवत भी मीड द्वारा ही व्यक्त किया जाता है। वस्तुतः यह 'म प ग' पञ्चमादि मूर्च्छना का 'स, रे, नि' है, जिसके 'रे-नि' मे ऋषभ निषाद से सात श्रुतियो के अन्तर पर स्थित है।

जो सज्जन इन रागों में षड्ज के साथ पञ्चम का सवाद देखना 'रागरूप' देखने की अपेक्षा अधिक अच्छा समझते है, उन्हे वैसा मानने का अधिकार है। हमारी दृष्टि में इन रागो मे पञ्चम का संवाद षड्ज के साथ नही, क्योकि वह 'पञ्चम' प्राचीन ऋषभ है।

इस सम्वन्ध मे सहृदयो के कान प्रमाण है।

* ठाठवादी इन—

'ध, २नि ४स, ३रे, २ग, ४म, ४प, ३ध' को

'स, २रे, ४ग, ३म, २म, ४ध, ४नि, ३स'

कह देंगे, परन्तु यह मूर्च्छना ठाठ-सिद्धान्त के लिए 'ठाठ-विध्वंस' और 'मेल-सिद्धान्त' के लिए 'मेल-मर्दन' सिद्ध होगी । क्योंकि—

इस अवस्था मे यह स्वरसमूह धैवत के स्थायित्व के कारण बीभत्स एवं भयानक रसों का अभिव्यञ्जक होगा । स्थायी स्वर धैवत एव उसके सवादी ऋषभ का बहुत्व इस अवस्था मे होगा ।

(अ) ठाठवादियो को पञ्चम नही मिलेगा, जब कि 'मेल' या 'ठाठ' मे पञ्चम का होना अनिवार्य है ।

(आ) मध्यम के दोनो रूप षाड्जी मे आगे-पीछे प्रयुक्त होते हुए मिलेंगे, जब कि एक मेल मे दोनो मध्यमो का होना असम्भव है ।

(इ) त्रिश्रुतिक षड्ज एव मध्यम का दर्शन होगा ।

अत इन स्वरो की भरतोक्त सज्ञाएँ ही वैज्ञानिक है ।

इस मूर्च्छना से उत्पन्न होनेवाले रागो का व्यवहार बारहवी शताब्दी मे उठ चुका-सा था । हमने उन रागो को पुष्ट एव अखण्डनीय प्रमाणो के आधार पर स्पष्ट करके उनमे गेय वस्तुओ की रचना करके शिष्यो को उनकी शिक्षा दी है ।

जातियो के शुद्ध, विकृत एवं सकीर्ण रूप को स्पष्ट करके उनमे 'वाक्' और 'गेय' की रचना करने की दिशा मे हमने कुछ कार्य आरम्भ कर दिया है । कार्य लम्बा है । भगवान् की इच्छा यदि इस शरीर से कार्य लेने की हुई, तो इस सम्बन्ध मे एक विशाल ग्रन्थ यथासमय पृथक् प्रस्तुत किया जायगा ।

अनुबन्ध (३)

श्रुतियों की अनन्तता और देशी रागों में प्रयोज्य ध्वनियाँ

श्रुतियों की अनन्तता

नाट्यशास्त्र के बम्बई-संस्करण मे सप्तरूप-प्रयोज्य अलङ्कारो का वर्णन करते समय श्रुतियो की तीन अवस्थाएँ आयत, मृदु एव मध्यम बतायी गयी है।[१] एकतन्त्री-जैसी वीणा मे जब ये श्रुतियाँ अपने वास्तविक स्थान की अपेक्षा घुडच की ओर अर्थात् नीचे निकलती है तो 'आयत', मेरु की ओर अर्थात् ऊँचाई की ओर निकलती है तो 'मृदु' और अपने वास्तविक स्वरस्थान पर निकलती है तो 'मध्यम' या 'मध्य' कहलाती है।

स्वरो की शुद्ध अवस्था को अभिव्यक्त करनेवाली श्रुति-विशेष का भी यह 'आयतत्व' अर्थात् उत्कर्ष एव 'मृदुत्व' अर्थात् अपकर्ष, प्रयोग अर्थात् गान-क्रिया अथवा वाद्य-क्रिया के परिणाम-स्वरूप होता है, फलत. श्रुतियाँ समुद्र मे उठनेवाली तरङ्गों के समान अनन्त हो जाती है। कोहल ने इसीलिए श्रुतियो को अनन्त कहा है।[२]

विभिन्न अवसरो पर गानक्रिया के परिणामस्वरूप स्वर अपने स्थान से प्रमाण-श्रुति या केशाग्र अन्तर उतरते या चढ़ते है, उस समय उनका शुद्ध रूप वैस्वर्ययुक्त प्रतीत होता है। इसी लिए विश्वावसु ने कहा है कि 'क्रिया' (गान, वादन) एव ग्राम-विभाग के परिणामस्वरूप स्वरो की स्वस्थानस्थ अवस्था का बोध करानेवाली श्रुतियो मे भी वैस्वर्य प्रतीत होता है।[३]

१—आयतत्वं तु चेन्नीचं (चे) मृदुत्वं तु विपर्यय. (ये)।
स्वस्थाने मध्यमत्वं च श्रुतीनामेप निर्णय ॥ ——नाट्यशास्त्र, ब० सं०, अध्याय २९

२—आनन्त्य हि श्रुतीनां च सूचयन्ति विपश्चितः।
यथा ध्वनिविशेषाणामानन्त्यं गगनोदरे॥
उत्तालपवनोद्वेलजलराशिसमुद्भवाः।
इयत्तां प्रतिपद्यन्ते न तरङ्गपरम्पराः॥ ——कोहल

३—एतासामपि वैस्वर्य क्रियाग्रामविभागत.। ——विश्वावसु

षाड्जग्रामिक उत्तरमन्द्रा मे श्रुतियो का क्रम एक बार हमे फिर ध्यान मे रख लेना चाहिए—

स रे ग अ० म प ध नि का० स

| | | | | |

० कखग खग गक खग गकखग कखग खग गक खग

यह स्थिति स्पष्ट करती है कि इस श्रुतिक्रम मे —

(अ) प्रत्येक शुद्ध स्वर को अपनी अपकृष्ट या मृदु अवस्था मिल सकती है, क्योंकि प्रत्येक स्वर की अन्तिम श्रुति 'ग' अन्तर या प्रमाणश्रुति है, परन्तु अन्तर-गान्धार एवं काकलीनिषाद की अन्तिम श्रुति 'क' है, 'ग' नही। अत इन्हे प्रमाणश्रुति उतारने पर जो दो ध्वनिया प्राप्त होंगी, वह इस श्रुति-क्रम मे नही है।

(आ) गान्धार, मध्यम एव निषाद की उत्कृष्ट या आयत अवस्था इस श्रुतिक्रम मे प्राप्त होगी, क्योंकि इन स्वरो की पश्चाद्वर्तिनी श्रुतियाँ 'ग' अन्तर है, परन्तु ऋषभ, धैवत, अन्तरगान्धार एव काकलीनिषाद को एक प्रमाणश्रुति चढाने पर जो चार नवीन ध्वनियाँ जन्म लेगी, उनका अस्तित्व इस श्रुतिक्रम मे नही, क्योंकि इन चारो स्वरो की पश्चाद्वर्तिनी श्रुति 'ग' न होकर 'ख' अन्तर है।

(इ) यदि अपकृष्ट ध्वनियो का और भी अपकर्ष किया जाय और उत्कृष्ट ध्वनियो का और भी उत्कर्ष किया जाय, तो और भी विलक्षण ध्वनियाँ मिलेगी। 'ग' परिमाण से श्रुतियो का निरन्तर अपकर्ष या उत्कर्ष हमे श्रुतियो की अनन्तता का दिग्दर्शन करा देगा। इस अनन्तता के ज्ञान की प्रक्रिया हमे भरत-बोधित बाईस श्रुतियो के क्रम से ही ज्ञात होती है, अत. मूल श्रुतियाँ बाईस मानी गयी है।

शार्ङ्गदेव ने अपकृष्ट षड्ज एव मध्यम को च्युत षड्ज एव च्युत मध्यम कहा है, अपकृष्ट पञ्चम माध्यम ग्रामिक या त्रिश्रुतिक पञ्चम कहा गया है और उत्कृष्ट गान्धार एव निषाद को साधारण गान्धार एवं कैशिक निषाद की संज्ञा दी गयी है।

देशी प्रयोग

नाट्यशास्त्र मे सङ्गीत के दो विभाग 'मार्ग' और 'देशी' नही किये गये है। नाट्य-शास्त्र मे वर्णित आतोद्य-विधि का प्रयोजन लोकरञ्जन है। मनीषियो को सदा 'वेद' के साथ 'लोक' का भी प्रामाण्य मान्य रहा है।

वाल्मीकि ने केवल सात जातियो का उल्लेख किया है। नाट्शास्त्र पश्चात्कालीन सग्रह-ग्रथ है। सम्भव है, उसमे वर्णित सङ्कीर्ण जातियाँ पश्चात्कालीन विकास हो।

सङ्कीर्ण जातियो मे 'षड्जोदीच्यवती', 'मध्यमोदीच्यवती' सज्ञाओ का 'उदी-

च्यवती' शव्द उन उन जातियो के रूपों का उत्तरदिशा सम्वद्ध से क्षेत्रों मे प्रचलित होने का प्रमाण हो सकता है। सम्भव है, ये जातियाँ उत्तरीय क्षेत्रो की सृष्टि हो।

यद्यपि नाट्यशास्त्र को सप्तस्वर, षट्स्वर एव पञ्चस्वर प्रयोग ही स्वीकृत है, तथापि चतु:स्वर प्रयोग भी नाट्यशास्त्र में देशापेक्ष (देशविशेष में प्रचलित) कहा गया है, अत: आज 'देशी' कहे जानेवाले सङ्गीत का वीज नाट्यशास्त्र मे विद्यमान है।

नाट्यशास्त्र मे वर्णित 'आतोद्य विधि' एक विशिष्ट विधि है, उसके अपने कुछ नियम है। परन्तु इसका यह अर्थ नही कि अनन्त आनन्द की अभिव्यक्ति में समर्थ अनन्त प्रक्रियाएँ नाट्यशास्त्र मे गिना दी गयी है। हाँ, यह सत्य है कि नाट्यशास्त्र के कुछ व्यापक एवं त्रिकालावाधित नियम विश्वभर के सङ्गीत को अपने विस्तृत अङ्क में ले लेते है।

अन्य आचार्य

वृद्ध काश्यप, याष्टिक, आञ्जनेय एवं मतङ्ग-जैसी विभूतियो ने देशी सङ्गीत पर विचार किया है, परन्तु इनमें से केवल मतङ्ग का ग्रन्थ प्राप्त है। मतङ्ग ने देशी रागो को भी ग्राम-विभाग मे वर्गीकृत किया है।

प्रो० रामकृष्ण कवि ने वृद्ध काश्यप के जो उद्धरण दिये हैं, उनसे सिद्ध होता है कि वृद्ध काश्यप सात शुद्ध स्वर, उत्कृष्ट पञ्चम, एक अन्य धैवत, काकली निपाद, अन्तर गान्धार, षड्ज, मध्यम, गान्धार के साधारित रूप, (तथा मध्यमग्रामीय पञ्चम ?) ये पन्द्रह स्वर जाति प्रयोज्य मानते थे। काश्यप का कथन है कि रागभाषाओ मे काकली और अन्तर के योग से चतु:श्रुति, द्विश्रुति एवं एकश्रुति स्वरों का प्रयोग करना चाहिए।

यह 'एकश्रुति' स्वर, 'उत्कृष्ट पञ्चम,, और 'अन्य धैवत' स्वर भरत-सम्प्रदाय में चर्चा का विषय नही वने है।

भरत-सम्प्रदाय में 'स' के पश्चात् 'क, ख, ग' अन्तर पर ऋषभ स्थित है, यदि इस श्रुतिक्रम को उलटकर 'ग क ख' कर दिया जाय, तो षड्ज के पश्चात् 'ग क' अन्तर पर स्थित ध्वनि षड्ज से उतने ही अन्तर पर स्थित होगी, गान्धार से जितने अन्तर पर अन्तरगान्धार और निषाद से जितने अन्तर पर काकली निषाद है। षड्ज के पश्चात् इस अन्तर पर स्थित ध्वनि को आधुनिक संगीतज्ञ कोमल ऋषभ कहेगे और भरतोक्त ऋषभ उस ध्वनि से केवल 'ख' अन्तर पर स्थित होगा। यदि धैवत की श्रुतियो के क्रम 'क, ख, ग' को भी उलटकर 'ग, क, ख' कर दिया जाय, तो पञ्चम से 'ग, क' अन्तर पर आधुनिक कोमल धैवत सुनाई देगा और धैवत उससे एक 'ख' श्रुति के अन्तर पर होगा।

प्रो० रामकृष्ण कवि ने कहा है कि 'जाति-विभाग' रागभापा-विभाग से सर्वथा भिन्न है और भरत (!) ने कहा है कि वह लक्ष्य मे असम्भव है। परन्तु जो श्लोक श्री कवि ने उद्धृत किये है, उनमे काश्यप ने अपने पन्द्रह स्वरो का प्रयोग 'जातियो' मे ही बताया है। काश्यप की उक्ति को लक्ष्य में असम्भव सूचित करनेवाले 'भरत' कौन है, इस दिशा मे श्री कवि ने कोई संकेत नही किया है।

प्रो० रामकृष्ण कवि का कथन है कि याष्टिक एवं आञ्जनेय इत्यादि आचार्यो ने श्रुतिसंख्यानियम को छोडकर किन्ही स्वरो का पञ्चश्रुतिकत्व, पट्श्रुतिकत्व एव सप्तश्रुतिकत्व यथेच्छ रूप मे ग्रहण करने के पश्चात् लौकिक विनोद के लिए अनेक प्रकार के देशी रागो की सृष्टि की थी। श्री कवि ने यह भी कहा है कि हनुमन्मत मे श्रुतियाँ केवल अठारह है।

काश्यप, याष्टिक एव आञ्जनेय के ग्रन्थ जब तक प्राप्त न हो जायँ, तब तक इस सम्बन्ध मे निश्चयपूर्वक निष्कर्ष प्रस्तुत करना सम्भव नही।

अभिनवगुप्त का कथन है कि इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण नही कि माध्यमग्रामिक त्रिश्रुतिक पञ्चम द्वारा परित्यक्त श्रुति का उपभोग धैवत ही करता है। सभी द्विश्रुतिक एव त्रिश्रुतिक स्वर श्रुति की उत्कृष्टता के कारण अधिकश्रुति किये जाते है, काकली और अन्तर के द्वारा चतु.श्रुतिक एवं त्रिश्रुतिक स्वर भी न्यूनश्रुति होते है, अत. सभी स्वरो का श्रुतिकृत वैचित्र्य है।

अभिनवगुप्त के इस कथन मे 'त्रिश्रुतिक' स्वरो की न्यूनश्रुतिकता, जो काकली और अन्तर प्रयोग अर्थात् चतु·श्रुतिक स्वर के पश्चात् 'ग-क' अन्तर के प्रयोग का परिणाम हो सकती है, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है।

किसी स्वर के पश्चात् 'काकली' अन्तर का प्रयोग एक ऐसी अवस्था सूचित करता है, जिसका प्रयोग भरत-सम्प्रदाय मे नही। 'नि, नि' या 'ग-ग' का क्रमश. प्रयोग भरत-सम्प्रदाय मे नही मिलता, परन्तु भरतोक्त श्रुत्यन्तरों मे ही कुछ ऐसे आधुनिक राग प्राप्त हो जाते है, जिनमे भरत के 'नि-नि' या 'ग-ग' क्रमश. प्रयुक्त है।

यथास्थान कहा जा चुका है कि नाट्यशास्त्र मे एक स्थान (मन्द्र, मध्य, तार) के अन्तर्गत मुख्य ध्वनियाँ दस है। पड्जग्राम में प्रयुक्त गान्धार का प्रयोग मध्यमग्राम मे और मध्यमग्रामीय काकलीनिपाद का प्रयोग पड्जग्राम मे नही होता था। नीचे इस स्थिति को पुन. स्पप्ट किया जा रहा है—

स	रे	ग	ग	म	म॑	प	ध	नि	नि	—पड्जग्राम
म	प		ध	नि	नि	स	रे	ग	ग	—मध्यमग्राम

षड्जग्रामीय स्वरो में 'म' वृत्त के अन्तर्गत दिखाया गया है, इस ध्वनि का प्रयोग षड्जग्राम मे नही होता था, परन्तु षाड्जग्रामिक पञ्चम ही माध्यमग्रामिक षड्ज हो जाता है, फलत. उससे दो श्रुति पूर्व स्थित 'काकली निषाद' षाड्जग्रामिक स्वरो मे नही मिलता। यदि इस काकलीनिषाद को षाड्जग्रामिक स्वरों मे सम्मिलित कर दिया जाय और इसका नाम तीव्र मध्यम रखकर इसे प्रयोग मे सम्मिलित कर दिया जाय, तो दोनो ग्रामो का संश्लेष हो जायगा।

षाड्जग्रामिक 'ग' का प्रयोग मध्यमग्राम मे नही है, यदि इसे मध्यमग्राम मे भी सम्मिलित करके 'उत्कृष्ट पञ्चम' नाम इसलिए दे दिया जाये कि मध्यमग्रामीय त्रिश्रुतिक पञ्चम से दो श्रुति ऊँचा है (यदि यह पञ्चम चतुश्रुतिक होता, तो यह उत्कृष्ट पञ्चम उससे एक ही श्रुति ऊँचा होता) तो भी दोनो ग्रामो का सश्लेष हो जायगा।

माध्यमग्रामिक पञ्चम के पश्चात् और माध्यमग्रामिक चतुश्रुतिक धैवत से पूर्व इस स्वर का जन्म वृद्ध काश्यप के समय में ही सम्भवत. हो चुका था, क्योकि 'उत्कृष्ट पञ्चम' सज्ञा की चर्चा वृद्ध काश्यप भी करते है। अभिनवगुप्त ने भी यह कहकर सम्भवत. इसी ध्वनि की ओर सकेत किया है कि इस सम्बन्ध मे कोई प्रमाण नही कि मध्यमग्राम मे पञ्चम द्वारा परित्यक्त श्रुति का उपभोग धैवत ही करता है। माध्यमग्रामिक पञ्चम से 'ग, क' अन्तर पर 'उत्कृष्ट पञ्चम' की स्थिति है, जो काकली अन्तर है।

उपर्युक्त भरतोक्त दस ध्वनियों का एकत्र प्रयोग ग्रामो के संश्लेष का कारण हुआ। कुछ आधुनिक ठाठ भी इस दृष्टि से ग्राम-संश्लेष के उदाहरण है, जिसमे 'नि-नि', 'ग-ग', या 'म-म' (मध्यमग्रामीय काकली) का क्रमश. प्रयोग है और जिनमे दोनों ग्रामो की ध्वनियाँ मिल गयी हैं, जैसे भरतोक्त—

नि, नि, रे, ग, म, म, ध, नि

भैरव ठाठ के स, रे, ग, म, प, ध, नि, सं है और भरतोक्त

ग, ग, म, ध, नि, नि, रे, ग,

टोडी ठाठ के स, रे, ग, म, प, ध, नि, स हैं।

आरोह-अवरोह मे 'नि-नि', 'ग-ग' या 'म-म' का क्रमश प्रयोग एवं षाड्जग्रामिक ध्वनियों में ऐसे स्थलों पर तीव्रमध्यम के नाम से माध्यमग्रामिक काकलीनिषाद

-का भी प्रयुक्त होने लगना लोकरुचि का परिणाम हो, परन्तु ये ध्वनियाँ नाट्यशास्त्र के स्वरविधान से बाहर नही।

नाट्यशास्त्र मे जातियो के अन्तर्गत अन्तर स्वरो का प्रयोग केवल आरोह मे विहित है, रागो मे अन्तर स्वरो का प्रयोग आरोह एव अवरोह दोनो गतियो मे विहित है। कम्बल और अश्वतर ने अल्पनिपाद एव अल्पगान्धार जातियो मे अन्तर स्वरो के प्रयोग की बात कही है और शार्ङ्गदेव ने षाड्जी-जैसी अल्पनिषाद जाति मे क्वचित् काकली का प्रयोग बताया है। इससे सिद्ध है कि कुछ जातियो मे निषाद और गान्धार के शुद्ध रूप के साथ इनकी द्विश्रुति-साधारण अवस्थाओ का प्रयोग भी होता था। परन्तु शुद्ध एव साधारण अवस्था का क्रमश प्रयोग होता था या नही होता था, इस सम्बन्ध मे नाट्यशास्त्र मौन है। काकली एव अन्तर स्वरो के प्रयोग का जो नियम शार्ङ्गदेव ने बताया है, उससे तो यही सिद्ध होता है कि गान्धार एव निपाद की दोनो अवस्थाओ का क्रमश. प्रयोग शार्ङ्गदेव के विधान मे नही।

ध्यान देने की बात यह है कि शार्ङ्गदेव ने 'द्विग्राम' रागो की चर्चा की है, परन्तु आश्रय मूर्च्छना पद्धति का लिया है, उनका 'द्विग्रामत्व' वह 'ग्रामसश्लेप' नही, जिसकी चर्चा यहाँ की गयी है। रत्नाकर मे उत्कृष्ट पञ्चम, पञ्चश्रुति, षट्श्रुति एव सप्तश्रुति इत्यादि स्वरो की चर्चा तक नही हुई है, जब कि काश्यप, याष्टिक, आञ्जनेय इत्यादि ग्रन्थ उनके समय मे विद्यमान थे।

आचार्य्य शार्ङ्गदेव ने 'वराटी' के जनक 'भिन्नपञ्चम' को 'काकली' एव 'निषाद' दोनो से युक्त बताया है। कल्लिनाथ ने इस उक्ति पर एक शका उठायी है कि एक ही राग मे एक ही स्वर के शुद्ध एव विकृत दोनो रूपो के प्रयोगभेद से रागभेद हो जायगा ? और इसी शका का समाधान यह कहकर किया है कि इस राग मे मन्द्र एव मध्यम सप्तक के निपाद काकली है, इस राग के माध्यमग्रामिक होने के कारण इसमे तार-व्याप्ति है और तार निपाद शुद्ध है।

कल्लिनाथ के इस शका-समाधान से यह सिद्ध होता है कि एक ही स्थान मे एक स्वर की दोनो अवस्थाओ का प्रयोग मूर्च्छनाधारित पद्धति मे नही था।

शार्ङ्गदेव ने तृतीय सैन्धवी को 'मृदुपञ्चम' से युक्त बताया है, यह 'सैन्धवी' मालव-कैशिक का भाषाङ्ग है, मालवकैशिक 'कैशिकी' जाति से उत्पन्न हुआ है, कैशिकी माध्यमग्रामिक जाति है। माध्यमग्रामिक कैशिकी जाति से उत्पन्न मालवकैशिक राग मे पञ्चम त्रिश्रुतिक है, जो माध्यमग्रामिक शुद्ध पञ्चम है। इस राग के भाषाङ्ग 'कैशिकी' के लक्षण मे पञ्चम के पहले 'मृदु' विशेपण का प्रयोग बताता है कि यह पञ्चम

मन्द्र पञ्चम है भी और आधुनिक 'तीव्र मध्यम' नही।' 'मृदु' शब्द का प्रयोग 'रत्नाकर' मे मन्द्रवाची है। इस सैन्धवी की मूर्च्छना षड्जादि है अर्थात् इसमे अंशस्वर षड्ज है।

शार्ङ्गदेव ने 'तुरुष्क गौड' और 'तुरुष्क तोडी' जैसे विदेशी रागो की मूर्च्छनाएँ ढूँढकर उनका वर्गीकरण भी मूर्च्छना-पद्धति मे किया है।

शार्ङ्गदेव ने अनेक ऐसे रागो की चर्चा की है, जिनके 'स्थायी स्वर' उनके समय बदल चुके थे।

संगीत-रत्नाकर की रचना से पञ्चीस-तीस वर्ष पूर्व उत्तर भारत के कन्नौज प्रदेश में मूर्च्छना-पद्धति प्रचलित थी। कान्यकुब्जनरेश जयचन्द के सभापण्डित महाकवि श्रीहर्ष मूर्च्छना-पद्धति के मर्मज्ञ थे। 'नैषध' के नायक राजा नल 'पञ्चम की मूर्च्छनाओ' के छिडने पर दमयन्ती के वियोग का अनुभव और भी तीव्रता से करने लगते है। यह मूर्च्छना मालकोष, दरबारी एवं आसावरी-जैसे रागो की अभिव्यक्ति का कारण होती है, इस मूर्च्छना का अशस्वर 'पञ्चम' वियोग शृङ्गार का अभिव्यजक है।

जयचन्द की पराजय एक प्रकार से मूर्च्छना-पद्धति के तिरोहित होने का कारण है। कश्मीर से बहिष्कृत मूर्च्छना-पद्धति कन्नौज से भी लुप्त होती और दक्षिण की ओर जाती है, परन्तु रत्नाकर की रचना से प्राय. सौ वर्ष बाद मलिक काफूर का आक्रमण दक्षिण में भी उसे क्षत-विक्षत कर देता है।

१३३६ ई० में श्री विद्यारण्य के द्वारा विजयनगर की स्थापना के पश्चात् मुकाम-पद्धति का मेल-पद्धति के रूप मे ग्रहण किया जाना आर्ष मूर्च्छना-पद्धति पर पूर्ण पटाक्षेप है। उस समय के वैणिकों और उनके आश्रित आचार्य्यो को अचल सारिकाओवाली वीणा पर रागप्रयोज्य ध्वनियो के वादन की सुविधा का ध्यान है, रस एवं भाव के विनियोग को दृष्टि में रखते हुए ध्वनियो की भावानुसारी संज्ञाओं की चिन्ता उन्हे नही। इसी लिए मेल-पद्धति रस-भाव के विचार से सर्वथा शून्य है।

चौदहवी शती मे एक ओर जहाँ अचल सारिकावाली वीणाओ के प्रताप से मुकाम-पद्धति दक्षिण तक मे मेल-पद्धति का रूप ले रही थी, वहाँ विन्ध्याचल एवं श्रीशैल के मध्य मे सिहभूपाल के द्वारा 'रत्नाकर' पर टीका लिखी जा रही थी और सिहभूपाल की दृष्टि मे ऐसे वैणिक थे, जो वीणा मे यथेच्छ स्थान पर स्वरो की स्थापना करते थे।

पन्द्रहवी शती ई० मे 'पण्डित-मण्डली' (१४००—१४४० ई०) प्रयाग मे, महाराणा कुम्भवर्ण (राज्यकाल १४३३-१४६८ ई०) मेवाड़ मे तथा विजयनगर-नरेश इम्मडिदेव

(रा० का० १४४६-१४६५ ई०) के आश्रित आचार्य्य कल्लिनाथ मूर्च्छना-पद्धति के विशेषज्ञ थे।

देशी रागो की चर्चा करते हुए कल्लिनाथ ने अपने समय की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है—

(१) दोनो ग्रामो से 'जाति' इत्यादि की परम्परा से उत्पन्न इन रागो की मूर्च्छना का आरम्भ मध्य सप्तक में स्थित 'पड्ज' या 'मध्यम' (के स्थान) से करना यद्यपि शास्त्रविहित है, तथापि मध्यमग्राम से उत्पन्न मध्यमादि तोडी इत्यादि रागो में मूर्च्छना का आरम्भ मध्य मध्यम से न किया जाकर मध्य षड्ज के ही स्थान से किया जा रहा है। लक्षण का विरोध करके ग्रह स्वर के अधीन उस स्वर-साधारण का भी अभाव है, जो पश्चाद्वर्ती स्वरो मे होना चाहिए।

(२) त्रिश्रुतिक या चतु श्रुतिक होकर जिस पञ्चम को ग्राम-भेदक होना चाहिए, उसका प्रयोग अलोप्य रूप मे हो रहा है और सभी रागो मे पञ्चम का रूप एक-जैसा ही है।

(३) रामक्रिया नामक क्रियाङ्ग-राग में मध्यम के द्वारा पञ्चम की दो श्रुतियो का ग्रहण तथा नट्ट, देवक्री इत्यादि रागो मे ऋपभ और धैवत के द्वारा क्रमशः अन्तर-गान्धार एवं काकलीनिषाद की दो-दो श्रुतियाँ ग्रहण कर लिये जाने के कारण ऋषभ और धैवत की पञ्चश्रुतिकता शास्त्र मे 'विवक्षित' है।

(४) श्रीराग मे गान्धार एवं निषाद के द्वारा मध्यम एव पड्ज की एक एक श्रुति ले लिये जाने के कारण गान्धार एवं निपाद की त्रिश्रुतिकता यद्यपि शास्त्र-विहित है, तथापि मध्यम एव षड्ज की त्रिश्रुतिकता शास्त्रविरोधिनी है। उसी राग में ऋपभ एव धैवत के द्वारा क्रमश' गान्धार एव निपाद की आदिम श्रुति का ग्रहण कर लिये जाने के कारण ऋषभ एव धैवत का चतु श्रुतित्व शास्त्रविहित है।

(५) आन्धाली के लक्षण मे पञ्चम 'ग्रह' एवं 'अंश' कहा गया है और इसी दृष्टि से प्रस्तार भी लिखा गया है, परन्तु प्रयोग मे मध्यम ग्रह और अंश है।

(६) कर्नाट गौड के लक्षण मे पड्ज 'ग्रह' और 'अश' है, परन्तु लक्ष्य मे अंश एव ग्रह स्वर निषाद है।

(७) ग्राम रागो मे हिन्दोल का ऋपभ-धैवतहीनत्व शास्त्रोक्त है, परन्तु प्रयोग में ऋपभ-पञ्चम का परित्याग है।

(८) पाडव-औडुव रागो मे कही लोप्य स्वरों का प्रयोग भी होता है।

(९) कही जन्य और जनक के मेलन (ठाठ ?) मे भेद और 'रस' इत्यादि के विनि-योग मे अनियम भी दिखाई देता है।

आचार्य्य कल्लिनाथ ने इन अनियमो का समाधान यह कहकर किया है कि 'देशी' रागो में ये अनियम ही रागो का 'देशित्व' है, क्योंकि आञ्जनेय ने कहा है कि देशी रागो मे श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति आदि का नियम नही होता।

आञ्जनेय की सहिता हमारे समक्ष नही, अत. उनकी व्यवस्था के विपय में हमे कुछ नही कहना है, परन्तु यह कहा जा सकता है कि 'सङ्गीत' या किसी भी अन्य कला के सम्वन्ध मे ये उक्तियाँ पर्य्याप्तरूपेण सन्तोपप्रद नही। 'सवाद' सगीत का प्राण है, इसके अभाव मे सङ्गीत की सृष्टि हो ही नही सकती, 'स्वर' के अनुरणनमयत्व अर्थात् स्वत. रञ्जकत्व की भी आवश्यकता सङ्गीत के लिए अनिवार्य्यरूपेण है और 'राग' या 'स्वर' सन्निवेशविशेप मे रञ्जकत्व भी अनिवार्य्य है। अत कोई भी सङ्गीत-पद्धति हो, रञ्जन के लिए उसमे भावाभिव्यञ्जन की योग्यता तथा आनन्दाभिव्यक्ति के कुछ व्यापक एव सनातन कारण होने ही चाहिए। यह एक पृथक् तथ्य है कि उन कारणो की खोज न हुई हो। इन कारणो की यथासम्भव खोज अनुसन्धानकर्ता का लक्ष्य होना चाहिए।

आधुनिक ठाठों मे प्रयुक्त ध्वनियों की भावानुसारी संज्ञाएँ

यह कहा जा चुका है कि आधुनिक अनेक राग 'ग्रामसंश्लेप' का परिणाम है और यह ग्राम-संश्लेप भारत में सहस्रो वर्ष पूर्व हो चुका था। काश्यप एव याष्टिक के रघुनाथोक्त विधान इस दिशा की ओर इङ्गित करते है।

यदि ऐसी मूर्च्छनाएँ निर्मित की जायें, जिनमे 'नि-नि', 'ग-ग' और 'म-म' का क्रमश. प्रयोग भी ग्राह्य हो, तो ये मूर्च्छनाएँ भरत-सम्प्रदाय से भिन्न भले ही हो, परन्तु इनके स्वर भरत-सम्प्रदाय के सात शुद्ध एव तीन अन्तर स्वरो मे भी मिल जायँगे। मध्यम-ग्रामीय काकलीनिषाद का प्रयोग इन मूर्च्छनाओं मे तीव्र मध्यम, पत पञ्चम, मृदु पञ्चम या वराली मध्यम के नाम से किया जायगा। हम इनमे से 'तीव्र मध्यम' सज्ञा चुन लेते है।

काकलीनिषाद, और अन्तरगान्धार अन्तर स्वर होने पर भी गान्धार और निपाद ही है, फलत ये स्वर 'शोक' या 'करुणा' के वोधक है, काकलीनिषाद के साथ पड्ज-मध्यम-भाव से संवाद करनेवाला तीव्र मध्यम भी अन्तर स्वर है और उसकी मूल संज्ञा माध्यमग्रामिक काकलीनिषाद ही है, फलत वह भी 'शोक' या 'करुणा' का वोधक है।

अब यदि उत्तर भारत मे प्रयुक्त ठाठो को महर्षि भरत द्वारा बोधित दस स्वरो मे देखा जाये, तो स्थिति यह होगी :—

(१) भैरव

सश्लिष्ट मूर्च्छना	नि का रे ग म म ध नि
श्रुति-परिमाण	० ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग
ठाठ	स रे ग म प ध नि स

यदि कोई चाहे, तो ठाठ मे प्रयुक्त 'गान्धार' और 'निषाद' को पञ्चश्रुतिक कह सकता है, क्योंकि वे अपने पूर्ववर्ती प्रयोज्य स्वर 'रे' और 'ध' पाँच पाँच श्रुतियो के अन्तर पर स्थित हैं।

मूर्च्छना के द्विश्रुतिक काकलीनिषाद और तीव्र मध्यम 'ठाठ' मे क्रमश द्विश्रुतिक ऋषभ और धैवत बन गये हैं।

मूर्च्छना में स्वरों की सज्ञाएँ भावानुसारिणी हैं। उनके अनुसार हम कह सकते हैं—

इस मूर्च्छना का स्थायी स्वर निषाद है, जो करुणा का अभिव्यञ्जक है। काकली-निषाद एवं तीव्र मध्यम जैसे शोक-बोधक स्वरो का अस्तित्व इसके करुण प्रभाव मे और वृद्धि करता है। उत्साह, क्रोध एवं विस्मय का व्यञ्जक षड्ज इस मूर्च्छना मे लुप्त है और उसका सवादी पञ्चम भी।

(२) पूरबी

सश्लिष्ट मूर्च्छना	नि का. रे अ म म ध नि
श्रुति-परिमाण	० ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग
ठाठ	स रे ग म प ध नि स

यहाँ भी करुणाबोधक निषाद स्थायी स्वर है, काकली, अन्तर गान्धार एव तीन अन्तर स्वरों का प्रयोग है। मूर्च्छना मे गान्धार के स्थान पर अन्तर गान्धार के प्रयोग ने इस मूर्च्छना मे अन्तर कर दिया है।

(३) मारवा

सश्लिष्ट मूर्च्छना	नि का. रे अ. म प ध नि
श्रुति-परिमाण	० ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग
ठाठ	स रे ग म प ध नि स

यहाँ भी करुणाबोधक 'निषाद' स्थायी स्वर है, काकली और अन्तर स्वर है, और मूर्च्छना का पञ्चम ठाठ मे चतु श्रुतिक धैवत हो गया है।

(४) तोड़ी

संश्लिष्ट मूर्च्छना	ग अ. म ध नि का. रे ग
श्रुति-परिमाण	० ग क ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग
ठाठ	स रे ग म प ध नि स

इस मूर्च्छना में करुणाबोधक 'गान्धार' स्थायी स्वर है, उसके सवादी निषाद-अन्तर, गान्धार एव काकलीगान्धार का अस्तित्व उस करुणा को और भी उभारता है। तीव्र मध्यम के नाम से प्रयुक्त माध्यमग्रामिक काकली भी उस करुणा का परिपोष करता है। षड्ज, मध्यम एव पञ्चम लुप्त है।

(५) विलावल

शुद्ध मूर्च्छना	नि स रे ग म प ध निं
श्रुति-परिमाण	० ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग
ठाठ	स रे ग म प ध नि स

इस मूर्च्छना का स्थायी स्वर निषाद है, जो करुणा का अभिव्यञ्जक है, परन्तु उस करुणा के परिपोषक अन्तर स्वरों का इसमें सर्वथा अभाव है, फलत इसकी करुणा, 'दैन्य' अथवा 'निवेदन' का ही रूप ग्रहण करती है। षड्ज, मध्यम, पञ्चम का अस्तित्व भी करुणा मे गहराई उत्पन्न नही होने देता।

आधुनिक ठाठ-वादियो को अपने ठाठ के चतु श्रुतिक ऋषभ और धैवत इस षाड्ज-ग्रामिक शुद्ध नैषादी मूर्च्छना में मिल जाते है। उनके मध्यम के साथ धैवत का षड्-जान्तरभाव इस मूर्च्छना में नष्ट हो जाता है। यह मूर्च्छना शुद्ध 'रजनी' है।

(६) कल्याण

शुद्ध मूर्च्छना	ग म प ध नि स रे ग
श्रुति-परिमाण	० ग क ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग
ठाठ	स रे ग म प ध नि स

विलावल की मूर्च्छना से इसमें भेद यह है कि इसमे गान्धार के स्थान पर अन्तर-गान्धार का प्रयोग है, जो ठाठ मे 'तीव्र मध्यम' वन गया है। स्थायी निषाद ही है, परन्तु उसका संवादी गान्धार यहाँ नही है। षड्ज, मध्यम एव पञ्चम का अस्तित्व है। यह मूर्च्छना षाड्जग्रामिक सान्तरा 'रजनी' है।]

(७) खमाज

शुद्ध मूर्च्छना म प ध नि स रे ग म

श्रुति-परिमाण ० ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग

ठाठ स स रे ग म प ध नि स

इस मूर्च्छना का स्थायी स्वर मध्यम है जो 'रति' या 'अनुराग' का वोधक है, यह षाड्जग्रामिक मध्यमादि मूर्च्छना है।

ठाठ में बतायी हुई स्वरसज्ञाएँ उत्तर-भारतीय सरस्वती वीणा मे प्रयुक्त स्वर-संज्ञाएँ है। इस ठाठ के ऋषभ-धैवत मे सवाद नही।

(८) काफी

शुद्ध मूर्च्छना स रे ग म प ध नि स

श्रुति-परिमाण ० क ख ग ख ग ग क ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग

ठाठ स रे ग म प ध नि स

वास्तव मे काफी ठाठ के ऋषभ का पञ्चम से संवाद नही और यह ठाठ षड्जग्रामीय उत्तरमन्द्रा से भिन्न नही। षड्ज इस मूर्च्छना का स्थायी स्वर है, जो उत्साह, क्रोध या विस्मय का व्यञ्जक है। नाट्यशास्त्र के कुछ पाठो मे षड्ज को शृंगार का अभिव्यञ्जक वताया गया है।

जिन्हे काफी ठाठ मे चतु श्रुतिक ऋषभ ही चाहिए, उन्हे निम्न मूर्च्छना मे अपना 'काफी' मिल जायगा—

सश्लिष्ट मूर्च्छना ध का. स रे अ. म प ध

श्रुति-परिमाण ० ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग ग क ख ग क ख ग

ठाठ स रे ग म प ध नि स

इस मूर्च्छना का स्थायी स्वर धैवत है, जो 'भय' या 'जुगुप्सा' का अभिव्यञ्जक है, काफी ठाठ से इन भावों का कोई सम्वन्ध नही, फलत इस दृष्टि से भी यह रूप काफी का नही। ठाठवादियो को इस रूप मे चतु श्रुतिक ऋषभ, अपने षड्ज से छ: श्रुति दूर अपना कोमल गान्धार और उसके साथ सवाद करनेवाला कोमल निषाद प्राप्त हो जायगा। मध्यम एव षड्ज त्रिश्रुतिक मिलेगे तथा अपने मध्यम एवं कोमल निषाद मे सवाद नही मिलेगा। फलतः काफी के इस रूप के लिए आग्रह ठीक नही।

(९) आसावरी

शुद्ध मूर्च्छना	प ध नि स रे ग म प
श्रुति-परिमाण	० क ख ग ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग ग क ख ग
ठाठ—	स रे ग म प ध नि स

यह षड्जग्रामिक पञ्चमादि मूर्च्छना है। पञ्चम इसमे स्थायी स्वर है, जो शृगार का अभिव्यञ्जक है।

दरबारी, आसावरी एव मालकोस जैसे राग इस मूर्च्छना से सम्बद्ध है। इन रागो मे 'प' के नाम से प्रयुज्यमान ध्वनि वस्तुत. ऋषभ है, जो स्थायी स्वर पञ्चम से बारह श्रुतियो के अन्तर पर स्थित है तथा 'ध' के नाम से प्रयुज्यमान ध्वनि प्राचीन 'गान्धार' है, जो स्थायी स्वर पञ्चम से चौदह श्रुतियो के अन्तर पर स्थित है।

गुणियो मे यह प्रसिद्ध भी है कि इन रागो का धैवत भैरव इत्यादि के धैवत से उतरा हुआ है। वस्तुत इन रागो के प्रयोग के समय तानपूरे का पञ्चमवाला तार मध्यम मे मिलाया जाना चाहिये। उस अवस्था मे जोडे के तार एव पञ्चम के तार की ध्वनियो की प्राचीन संज्ञाएँ क्रमश 'प'-'स' हो जायँगी।

जिन्हे आसावरी ठाठ मे चतु श्रुतिक ऋषभ एवं स्वस्थानस्थ पञ्चम का आग्रह है, उन्हे अपने अभीष्ट स्वरान्तराल प्राचीन 'धैवत, काकली निपाद, षड्ज, ऋषभ, अन्तर गान्धार, मध्यम, पञ्चम, मे मिलेगे, परन्तु भय एव जुगुप्सा के व्यञ्जक धैवत के 'स्थायी' हो जाने पर न तो स्वरो की भावानुसारी सज्ञाएँ मिलेगी, न राग प्रयोज्य वास्तविक ध्वनियाँ ही।

(१०) भैरवी

सान्तरा मूर्च्छना	ध नि स रे अ. म प ध
श्रुति-परिमाण	० ख ग ग क ख ग क ख ग ख ग ग क ख ग ग क ख ग क ख ग
ठाठ—	स रे ग म प ध नि स

इस मूर्च्छना का स्थायी स्वर धैवत है, जो भय का व्यञ्जक है। इसमे अन्तर गान्धार प्रयुक्त हो रहा है, जिसका स्थायी स्वर के साथ षड्ज-पञ्चम भाव से सवाद है। अत. यह 'सान्तरा' उत्तरायता है। प्राचीन भैरवी की मूर्च्छना शुद्ध उत्तरायता है।

ठाठ-वादियो को अपना गान्धार इसमे अपने 'स' से छः श्रुति दूर दिखाई देगा और उसका सवादी 'निषाद' पञ्चम से छ श्रुति दूर दिखाई देगा।

भैरवी मे प्रयोग के समय ठाठ के ऋषभ-धैवत यही रहेंगे विलासखानी में 'गान्धार-निपाद' एक एक प्रमाणश्रुति उतरेंगे।

उपर्य्युक्त विश्लेषण भरत-बोधित स्वर समूह मे आधुनिक रागो मे प्रयुज्यमान ध्वनियो का अस्तित्व दिखाने और उन ध्वनियो की भावानुसारी सज्ञाएँ ढूँढने का प्रयत्न है, परन्तु भाव का यथायोग्य प्रकाशन या 'रस' का परिपाक रागनियमानुसार स्वरो के यथाक्रम बहुत्व एव अल्पत्वयुक्त प्रयोग का परिणाम होता है। स्वरो का आरोह-अवरोह मात्र 'राग' सज्ञा नही ग्रहण करता।

निपादादि मूर्च्छना मे 'अन्तर गान्धार' एव गान्धारादि मूर्च्छना मे 'धैवत' आधुनिक ठाठो के तीव्र मध्यम वन जाते है, इससे यह सिद्ध है कि जिस ध्वनि को हम आज तीव्र मध्यम समझते है। उसका प्रयोग प्राचीनो के द्वारा भली भाँति होता था।

एक ही मूर्च्छना (यह मूर्च्छना सप्तस्वर नही) मे ग्रामो का सश्लेष अथवा एक स्वर की शुद्ध एव विकृत अवस्था का प्रयोग भरत-विहित नही, इसी लिए हमने ऐसी मूर्च्छनाओ को साश्लेष्ट भी कहा है। भैरव मे प्रयोज्य मूर्च्छना मे निषाद एव मध्यम के दोनो रूपो का प्रयोग है। प्राचीन दृष्टिकोण के अनुसार एक ही स्वर के दो रूपो को मूर्च्छना मे न तो स्थान है और न उन दो रूपो को दो विभिन्न स्वर कहा जा सकता है। परन्तु जो लोकरुचि ऐसी नवीन मूर्च्छनाओ की उत्पत्ति मे कारण है, वह इन्हे दो पृथक्-पृथक् स्वर मान सकती है।

विहाग के आधुनिक दोनो मध्यम षड्जग्रामीय निपादादि मूर्च्छना के दोनों गान्धार है और करुणावोधक है, यही स्थिति ललित और पूर्वी के दोनो मध्यमो की है। खमाज के दोनो मध्यम मध्यमादि मूर्च्छना के दोनो निषाद एवं दोनो निपाद उसी मूर्च्छना के दोनो गान्धार है। अत ऐसे रागो की नवीन मूर्च्छनाओ मे हमे दोनो रूपो मे प्रयोज्य अभीष्ट स्वरो की स्थिति सम्वद्ध मूर्च्छना के अन्तर्गत माननी होगी।

इस विधान के तीन लाभ है—

(१) ध्वनियो की भावानुसारी संज्ञाओ की प्राप्ति।

(२) प्रयोज्य ध्वनियो का स्थायी स्वर से अभीष्ट अन्तर पर मिलना।

(३) भरतवोधित दस स्वरो मे अनेक आधुनिक रागो की प्राप्ति।

अनुबन्ध (४)

भारतीय संगीत की महाविभूतियाँ

(पन्द्रहवीं शती तक)

१. ब्रह्मा

नाट्यशास्त्र के अनुसार ये सर्वपितामह ब्रह्मा है, जिन्होने देवासुर-सग्राम मे थके हुए देवताओ के लिए 'नाटचवेद' का आविष्कार मनोरञ्जनार्थ किया।

शैव ग्रन्थकार शारदातनय के अनुसार ब्रह्मा ने नाटचवेद भगवान् शकर के शिष्य तण्डु से पढ़ा था।

नाटचशास्त्र के अनुसार नारद को गानयोग, स्वाति को भाण्डविधि एवं भरत मुनि को नाटच में नियोजित करनेवाले यही थे।

सप्तगीतों के प्रवर्तक भी शार्ङ्गदेव के अनुसार ब्रह्मा ही है और शुष्काक्षरो के नियोजक भी। एकतन्त्री वीणा 'आदिवीणा' है, जिसे 'ब्रह्मवीणा' भी कहा जाता है।

आचार्य अभिनवगुप्त के परिचित एक आचार्य प्रचलित नाटचशास्त्र को सग्रह ग्रन्थ मानते थे, जिसमे ब्रह्ममत के प्रतिपादक ग्रन्थो के खण्ड सम्मिलित है और जिसकी रचना ब्रह्ममत की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए, उनके विचार में, हुई है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के मत के प्रतिपादक पृथक् ग्रन्थ कभी रहे होंगे, जो आज अनुपलब्ध है।

२. शिव, शंकर

'नन्दिकेश्वरकारिका' के अनुसार भगवान् शकर के डमरू से व्याकरण के प्रसिद्ध माहेश्वर सूत्र उत्पन्न हुए। ये चौदह सूत्र समस्त वाङ्मय तथा इनमे प्रदर्शित स्वरवर्ण सगीतसम्बन्धी स्वरो का आधार है। 'रुद्रडमरूद्भवसूत्र विवरण' के आधार पर स्वरवर्णो का साङ्गीतिक रूप भी है, जैसे—अ, इ, उ इत्यादि ही क्रमश. षड्ज, ऋषभ, गान्धार इत्यादि है।

शारदातनय के अनुसार नाट्यवेद के आविष्कारक शिव है, जिन्होंने तण्डु को नाटच-वेद पढ़ाया। शिव की वीणा 'अनालम्बी' कही जाती है।

नाटचशास्त्र के अनुसार सन्ध्या समय प्रति दिन नृत्य करते करते भगवान् शंकर ने अङ्गहारो की रचना की और तण्डु को शिक्षित किया। ब्रह्मा के द्वारा आविष्कृत नाटच के पूर्वरङ्ग को सुशोभित करने के लिए भगवान् शकर ने भरत को तण्डु के द्वारा नृत्य की शिक्षा दिलायी।

अनुश्रुति के अनुसार शिवमत मे पाँच रागो के जनक भगवान् शंकर हैं। कहा जाता है कि 'शिव-पार्वती-सवाद' नामक कोई ग्रन्थ शिवमत का प्रतिपादक था, जो आज अनुपलब्ध है।

'औमापतम्' नामक एक ग्रन्थ प्राप्त होता है। इसमे स्वर, मूर्च्छना, जाति, प्रबन्ध, राग एवं वाद्य आदि के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह भरत एव उनके अनुयायियों के मत से सर्वथा भिन्न है। संभव है, इसका ग्रथन शिवमत के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए किसी पश्चाद्वर्ती लेखक ने किया हो।

३. पार्वती, शिवा, दुर्गा, शक्ति

शार्ङ्गदेव ने अपनी उपजीव्य महाविभूतियो मे 'शिवा', 'दुर्गा' और 'शक्ति' का निर्देश पृथक्-पृथक् किया है। 'दुर्गाशक्ति' एव 'दुर्गशक्ति' एक नाम भी कही-कही मिलता है। सम्भव है, शार्ङ्गदेव द्वारा प्रयुक्त 'शिवा' शब्द पार्वतीवाची हो।

शार्ङ्गदेव के अनुसार भगवती पार्वती ने लास्य का आविष्कार किया और बाणासुर की पुत्री उषा को सिखाया। उषा से यह लास्य द्वारका की स्त्रियो तक पहुँचा और तत्पश्चात् लोक मे प्रचलित हुआ।

नन्दिकेश्वर के सिद्धान्तो के प्रतिपादक ग्रन्थ 'भरतार्णव' मे पार्वतीमत का ग्रन्थ 'भरतार्थचन्द्रिका' बताया गया है।

४. नन्दिकेश्वर

आचार्य अभिनवगुप्त ने 'नन्दी' का ही दूसरा नाम 'तण्डु' बताया है। राजशेखर के अनुसार नन्दिकेश्वर या नन्दी रस के प्रथम आचार्य हैं।

नन्दिकेश्वर के सिद्धान्तो के प्रतिपादक ग्रन्थ 'नन्दिकेश्वर-कारिका' पर उपमन्यु की टीका उपलब्ध है।

'भरतार्णव' नामक एक ग्रन्थ मे नन्दिकेश्वर के संगीत-सिद्धान्तो का प्रतिपादन

है, ये सिद्धान्त भरत-सम्प्रदाय से सर्वथा भिन्न हैं। भरतार्णव मे बारहवी शती ई० के ग्रन्थकार हरिपाल तथा उसकी उपाधियो के उल्लेख के साथ उसकी रचना 'सङ्गीत-सुधाकर' के अनेक श्लोक भी मिलते हैं। 'भरतार्णव' नन्दिकेश्वर-मतानुयायी किसी व्यक्ति की कृति है, जिसका निर्माणकाल तेरहवी शती ईसवी के पश्चात् है।

भरतनाटचशास्त्र के पाँचवे अध्याय के अन्त मे प्राप्त पूर्वरङ्ग के विशेष अङ्ग के लिए वर्णित ध्रुवा-विनियोग नन्दिकेश्वर-सम्प्रदाय की वस्तु है।

नन्दिकेश्ववर मत में तीन ग्राम 'नन्द्यावर्त', 'जीमूत' और 'सौभद्र' हैं।

५. नारद

नाटचशास्त्र मे नारद भरत के सहयोगी हैं, जिन्हें गानयोग का कार्य ब्रह्मा ने सौपा है। नाटचशास्त्र एवं वाल्मीकि रामायण मे इन्हे गन्धर्व कहा गया है।

इनके सिद्धान्तो के प्रतिपादक ग्रन्थ दो कहे जाते हैं, 'पञ्चमसारसहिता' एवं 'नारदीय शिक्षा'। शुभाकर नामक किसी आचार्य ने नारदीय शिक्षा की व्याख्या लिखी थी।

'पञ्चमसारसंहिता' मे रागो के ध्यान भी हैं। 'संङ्गीतमकरन्द' को भी नारद-सिद्धान्तो का प्रतिपादक कहा जाता है, जो तेरहवी शती के पश्चात् किसी व्यक्ति की कृति प्रतीत होता है। इसमें महामाहेश्वर (अभिनवगुप्त) की चर्चा तो है ही, संगीत-रत्नाकर के अनेक श्लोक भी हैं।

नारद की वीणा का नाम 'महती' है, जिसमे इक्कीस तार थे। नारद को गान्धार ग्राम का प्रयोक्ता कहा गया है। नारद की सम्मति मे ग्रामरागो का प्रयोग लौकिक विनोद के लिए न होकर स्तुति या यज्ञ मे होना चाहिए। महाकवि बाण ने 'नारदीय' नामक एक ग्रन्थ की ओर सकेत किया है, सोलहवी शती के एक ग्रन्थकार शुभकर ने भी इसकी चर्चा की है।

६. स्वाति

भरतनाटचशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने इन्हे वाद्य-वादन में नियुक्त किया था, ये अनेक अवनद्ध वाद्यो के आविष्कारक हैं।

'स्वाति' विपञ्ची के वादक कहे जाते हैं, जिसमें नौ तारो पर स, रे, ग, अन्तर ग म, प, ध, नि, काकली निषाद मिले होते थे।

७. तुम्बुरु

नाटचशास्त्र और वाल्मीकिरामायण मे इनका नाम नारद के साथ आता है और इन्हे गन्धर्व कहा गया है। इनकी वीणा 'कलावती' कही जाती है।

तुम्बुरु के मत मे मूर्च्छना शब्द का अर्थ श्रुति का 'मार्दव' है। शार्ङ्गदेव ने भी नारद के साथ ही साथ इनका नाम लिया है।

८. भरत

नाटच के आदिम प्रयोक्ता भरत ब्रह्मा के शिष्य कहे गये हैं। मत्स्यपुराण मे भी इनकी चर्चा मिलती है। डॉ० मनमोहन घोष भरत को काल्पनिक व्यक्तित्व मानते हैं, परन्तु कविकुलगुरु कालिदास इन्हे नाटच का आदिम प्रयोक्ता मानते हैं। बाण ने 'भरत' का स्मरण नृत्यशास्त्र के प्रणेताओ मे किया है।

नाटचशास्त्र भरत के पुत्रो की सख्या 'सौ' और शारदातनय का भावप्रकाशन 'पॉच' बताता है। उपलब्ध नाटचशास्त्र के अनुसार अत्यन्त प्राचीन काल मे 'भरत' शब्द जातिवाची हो गया था। 'अमरकोश' मे भी 'भरत' शब्द 'नट' का पर्याय है।

शारदातनय के अनुसार ब्रह्मा ने भरत एवं उनके पुत्रो से कहा—'नाटचवेद' भरत'—अर्थात् नाटचवेद का भरण (धारण, ग्रहण) करो।' तुम लोक मे 'भरत' नाम से प्रसिद्ध हो जाओगे।

नाटचशास्त्र को भरत से सम्बद्ध किया जाता है, परन्तु आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व भी यह धारणा विद्यमान थी कि नाटचशास्त्र एक सङ्ग्रह-ग्रन्थ है और यह धारणा सत्य है।

नाटचशास्त्र के आधार पर महर्षि भरत का काल-निर्णय किया जाना ठीक नहीं। नाटचशास्त्र के आधार-ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं।

९. दत्तिल

नाटयशास्त्र के अनुसार ये महर्षि भरत के पुत्र थे। इन्हे गान्धर्वशास्त्र के संक्षेप का कर्ता कहा जाता है। रत्नाकर के टीकाकार सिंहभूपाल ने अनेक स्थानो पर इनका मत उद्धृत किया है। दत्तिल ने मूर्च्छना के चार भेद,-पूर्णा, षाडवा, औडुविता और साधारणी माने हैं, इस सम्बन्ध मे मतङ्ग ने भी दत्तिल का अनुसरण किया है। प्रथम शती ई० के एक शिलालेख मे दत्तिल की चर्चा है।

'नृत्तलक्षण' नामक एक ग्रन्थ की चर्चा भी प्रायः आती है, जो दत्तिल के सिद्धान्तो का प्रतिपादक कहा जाता है।

'दत्तिल-कोहलीयम्' नामक एक ग्रन्थ किसी मध्ययुगीन आचार्य की कृति है, जो रत्नाकर के कुछ श्लोकों का संग्रहमात्र है।

१०. कोहल

महर्षि भरत के पुत्र एवं महर्षि भरत के सिद्धान्तो का विस्तृत निरूपण करनेवाले प्रसिद्ध हैं। इन्होंने श्रुतियों की अनन्तता प्रतिपादित की है।

कोहलकृत कहे जानेवाले ग्रन्थ के खण्डित भाग ही मिलते हैं। 'कोहलमतम्' नामक एक छोटी-सी पुस्तक भी मिलती है।

'कोहलरहस्यम्' नामक एक ग्रन्थ भी मिलता है, जो नाम से कोहलानुयायी किसी व्यक्ति की कृति प्रतीत होता है।

११: स्कन्द और शुक्र

इनके विषय मे विशेष विवरण नही मिलता। एक द्रविड़ ग्रन्थ के अनुसार स्कन्द ने नाट्यशास्त्र की शिक्षा अगस्त्य को दी थी।

शृङ्गारशेखरकृत ग्रन्थ 'अभिनयभूषण' के अनुसार शुक्राचार्य की कृति 'शुक्रमतम्' है। शारदातनय तथा अन्य अनेक ग्रन्थकारो ने शुक्रमत की चर्चा की हैं।

१२. विश्वावसु

इन्हे अर्जुन का गुरु कहा जाता है। कल्लिनाथ ने विश्वासवसुमत का उल्लेख किया हैं। इनका विशेष विवरण अभी प्राप्त नही हुआ है।

१३. अगस्त्य

नाट्यशास्त्र काशी-संस्करण के अनुसार महर्षि भरत से नाट्यशास्त्र का श्रवण करनेवालो मे अगस्त्य भी है। द्रविड भाषा का एक ग्रन्थ 'तालसमुद्र' अगस्त्य की रचना कहा जाता है। ताल के सम्बन्ध में इतना विस्तृत विवेचन और कही नही प्राप्त होता।

१४. विशाखिल

ये सप्तगीतो के प्रामाणिक आचार्य्य माने गये है। मतङ्ग ने तान और मूर्च्छना का अन्तर प्रतिपादित करते समय विशाखिल से असहमति प्रकट की है। नान्यदेव ने इनके ग्रन्थ मे ध्रुवा गीतो के उदाहरण भी देखे थे, जो अव अप्राप्य है।

१५. कम्बल, अश्वतर

इन दोनो विभूतियो के नाम साथ-साथ आते है। शार्ङ्गदेव ने स्वरसाधारण के विपय मे चर्चा करते समय इनके मत का उल्लेख किया है।

१६. कश्यप

इन्हे 'मुनि' कहा गया है। कश्यप एवं वृद्ध कश्यप की चर्चा प्राय. आती है। शार्ङ्गदेव ने इनकी चर्चा की है। कल्लिनाथ ने कश्यप की उक्ति के रूप मे कुछ श्लोक दिये है। एक जाति के शुद्ध एव विकृत भेदो के लिए एक मूर्च्छना का विधान भी कश्यप ने किया है। बारह ग्रामरागो को भापाओ का जनक कश्यप ने वताया है।

मतङ्ग ने कश्यप या काश्यप के मत का उल्लेख किया है। वृद्ध काश्यप के कथनानुसार जातियो मे प्रयोज्य स्वर पन्द्रह है। उनकी सज्ञा पड्ज, ऋपभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद, उत्कृष्ट पञ्चम, अन्य धैवत, काकली, अन्तर, साधारित षड्ज, साधारण मध्यम, साधारण गान्धार (और कैशिक निपाद) हैं।

चतु श्रुतिक, त्रिश्रुतिक, द्विश्रुतिक एव एकश्रुतिक स्वरो को काकली एव अन्तर के संयोग से रागभाषाओ मे प्रयुक्त करने का विधान कश्यप ने किया हैं। विकृत स्वरों के प्रयोग के कारण रागभापा-विभाग ग्रामराग-विभाग से भिन्न है।

१७, याष्टिक

इनकी रचना 'याष्टिकसहिता' कही जाती है, जो आजकल नही मिलती। मतङ्ग ने इनके मत की चर्चा की है और याष्टिकसहिता के श्लोक भी उद्धृत किये हैं। इन्होंने देशी रागो के भापा, विभाषा और अन्तरभापा नाम से तीन भेद वताये है। पञ्चश्रुतिक, षट्श्रुतिक और सप्तश्रुतिक स्वर भी इनके मत मे हैं।

१८. आञ्जनेय

आञ्जनेय के सिद्धान्तो का प्रतिपादक ग्रन्थ 'आञ्जनेयसहिता' कहा जाता है, इसे ही कुछ लेखको ने 'हनुमत्सहिता' कहा है। इसी का एक नाम 'भरतरत्नाकर' भी कहा जाता है।

आञ्जनेय का मत ही 'हनुमन्मत' कहलाता है। इसमे श्रुतिसंख्या अठारह है।

रघुनाथ का कथन है—एक बार आञ्जनेय कदलीवन मे पहुँचे, जहाँ याष्टिक मुनि अपने दक्ष इत्यादि शिष्यो को शिक्षा दे रहे थे।

देशी रागो तथा उनके स्वरो की श्रुतियो मे शास्त्रवर्णित स्थिति से विरोध देखकर दक्ष इत्यादि शिष्यो ने याष्टिक मुनि से पूछा कि सप्त शुद्ध एवं द्वादश विकृत स्वरो में एक स्वर की अधिक से अधिक चार (एवं कम से कम दो) श्रुतियाँ है, परन्तु देशी रागो मे पञ्चश्रुति, षट्श्रुति एव सप्तश्रुति स्वर भी है।

इन स्वरो का शास्त्रो से विरोध है, परन्तु इनके परित्याग से राग-लाभ नही होता। इस प्रकार विरोधसम्बन्धिनी शङ्का किये जाने पर याष्टिक मुनि ने इस प्रकार समाधान किया कि शास्त्रविरोध न रहा और रागप्राप्ति भी सम्भव हो गयी।

याष्टिक के शिष्यो की गान-शैली एवं याष्टिक मुनि के द्वारा उपदिष्ट पद्धति को ध्यान मे रखकर आञ्जनेय ने लक्ष्याविरोधी शास्त्र की रचना की।

आञ्जनेय का मत है—"जिन रागो मे श्रुति-स्वर, ग्राम, जाति इत्यादि का नियम नही होता और जिन पर विभिन्न स्थानो की प्रादेशिक छाया होती है, वे 'देशी राग' है।"

ऊपर जिन आचार्य्यो की चर्चा की गयी है, उनमे पौर्वापर्य्य-सम्बन्ध किसी सीमा तक भले ही स्थापित किया जा सके, परन्तु उनके काल-निर्णय का कोई वैज्ञानिक उपाय अभी तक उपलब्ध नही है।

१९. शार्दूल

इनका अनुमानित काल प्रो० रामकृष्ण कवि के अनुसार चौथी या पाँचवी शती ई० है। ये अभिनय के सम्बन्ध मे प्रामाणिक लेखक कहे जाते है। इनके ग्रन्थ 'हस्ताभिनय' मे हस्ताभिनय के सोलह भेद है। यह ग्रन्थ आजकल अनुपलब्ध है। मतङ्ग ने शार्दूल की चर्चा की है। शार्ङ्गदेव एवं रघुनाथ की श्रुति-जातियाँ शार्दूलमत के अनुसार है, इससे सिद्ध होता है कि स्वरविधि पर भी इनका कोई ग्रन्थ होगा।

२०. राहल (राहुल)

ये एक बौद्ध आचार्य्य थे। इनका अनुमानित काल पाँचवी शती ई० या उससे कुछ पूर्व है। इन्होने 'भरतवार्तिकम्' के रूप मे नाट्यशास्त्र की व्याख्या की है। अभिनवगुप्त इत्यादि आचार्य्यो ने 'भरतवार्तिकम्' से श्लोक उद्धृत किये है। शार्ङ्गदेव ने भी इनका स्मरण किया है।

२१. मतङ्ग

जनश्रुति के अनुसार इनका काल छठी शती ई० है। प्रो० रामकृष्ण कवि इनका काल नवी शती ई० का मध्य भाग मानते है।

मतङ्ग के ग्रंथ का नाम 'बृहद्देशी' है, जिसमे आठ अध्याय है। इस ग्रन्थ मे ताल और वाद्य पर भी विचार किया गया है, परवर्ती सभी आचार्य्यों ने मतङ्ग का मत सम्मानपूर्वक उद्धृत किया है।

मतङ्ग ने काश्यप, नन्दी, कोहल, दत्तिल, दुर्गशक्ति, याष्टिक, वल्लभ, विश्वावसु, शार्दूल, विशाखिल इत्यादि पूर्वाचार्य्यों की चर्चा की है।

इन्होने भरतोक्त सप्तस्वर मूर्च्छनाएँ मानी तो है, परन्तु रागसिद्धि के लिए मूर्च्छना के आकार को विस्तृत करके उसे 'द्वादशस्वर' मानने पर बल दिया है। यह द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद नन्दिकेश्वर का कहा जाता है।

आचार्य्य अभिनवगुप्त ने इस द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद का खण्डन किया है, उसके पश्चात् यह वाद पनप नही सका।

मतङ्ग चित्रावादक थे, इसलिए इन्हे 'चैत्रिक' कहा जाता है। प्रो० रामकृष्ण कवि के अनुसार मतङ्ग ही किन्नरी वीणा के आविष्कारक है, इनसे पूर्व वीणा पर सारिकाएँ नही होती थी।

कुम्भ के अनुसार मतङ्ग की किन्नरी पर चौदह पर्दे होते थे, वैसे उनकी संख्या अठारह तक हो सकती थी।

आधुनिक वे सभी तन्त्रीवाद्य किन्नरी के विकसित रूप है, जिन पर सारिकाएँ विद्यमान है। मतङ्ग ने देशी रागो को भी ग्रामो मे वर्गीकृत किया है।

२२. कीर्तिधर

ये एक प्राचीन आचार्य्य है। आचार्य्य अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती के छठे एवं उन्नीसवे अध्याय मे इनकी चर्चा की है। ये रस एव सगीत के प्रामाणिक आचार्य्य और नाट्यशास्त्र के व्याख्याता है। शार्ङ्गदेव ने भी इनका स्मरण किया है

२३. सुधाकलश

इनका काल नवी शती ई० के लगभग कहा जाता है। ये राजशेखर के गुरु जैनाचार्य्य के शिष्य थे। सुधाकलश की रचना 'सङ्गीतोपनिषत्सार' है।

इसी ग्रन्थ के आधार पर रचित एक कृति 'सङ्गीतोपनिषत्सारोद्धार' है, जिसमें

भोज, तालरत्नाकर, शिवमत, गौरीमत, विश्वावसु, तुम्बरु, वसिष्ठपुत्र, पालक भूपाल इत्यादि की चर्चा है। इसी ग्रन्थ में अर्जुन को विश्वावसु का शिष्य बताया गया है।

इस ग्रन्थ के अन्त मे 'भवेश भूपाल' एवं 'भवेत्स भूपाल' दो पाठ भिन्न-भिन्न प्रतियो मे मिलते है। यदि भवेश भूपाल शुद्ध पाठ हो, तो इस ग्रन्थ का रचनाकाल चौदहवी शती ई० होना चाहिए। मिथिलानरेश भवेश के द्वारा १३३० ई० मे लिखा एक दानपत्र प्राप्त होता है।

२४. लोल्लट

लोल्लट नाट्यशास्त्र के प्रसिद्ध व्याख्याता हुए है, इनकी व्याख्या का नाम 'गुण-निका' है। अभिनवगुप्त ने रस-प्रकरण मे इनके मत का खण्डन किया है। रस का प्रत्येक विद्यार्थी इनके नाम से परिचित है। शार्ङ्गदेव ने भी इनका स्मरण किया है।

२५. धण्टक

भरत-नाट्यशास्त्र का सक्षिप्त संस्करण इनकी व्याख्या का विपय वना है। अभिनवगुप्त ने इनकी चर्चा की है।

२६. रुद्रट

ये कश्मीरनिवासी थे, इनका समय नवी शती ई० है। इनका दूसरा नाम 'शता-नन्द' था और ये सामवेदी ब्राह्मण थे। राजशेखर ने 'काकु' के सम्बन्ध मे इनके मत का खण्डन किया है।

२७. देवराज

ये एक अप्रसिद्ध सङ्गीताचार्य्य हुए है, इनका अनुमानित काल नवी शती ई० है।

२८. सागरनन्दी

ये नाटकरत्नकोश और निघण्टुरत्नकोश इत्यादि ग्रन्थो के व्याख्याता हुए है। अमरकोश की व्याख्या में सुभूति तथा 'सङ्गीतराज' मे कुम्भ ने इनका नाम लिया है। इनका काल ९८० ई० है। अभिनवगुप्त ने इनकी कुछ मान्यताओ का खण्डन भी किया है।

२९. अभिनवगुप्त

प्रत्यभिज्ञादर्शन, नाट्य एवं सङ्गीत के प्रामाणिकतम आचार्य्य श्रीमान् अभिनव-गुप्त का काल दशम शती ई० का अन्तिम भाग है। ये कश्मीरी थे। इन्होने वितस्ता

नदी के तट पर स्थित प्रवरपुर के एक मठ मे 'भरतनाट्यशास्त्र' की अमर टीका 'अभिनवभारती' की रचना की ।

संस्कृत भापा के सर्वश्रेप्ठ व्याख्याग्रन्थो में 'अभिनवभारती' का स्थान है। इसमे न तो कोई अनुपयुक्त बात कही गयी है, न कोई दुर्बोध स्थल अस्पष्ट रहने दिया गया है।

रस के सम्बन्ध मे उद्भट, लोल्लट, शङ्कुक इत्यादि के मतो का निराकरण करके इन्होने 'रस' पर अपने मत की स्थापना सप्रमाण एवं युक्तियुक्त रूप मे की है, जो आज भी प्रमाण है।

इन्होने मतङ्ग के द्वादशस्वर-मूर्च्छनावाद का खण्डन किया है। इन्होने लिखा है कि इनके समय के लक्ष्यवेदियो का कथन है कि मध्यमग्राम मे पञ्चम के द्वारा परित्यक्त एक श्रुति का ग्रहण केवल धैवत ही करता हो, इस सम्बन्ध मे कोई प्रमाण नही। इससे सिद्ध है कि इनके समय मे ग्रामो का संश्लिष्ट प्रयोग होने लगा था। पड्जग्रामीय ऋपभ और अन्तर गान्धार क्रमश. मध्यमग्रामीय पञ्चम और धैवत बनते हैं। षड्ज-ग्रामीय ऋषभ के पश्चात् और अन्तर गान्धार से पूर्व शुद्ध गान्धार विद्यमान है, प्रतीत होता है कि त्रिश्रुतिक पञ्चम के पश्चात् भी उसका प्रयोग अभिनवगुप्त के काल में होता था। इनके समय में श्रुत्युत्कर्प से द्विश्रुतिक एव त्रिश्रुतिक स्वर भी अधिक श्रुतियो से युक्त किये जाकर प्रयुक्त होते थे। काकली और अन्तर के प्रयोग से चतु-श्रुति एव त्रिश्रुति स्वर भी न्यूनश्रुति होते थे। अभिनवगुप्त के मत मे सभी स्वरो का श्रुतिकृत वैचित्र्य सम्भव है।

अभिनवगुप्त का यह मत देशी रागो मे प्रयोज्य स्वरो के सम्बन्ध मे है, ग्रामरागो एवं जातियो से इस मत का कोई सम्बन्ध नही।

शुद्ध रागो के निर्वचन के पश्चात् अभिनवगुप्त ने काश्यप एवं दुर्गा इत्यादि के मत के अनुसार छियानवे रागों का वर्णन करके उनका रस औस भाव में विनियोग वताया है।

'अभिनवभारती' का आतोद्यविधि भाग अभी तक अप्रकाशित है।

३०. महाराज भोज

प्रसिद्ध विद्याव्यसनी धारानरेश महाराज भोज का काल ९९८ ई० से १०६२ ई० तक है। इनका अलंकारगास्त्र-विपयक विशाल ग्रन्थ 'श्रृंगारप्रकाग' है, जिसमे छत्तीस 'प्रकाश' है।

'सरस्वतीकण्ठाभरण' भी भोज का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। व्याकरण एव सङ्गीत पर भी इनकी रचनाओ की चर्चा मिलती है। शार्ङ्गदेव ने इनका स्मरण किया है।

महमूद गजनवी के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए संघटित एक राजसघ मे इन्होने भी सहायता दी थी ।

३१. नान्यदेव

इनका काल १०८० ई० है । ये मिथिला के कर्णाटजातीय राष्ट्रकूट नरेश थे । इन्होने अपने भाई कीर्तिराज को नेपाल के राजसिहासन पर अधिष्ठित किया था । इनकी उपाधियाँ 'मोहनमुरारि', 'क्षमापालनारायण' थी ।

नान्यदेव का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सरस्वती हृदयालङ्कार' है । इसमें आपिशल, पाणिनि, विशाखिल, काश्यप, मतङ्ग, देवराज, शातातप तथा 'रत्नकोश' इत्यादि की चर्चा है । 'सरस्वतीहृदयालङ्कार' का दूसरा नाम 'भरतभाष्य' भी है ।

नान्यदेव ने गान्धारग्राम की चर्चा करते हुए उससे उत्पन्न रागो को लौकिक व्यवहार के लिए भी उपयुक्त बताया है ।

'ग्रन्थमहार्णव' नामक एक ग्रन्थ को भी नान्यदेव की कृति कहा जाता है ।

३२. त्रिभुवनमल्ल

पश्चिम चालुक्यचक्रवर्ती त्रिभुवनमल्ल का शासनकाल १०७६ ई० से ११२६ ई० तक है । इन्हे जयसिह भी कहा जाता है । इतिहास में ये 'विक्रमाङ्कदेव' एवं 'परमर्दी' नाम से भी प्रसिद्ध है । महाकवि बिल्हण ने 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' नामक महाकाव्य की रचना इन्ही के गुणगान में की है ।

महाराज त्रिभुवनमल्ल की राजधानी 'कल्याण', दक्षिण हैदराबाद का कल्याणी नामक प्रदेश, थी । इनका ग्रन्थ उपलब्ध नही, परन्तु जगदेकमल्ल, शार्ङ्गदेव एव हम्मीर ने सादर इनके मत का उल्लेख किया है ।

३३. सोमेश्वर

ये महाराज त्रिभुवनमल्ल के प्रतापी पुत्र थे, इन्होने अपने पिता के यशोगान में 'विक्रमाङ्काभ्युदय' की रचना की है । इनके द्वारा रचित दूसरा ग्रन्थ 'अभिलषितार्थ-चिन्तामणि' है, जिसे एक विश्वकोश समझा जाना चाहिए, इसमे पॉच प्रकरण है और इन प्रकरणो मे सौ अध्याय है । यह प्रधानतया राजविद्या का ग्रन्थ है, जिसकी रचना राजकुमारों को शिक्षा देने के लिए हुई है ।

इस ग्रन्थ के चौथे प्रकरण मे एक हजार एक सौ सोलह श्लोक सङ्गीत है ।

भाषा, विभाषा, क्रियाङ्ग इत्यादि मे विभक्त छियानवे देशी रागों का कथन सोमेश्वर ने किया है। उदाहरणो के द्वारा प्रवन्धो का स्पष्टीकरण इस ग्रन्थ मे है और यह एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। अनेक आचार्य्यो ने आदरपूर्वक सोमेश्वरमत का उल्लेख किया है। महाराज सोमेश्वर को भूमल्ल भी कहा जाता है। ये 'कुण्डलीनृत्तम्' के आविष्कर्त्ता एव प्रवर्त्तक हुए है। इनका राज्यकाल ११२७–११३४ ई० है।

३४. जगदेकमल्ल

ये महाराज सोमेश्वर के पुत्र थे, इनकी उपाधि 'प्रतापचक्रवर्ती' थी। इनका राज्यकाल ११३४–११४५ ई० है।

इनके ग्रन्थ का नाम 'सङ्गीतचूडामणि' है, जिसमे परमर्दी, सोमेश्वर, पाण्डुसूनु एव 'बृहद्देशी' की चर्चा है। 'प्राकृतछन्द' के रचयिता स्वयम्भू की चर्चा भी इस ग्रन्थ मे है। इस ग्रन्थ के पाँच अध्यायो मे प्रबन्ध, ताल, राग, वाद्य एव नृत्य का वर्णन हुआ है। वाद्याध्याय और नृत्याध्याय असम्पूर्ण प्राप्त हुए है।

सङ्गीतसमयसार के रचयिता पार्श्वदेव (तेरहवी शती ई०) ने 'सङ्गीतचूडामणि' से अनेक श्लोक उद्धृत कर लिये है।

मलाबार मे 'सार' नामक एक ग्रन्थ उपलब्ध है, जो अनेक प्रतियो के आधार पर किया हुआ 'सगीतचूडामणि' का पुन. सस्कारमात्र है।

जगदेकमल्ल-कृत एक ग्रन्थ 'नाटयटिप्पणी' भी है, जिसे नाटयशास्त्र की सक्षिप्त व्याख्या समझा जाना चाहिए।

जगदेकमल्ल ने जातियो के ध्यान भी दिये है।

३५. शारदातनय

इनके पिता का नाम कृष्णभट्ट एव गुरु का नाम दिवाकर था। इनका काल प्राय: ११५० ई० है। शारदातनय के दो ग्रन्थ 'भावप्रकाशन' और 'शारदीय' है।

भावप्रकाशन नाटय का ग्रन्थ है, परन्तु इसके एक अध्याय मे सङ्गीत के सिद्धान्त सार रूप मे दिये गये है, सङ्गीत के विषय मे विस्तृत निरूपण इन्होने 'शारदीय' मे किया है, जिसकी चर्चा 'भावप्रकाशन' मे है। 'शारदीय' आजकल अप्राप्य है।

अभिनवभारती, काव्यप्रकाश, शृंगारप्रकाश, अभिलषितार्थचिन्तामणि, कल्पतरु, योगमाला इत्यादि ग्रन्थ एवं मातृगुप्त, शंकुक, व्यास, वासुकि इत्यादि आचार्य्यों

की चर्चा 'भावप्रकाशन' में है। रूपकलक्षण मे ब्राह्मणमत एवं बौद्धमत का स्मरणीय उल्लेख किया गया है।

३६. हरिपाल

महाराज हरिपाल चालुक्यवंशीय सौराष्ट्रनरेश थे, इनकी राजधानी अभिनवपुर (नवानगर) थी। ये महाराज भीमदेव के पुत्र थे और इनकी उपाधि '(विचार-चतुर्म्मुख' थी। इनका काल ११७५ ई० है।

महाराज हरिपाल ने नाटचविद्या-सम्बद्ध नारियों के लिए कावेरीतीर पर स्थित श्रीरङ्गम् मे 'सङ्गीतसुधाकर' नामक ग्रन्थ की रचना की।

यद्यपि महाराज हरिपाल भरत के अनुयायी प्रतीत होते है, तथापि इन्होने 'भरतार्णव' (नन्दिकेश्वर मत के ग्रन्थ) से भी कुछ संगृहीत किया है। शुद्ध, छायालग इत्यादि वर्गीकरण एवं रागाङ्ग, भापाङ्ग, क्रियाङ्ग इत्यादि वर्गीकरण भी इनकी चर्चा का विषय वने है और सत्तर रागो का निदर्शन इन्होने किया है। महाराज हरिपाल ने करण-प्रकरण में कीर्तिधर एव नन्दी का अनुगमन किया है।

सङ्गीतसुधाकर के प्रथम अध्याय में नृत्य, द्वितीय एवं तृतीय मे वाद्य और चतुर्थ मे गीत का प्रतिपादन है।

३७. सोमराजदेव

इन्होने ११८० ई० में 'संगीत-रत्नावली' की रचना की। सोमराजदेव को सोमभूपाल भी कहा जाता है। ये सम्राट् अजयपाल और भीमपाल के वेत्राधिपति थे। ये स्वयं को 'चौलुक्यनृपतिप्रतिहारचूडामणि' कहते है। इनकी उपाधि 'नाट्यवेद-विरिञ्चि' थी। सोमराजदेव अत्यन्त दानी थे, इनके पिता जगद्देव ने सिन्धु देश के राजा को पराजित किया था।

'सङ्गीत-रत्नावली' एक प्रौढ़ रचना है, इसमे नौ अध्याय है। इनमें क्रमशः, वस्तु-सामान्य, स्वर और ग्राम, प्रवन्ध, बयालीस राग, देशी राग, ताल तथा अन्तिम तीन अध्यायो मे वाद्य का वर्णन है।

इन्होने एकतन्त्री वीणा (ब्रह्मवीणा) एवं आलापिनी वीणा के लक्षण भी दिये है और नवीन प्रवन्धो की रचना भी की है।

३८. शार्ङ्गदेव

वारहवी शती ई० मे सम्भवत राजनीतिक अस्थिरता के कारण कश्मीर के एक विद्वान् ब्राह्मण श्रीभास्कर को दक्षिण मे आश्रय लेना पड़ा।

श्रीभास्कर के पुत्र श्रीसोढल देवगिरि (दौलताबाद) के यादवनरेश भिल्लम और तत्पश्चात् उनके पुत्र सिघण (राज्यकाल १२१०-१२१७ ई०) के आश्रय मे रहे।

श्रीसोढल के पुत्र आचार्य शार्ङ्गदेव भी महाराज सिंघण के आश्रित थे। सिहभूपाल (चौदहवी शती) का कथन है कि आचार्य शार्ङ्गदेव से पूर्व समस्त सङ्गीत-पद्धति बिखर गयी थी, जिसे स्पष्ट रूप से शार्ङ्गदेव ने सँजो दिया।

आचार्य शार्ङ्गदेव ने जिन-जिनके मत का मन्थन करके अपनी अमर कृति 'सङ्गीत-रत्नाकर' का प्रणयन किया वे है—सदाशिव, शिवा, ब्रह्मा, भरत, काश्यप, मतङ्ग, याष्टिक, दुर्गा, शक्ति, शार्दूल, कोहल, विशाखिल, दत्तिल, कम्वल, अश्वतर, वायु, विश्वावसु, रम्भा, अर्जुन, नारद, तुम्वुरु, आञ्जनेय, मातृगुप्त, रावण, नन्दिकेश्वर, स्वाति, गण, बिन्दुराज, क्षेत्रराज, राहल, रुद्रट, नान्यदेव, भोज, परमर्दी, सोमेश्वर, जगदेक, नाटचशास्त्र के व्याख्याता लोल्लट, उद्भट, शकुक, अभिनवगुप्त, कीर्तिधर तथा अन्य अनेक सङ्गीतपारङ्गत।

सङ्गीत-रत्नाकर उपलब्ध सङ्गीतग्रन्थों का मुकुट है। केशव, सिंहभूपाल तथा कल्लिनाथ ने सस्कृत मे तथा विट्ठल ने तेलुगु मे इस पर टीका की है। इसकी हिन्दी (व्रजभाषा) टीका के कर्ता कोई गङ्गाराम हुए है।

रत्नाकर में प्राचीन एवं सामयिक सङ्गीत का विस्तृत वर्णन है। सात अध्यायों मे क्रमशः स्वर, राग, प्रकीर्ण विषय, प्रबन्ध, ताल, वाद्य एवं नृत्य का विशद वर्णन शार्ङ्गदेव ने किया है, इसी लिए इनका ग्रन्थ 'सप्ताध्यायी' कहलाता है।

रत्नाकर मूर्च्छना-पद्धति का ग्रन्थ है, फलतः मेल-पद्धति या ठाठपद्धति की मान्यताओं से सर्वथा मुक्त होकर ही इस ग्रन्थ का समझा जाना सम्भव है।

शार्ङ्गदेव ने दुर्गा इत्यादि के मतो का आश्रय लेकर दो सौ चौंसठ रागो का निरूपण किया है।

मेल-पद्धति के विचारक सङ्गीतसुधाकार रघुनाथ ने रत्नाकर के विषय को न समझने के कारण शार्ङ्गदेव का उपहास किया है। षाड्जी जाति की मतङ्गनिर्दिष्ट द्वादशस्वर-मूर्च्छना धैवतादि को रघुनाथ 'मेल' समझे है, जव कि मतङ्ग या शार्ङ्गदेव के ग्रन्थों में 'मेल' शब्द की चर्चा तक नही है।

प्रो० के० वासुदेव शास्त्री का मत है कि पश्चाद्वर्ती रघुनाथ जैसे ग्रन्थकार संगीत-रत्नाकर तथा उससे पूर्व के ग्रन्थो को समझने मे असमर्थ रहे है।

शार्ङ्गदेव द्वारा 'तुरुष्क गौड' एव 'तुरुष्क तोडी' चर्चा यह प्रमाणित करती है कि दक्षिण तक मे उस समय मुस्लिम सङ्गीत का प्रभाव पड चुका था।

रत्नाकरवर्णित रागो में अनेक राग ऐसे है, जिनके साथ मालव, गौड, कर्णाट, वङ्गाल, द्रविड़, सौराष्ट्र, दक्षिण, गुर्जर-जैसे शब्द संलग्न है, जो इन रागो का विभिन्न प्रदेशो के साथ सम्बद्ध होना सिद्ध करते है।

आचार्य्य शार्ङ्गदेव ने लिखा है कि मेरे समय मे वङ्गाल, भैरव, वराटी, गुर्जरी, वसन्त, धन्नासी, देशी, देशाख्या इत्यादि रागाङ्गो, डोम्बक्री, प्रथममञ्जरी, कामोदा जैसे भाषाङ्गो, गौडकृति, देवकृति जैसे क्रियाङ्गो तथा भैरवी, मल्हार, कर्णाट गौड, तुरुष्क गौड, द्राविड गौड, ललिता इत्यादि उपाङ्गो के रूप मे सर्वथा परिवर्तन हो गया है।

रागो के वर्तमान रूपो के आधार पर रागवर्गीकरण की कुछ पद्धतियो को असङ्गत समझनेवाले व्यक्तियो के लिए शार्ङ्गदेव का यह कथन आँख खोल देनेवाला है।

रत्नाकर के अनेक रागों का प्रत्यक्षीकरण करके 'वाक्' और 'गेय' की रचना हम कर चुके है।

३९. ज्याय सेनापति

ये वारङ्गल-नरेश महाराज गणपति के साले एवं सेनाध्यक्ष थे। गणपति स्वय भी शास्त्रकार थे, परन्तु उनकी कृति उपलब्ध नही।

ज्याय सेनापति ने 'नृत्तरत्नावली' 'वाद्यरत्नावली' एवं 'गीतरत्नावली' की रचना की। नृत्तरत्नावली के अतिरिक्त अन्य दोनो ग्रन्थ अनुपलब्ध है।

नृत्तरत्नावली के पूर्वार्द्ध में 'मार्ग' एव उत्तरार्ध में 'देशी' नृत्त पर अच्छा विचार किया गया है। इसका रचना-काल १२४९ ई० है।

ज्याय सेनापति ने कीर्तिधर, तण्डु, अभिनवगुप्त एवं सोमेश्वर के मतों मे यत्र-तत्र कुछ सशोधन किये है। इनके ग्रन्थ मे 'आत्मचरित' नामक किसी ग्रन्थ की चर्चा भी है।

४०. पाल्कुरिकि सोमनाथ

ये एक तेलुगु लेखक है। इनके ग्रन्थ 'पण्डिताराध्यचरितम्' का रचनाकाल प्रायः १२७० ई० है। इनके द्वारा उल्लिखित वीणाएँ वीणोत्तमा, ब्रह्मवीणा, कैलासवीणा, सारङ्गवीणा, कूर्मवीणा, आकाशवीणा, मार्गवीणा, रावणवीणा, गौरीवीणा, अम्बिका-वीणा, वाणवीणा, काश्यपवीणा, स्वयम्भूवीणा, भुजङ्गवीणा, भोगवीणा, किन्नरवीणा, त्रिस्वरी वीणा, सरस्वतीवीणा, मोल्लिवीणा, मनोरथवीणा, गणनाथवीणा, रावण-

हस्ता, चित्रिका, नाट्यनागरिका, कुम्भिका, विपञ्ची, कसरि-वीणा, परिवारि-वीणा, स्वरमण्डल, घोषवती, औदुम्बरी, तन्त्रीसागर एव अम्वुज-वीणा है।

मृदङ्गो मे समहस्त, वैसालम् इत्यादि की चर्चा है।

नन्दी के एक सौ आठ भङ्ग, वंश के उनचास भेद, बाईस गमक, एक सौ आठ राग, बारह वाचक, पाँच स्वादु, तीन स्थान, बत्तीस शुद्ध ठाय, पन्द्रह सालग ठाय, अडतालीस लास्य रङ्ग, बीस अङ्गहार, इत्यादि वस्तुएँ इस ग्रन्थ के पर्वत-प्रकरण मे उद्धृत है। इनमें से अधिकांश अन्यत्र अज्ञात है।

४१. महाराणा हम्मीर

'तिरिया तेल, हमीर-हठ, चढै न दूजी बार' लोकोक्ति में जिन स्वाभिमानी नरेश महाराणा हम्मीर की चर्चा है, वे प्रतापी योद्धा होने के अतिरिक्त संगीत के धुरन्धर आचार्य एवं ग्रन्थकार भी थे।

ये 'शाकम्भरी' प्रदेश के अधिपति थे, इन्होने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शृङ्गारहार' की रचना १३०० ई० से पूर्व की।

शृङ्गारहार मे ब्रह्ममत के 'गान्धर्वामृतसागर' से उद्धरण दिये गये हैं। अन्तिम अध्याय में रसो के उदाहरण 'अमरुकशतक', 'उत्तररामचरित', 'सप्तशती' (प्राकृत), 'मेघसन्देश', 'कुमारसम्भव', 'वीरचरित', 'नागानन्द' एव 'शकुन्तला' (नाटक) से लिये गये है।

महाराणा हम्मीर ने अन्य लेखको के अतिरिक्त अर्जुन, याष्टिक, रावण, दुर्गाशक्ति, अनिल, कोहल, कम्बल, जैत्रसिह, रुद्रट, भोज, विक्रम, जगदेव, केशिदेव, सिंहण, गणपति एवं जयसिह की प्रशसा की है।

ये शैव थे। 'प्रसिद्धालकारो' का वर्णन इन्होने किया है। इनका कथन है कि जातियों की उत्पत्ति सामवेद से हुई है। इन्होने प्राचीन रागो के अतिरिक्त याष्टिक के बीस भाषारागो एव पन्द्रह जनक रागो का वर्णन भी किया है। तिरपन देशी राग भी इन्होने दिये है। 'रूप' और 'गीत' पर पृथक्-पृथक् अध्याय लिखे है। मोक्षदेव ने इस ग्रन्थ से बहुत कुछ जैसा का तैसा ले लिया है।

हम्मीर ने तालाध्याय में एक सौ बीस ताल दिये है। एकतन्त्री, नकुला, किन्नरी और आलापिनी के विषय में इन्होने लिखा है।

इन्होने दृष्टियो का वर्णन किया है, फिर पुष्पाञ्जलि की चर्चा की है। इनके ग्रन्थ का अन्तिम अध्याय नाट्य पर है।

४२. अल्लराज

ये महाराणा हम्मीर के पुत्र थे। इनकी रचना 'रसतत्त्व समुच्चय' में पाँच अध्याय है। आदिम चार अध्यायो मे 'संगीत' एवं अन्तिम अध्याय में साहित्य का वर्णन है। 'रसतत्त्वसमुच्चय' एक प्रौढ रचना है।

४३. पार्श्वदेव

पार्श्वदेव जैनमतावलम्बी आचार्य थे। इनके पिता ब्राह्मण थे। पार्श्वदेव का काल प्रायः १३०० ई० है। इनके ग्रन्थ 'सङ्गीतसमयसार' मे दस अध्याय है। प्रथम अध्याय मे वेदमूलक 'सङ्गीत' है, द्वितीय अध्याय में नाड़ी से सम्बद्ध विचार है। अवशिष्ट अध्याय देशी सङ्गीत से सम्बद्ध है।

सिहभूपाल ने 'रत्नाकर' की टीका में पार्श्वदेव के ग्रन्थ से अनेक श्लोक उद्धृत किये है।

पार्श्वदेव ने जाति-गान को मार्गसगीत कहा है। इन्होने छियासठ श्रुतियो के नाम दिये है, जो 'कोहल' के अनुसार है।

तानयज्ञो पर विचार करते हुए पार्श्वदेव ने कहा है कि गायकों को तानो के द्वारा यज्ञफल की प्राप्ति होती है।

तृतीय अध्याय में पार्श्वदेव ने रागो पर विचार किया है। इनके ग्रन्थ को प्रामाणिक रचना समझा जाता है।

४४. गोपाल नायक

तेरहवी शती ई० मे ये सङ्गीत के प्रामाणिक आचार्य, रचनाकार एवं कलाविद् हुए है। कुछ लोगों के अनुसार ये देवगिरि के राजा के आश्रित थे, परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण नहीं।

हमारी दृष्टि में ये उत्तर-भारतीय आचार्य थे। कारण निम्नलिखित है —

(१) इनके प्रसिद्ध गुरु 'वैजू' थे। वैजनाथ का संक्षेप 'वैजू' हो जाना उत्तर-भारतीय भाषाओं तथा व्रज-प्रदेश की विशेषता है।

(२) अनेक प्रामाणिक ध्रुवपदों मे वैजू गोपाल को 'गुपला' कहकर सम्वोधित करते है। 'गुपला' अपभ्रंश भी हिन्दी की विशेषता है।

(३) दक्षिण से मलिक काफूर के द्वारा जो सङ्गीतज्ञ वलात् लाये गये, उनमें इनका नाम नही।

(४) इनके कुछ सुरक्षित ध्रुवपदो से साक्ष्य मिलता है कि इन्होने नान्यदेव मिथिलानरेश की कृति से प्रभाव ग्रहण किया।

(५) इनके एक ग्रन्थ 'तौर्य्यत्रिकसार' का पता हमे चला है, जो व्रजभापा में है। उसके अनेक ध्रुवपद तत्कालीन स्थिति एव यवनो द्वारा सङ्गीत में किये जानेवाले परिवर्तनो की चर्चा करते है।

इनके सम्वन्ध मे डागुर वश के एक वृद्धतम प्रतिनिधि के पास सुरक्षित ध्रुवपदो से ये तथ्य प्रमाणित होते है —

गोपाल, वैजू के प्रिय एव होनहार शिष्य थे। इन्हे गान्धार स्वर पर जव विलक्षण अधिकार हो गया तव इन्हे अभिमान हुआ और ये निकल खड़े हुए। दिल्ली आये, और इनकी चर्चा अलाउद्दीन खिलजी तक पहुँची। खिलजी के समक्ष इन्होने सस्कृत का ध्रुवपद गाया, जब वह उस ध्रुवपद को नही समझा, तव इन्होने हिन्दी मे ध्रुवपद गाये।

मुसलमानो ने षड्ज-मध्यम-भाव का विनाश करके षड्ज-पञ्चम-भाव की स्थापना की। मूर्च्छना-पद्धति के स्थान पर एक और पद्धति (मुकाम-पद्धति) अपनायी। वीणा मे सारें अचल कर दी। फलतः एक राग की दो 'सरगम' हो गयी। स्वरो के नाम वदल गये, सात प्रकट रहे और सात गुप्त।

उधर अपने प्रतिभाशाली शिष्य के वियोग मे वैजू 'वावरे' हो गये और ढूँढते-ढूँढते उन्होने यवनो मे फँसे हुए गोपाल को पाकर डाँटा और कहा कि तूने केवल एक गान्धार सिद्ध किया और तुझे इतना अभिमान हो गया, तेरे अवशिष्ट स्वरो की स्थिति क्या है? तू यवनों मे आ फँसा, तूने विद्या दी नही, छिना दी। इन लोगो को श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना इत्यादि का भेद न वता। शत्रुओ पर नागपाश डाल, जव कोई गुणी इस जाति मे उत्पन्न होगा, तव यह भेद खुलेगा।

एक सहस्र वैजू के और एक सहस्र अपने ध्रुवपदो का सग्रह गोपाल ने किया। नान्यदेव के भरतभाष्य का अध्ययन करनेवाले गोपाल नायक का पाण्डित्य असन्दिग्ध है।

कल्लिनाथ एव वेंकट मखी ने इनकी चर्चा सम्मानपूर्वक की है।

४५. अमीर खुसरो

इस महान् प्रतिभाशाली कूटनीतिज्ञ, विद्वान्, कवि एवं सगीतज्ञ का जन्म १२५४ ई० मे हुआ। इन्होने दिल्ली के सिहासन पर क्रमश. ग्यारह सम्राटो को देखा था।

ये तुर्की, फारसी, अरवी एवं हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान् थे, सस्कृत का भी कुछ ज्ञान इन्हे था। हिन्दी साहित्य के इतिहास, सूफी परम्परा, इतिहास, फारसी साहित्य एवं

सङ्गीत के विद्यार्थियो के लिए इनका नाम विस्मरणीय नही। निस्सन्देह इन जैसी प्रतिभाओ से संसार कही शताब्दियों मे सुशोभित होता है।

ये सूफी थे और प्रसिद्ध सूफी सन्त हजरत निजामुद्दीन के मुरीद। इनमें नकल करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक थी। फारसी रचनाओ को सम्मुख रखकर वैसी ही रचना करने मे इनको आनन्द आता था।

ईरानी सङ्गीत का इन्हे सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान था और भारतीय संगीत का केवल व्यावहारिक। भारतीय सिद्धान्तों से इन्हे परिचय न प्राप्त हो सका।

मुसलमान इनका नाम 'हजरत अमीर खुसरो रहमतुल्ला अलेह' कहकर लेते है।

इन्होने अपने समय दिल्ली के आसपास प्रचलित रागो का सम्भवतः मुकाम-पद्धति से वर्गीकरण किया। मूर्च्छना-पद्धति का ज्ञान इन्हे नही था।

ये ईरानी और भारतीय संगीतज्ञो मे विवाद कराते और सार-ग्रहण की चेष्टा करते थे।

ईरानी सङ्गीत पर प्रागैतिहासिक काल से भारतीय प्रभाव था, इसी लिए वह भारतीय रागो मे घुल-मिल गया।

इन्होने नये संकीर्ण रागो, नये तालों की रचना की। कौल और तराना की रचना इन्होने अवुलफज्ल के कथनानुसार 'समित' और 'तातार' की सहायता से की। सम्भव है 'समित' शव्द भारतीय गायकों को किसी 'समिति' का वाचक हो।

खयाल के प्रवर्तक भी यही कहे जाते है।

सितार और तवले की चर्चा खुसरो के किसी ग्रन्थ में कही नहीं है। ईरानी संगीत ने खुसरो के वहुत पूर्व से 'सहतार' की चर्चा है, जो भारतीय 'त्रितन्त्री' शव्द का ठीक-ठीक पर्याय है।

वाजिदअली शाह ने कहा है—"खुसरो ने अपने आविष्कारों से उन नियमो एवं वाद्यो का विनाश कर दिया, जो सहस्रों वर्षो से चले आते थे। खुसरो के शिष्यों ने अपनी धृष्टता मे आकर उन कलावन्तो से झगडा किया, जो महादेव के समय से चली आनेवाली परम्पराओ के प्रतिनिधि थे। खुसरो ध्रुवपद के नही, खयाल के नायक थे।"

औरंगजेबकालीन लेखक फ़करुल्लाह ने एक जनश्रुति के रूप मे कहा है—"खुसरो ने छिपकर अलाउद्दीन के दरवार मे निमन्त्रित गोपाल नायक का संगीत सुना, फिर उन्ही रागो की 'नकल' करके गोपाल नायक को चकित कर दिया और कहा कि मैं पहले ही इन रागों का आविष्कार स्वयं कर चुका हूँ।"

अमीर खुसरो के अधिकाश आविष्कार आज काल के गर्भ मे समा चुके है।

४६. शृङ्गारशेखर

ये वारङ्गल तैलङ्गाना के निवासी थे। इनकी रचना 'अभिनयभूपण' है। प्रताप-रुद्र (१३३० ई०) के सभासद् वीरभल्लट को इन्होने अपना गुरु कहा है।

'अभिनयभूपण' पर तामिल टीका भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थ का भरत-पद्धति से सम्बन्ध खोजना कठिन है। इसमें शुक्राचार्य, स्कन्द, बृहस्पति, कोहल, दुर्वासा, अर्जुन, वायुसूनु, भरतार्णव, नन्दिकेश्वर, याज्ञवल्क्य इत्यादि के उद्धरण हैं।

शृङ्गारशेखर ने नक्षत्रो एव राशियो का साङ्गीतिक वर्णन किया है।

पुरुष एवं स्त्री-रागों की चर्चा भी इन्होने की है। इनके अनुसार पुरुष राग आठ है, जिनके नाम भूपाल, भैरव, श्री, कलपञ्जर, वसन्त, वङ्गाल, मालव एवं टक है।

भूपाल की पत्नियाँ—
वेलाकुली, मलहरी और मौलि,
भैरव की पत्नियाँ—
देवक्रिया, मेघरञ्जी और करञ्जी,
श्रीराग की पत्नियाँ—
हिन्दोली और माहुरी,
कलपञ्जर की पत्नियाँ—
शकराभरण, देशी और ललिता,
वसन्त की पत्नियाँ—
रामक्रिया, वराली और कौलिका,
मालव की पत्नियाँ—
गुण्डक्रिया और गुर्जरी,
वङ्गाल की पत्नियाँ—
धन्यासिका, काम्भोजी एवं कर्णाटगौडिका,
नाटक या नाट की पत्नियाँ—
नारायण, गौड, देशाक्षी और आहिरी है।

कुछ लोग राग-रागिनी-वर्गीकरण को केवल उत्तर भारत की विशेषता मानते हैं, परन्तु दाक्षिणात्य शृङ्गारशेखर का उपर्युक्त वर्गीकरण इस धारणा को भ्रान्त सिद्ध करता है।

४७. शम्भुराज

ये काञ्चीनरेश थे। इनका काल १३५० ई० है। इनका ग्रन्थ है 'शम्भुराजीय'। पण्डित-मण्डली ने अपने उपजीव्य ग्रन्थो मे 'शम्भुराजीय' की चर्चा की है।

४८. मदनपाल

ये दिल्ली के सम्राट् थे और १३७५ ई० मे दिल्ली पर इनका अधिकार था। ये एक तेलुगु राजकुमार थे और इन्होने धर्म्मशास्त्र, निघण्टु एवं सङ्गीत पर कई ग्रन्थ लिखे थे। विश्वेश्वर नामक एक महाविद्वान् इनके सहायक थे। इनके ग्रन्थ 'आनन्द-सञ्जीवन' की चर्चा कुम्भकर्ण ने 'नृत्यरत्नकोश' एव पण्डितमण्डली ने 'सङ्गीत-शिरोमणि' मे की है।

मदनपाल के ग्रन्थ का आरम्भ तालाध्याय से है, जिसमें एक सौ तीस ताल और तत्पश्चात् प्रस्तार है। दूसरे अध्याय मे राग और तीसरे अध्याय मे प्रवन्ध है, जो अकस्मात् समाप्त हो जाता है।

यह ग्रन्थ सक्षिप्त है। रागलक्षणों में रागों की तानें दी गयी हैं। रचना-काल १३५० ई० है।

४९. विद्यारण्य

ये अनेक शास्त्रो के प्रकाण्ड पण्डित एवं उद्धारक थे। इन्हीं की सहायता से १३३६ ई० मे तुङ्गभद्रा नदी के तट पर विजयनगर साम्राज्य की आधारशिला रखी गयी। विद्यारण्य माधवाचार्य इस साम्राज्य के महामन्त्री थे और हरिहर प्रथम नरेश।

नवस्थापित विजयनगर मे देश भर के विद्वान् एवं गुणियों को आकृष्ट करने का श्रेय श्री विद्यारण्य को है।

के० वासुदेव शास्त्री का कथन है कि अत्यन्त प्रयत्न करने पर श्री विद्यारण्य को प्रचलित पचास राग मिले, जिनका वर्गीकरण उन्होने पन्द्रह मेलो में किया।

हमारी दृष्टि मे मेल-पद्धति ईरानी मुकाम-पद्धति का रूपान्तर है, जो सारिकाओं का अचल रूप लिये उत्तर भारत से पहुँची, विद्यारण्यजी के पन्द्रह मेलों में 'हेजुज्जी-मेल' भी ईरानी 'हिजाज' का प्रभाव विद्यारण्यजी की मेल-पद्धति पर प्रमाणित करता है।

मूर्च्छना-पद्धति उस समय सुवोध नही रही थी, फलत: वादको के लिए सुकर मेल-पद्धति चल पड़ी।

मेल शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम विद्यारण्यजी ने किया है, उनका ग्रन्थ 'सगीत-सार' था, जो आज उपलब्ध नही।

रघुनाथ ने विद्यारण्यजी के मत का वर्णन किया है।

विद्यारण्यजी के पन्द्रह मेल (१) नट्टा, (२) गुर्जरिका, (३) वराटिका, (४) श्री (५) भैरविका, (६) शकराभरण, (७) आहरिका, (८) वसन्तभैरवी, (९) सामन्त, (१०) काम्बोदिका, (११) मुखारिका, (१२) शुद्धरामक्रिया, (१३) केदारगौड, (१४) हीजुज्जी, (१५) देशाक्षिका नामक रागो मे प्रयोज्य है, इन्ही मे अन्य प्रचलित राग भी आ जाते थे।

५०. भुवनानन्द

ये बङ्गाल-निवासी थे। इनका काल १३५० ई० है। ये जन्मना मैथिल थे और इनकी उपाधि 'कविकण्ठाभरण' थी। इनका ग्रन्थ 'विश्वप्रदीप' है, जिसमे विविध विपय है। सङ्गीतभाग का नाम 'सङ्गीतालोक' है, जिसमे २६०० श्लोक हैं। सगीता-लोक के छः अध्यायो मे क्रमश. नाद, राग, ताल, गीत, प्रकीर्णक एव वाद्य का वर्णन है।

भुवनानन्द ने शिव, नन्दिकेश्वर, शिवा, तुम्वुरु, वायु, नारद, कम्वल, अश्वतर, विश्वावसु, काश्यप, शार्दूल, परमर्दी, कुण्डिन, कोहल, शक्ति, श्रीभरत, याष्टिक, दशग्रीव, उद्भट, लोल्लट, शकुक, अभिनवगुप्त, विशाखिल, श्रीभूवल्लभ, अनिलज, लाटक (?) मातृगुप्त इत्यादि का स्मरण किया है।

५१. देवेन्द्रभट्ट

ये महाकवि रुद्राचार्य के शिष्य एव ग्वालियर के निवासी थे। इनका काल १३५० ई० है। इनकी रचना 'सङ्गीतमुक्तावली' मे शार्ङ्गदेव इत्यादि की भी चर्चा है। पण्डितमण्डली ने अपने सहायक ग्रन्थो मे 'सगीतमुक्तावली' की चर्चा की है।

मुक्तावली मे नवीन नृत्यप्रक्रिया पर भलीभाँति विचार किया गया है। आन्ध्र, महाराष्ट्र, कर्णाटकी शैलियाँ भी दी गयी है।

५२. भट्टमाधव

ये वाराणसी–निवासी थे। इन्होने 'सङ्गीत-दीपिका' या 'सङ्गीतचन्द्रिका' की रचना की है। नन्द्यावर्त, जीमूत और सौभद्र ग्राम इनके द्वारा चर्चा का विपय वने हैं और इनके द्वारा राग-रागिनी-वर्गीकरण अपनाया गया है। इनके ग्रन्थ का रचना-काल प्राय १४०० ई० है। रघुनाथ ने सगीतसुधा मे इनकी चर्चा की है।

५३. विप्रदास

इनकी उपाधियाँ शुक्लपण्डित, सत्यवाक्, शिववल्लभ, विचित्रक, विचित्रवाक्, करणाग्रणी और प्रभुसूरि थी। इनके पिता 'निधिकर' थे।

विप्रदास के ग्रन्थ का नाम 'सङ्गीतचन्द्र' है, जिसका भाग 'नृत्यप्रकाश' ही उपलब्ध है। विप्रदास ने सिंगण, माधव, शार्ङ्गदेव तथा अन्य कुछ पूर्ववर्ती आचार्यों की चर्चा की है। इनकी शैली प्रौढ़ एव सक्षेपप्रिय है। इन पर अभिनवगुप्त का पर्याप्त प्रभाव है।

५४. वेम

ये कोण्डवीटि नगर के रेड्डिवशीय राजा थे। इनकी रचना 'सङ्गीतचिन्तामणि' है। इस ग्रन्थ के वही खण्ड उपलब्ध है, जिनमे वाद्य एवं नृत्य का वर्णन है। इन दोनो खण्डो मे छः सहस्र श्लोक है।

इनका आनुमानिक काल चौदहवी शती ई० है।

५५. सिगणार्य

ये वेम तथा प्रौढ देवराय इत्यादि राजाओ के आश्रय मे रहे थे। इन्होने 'भरत-मिति' नामक ग्रन्थ लिखा, जो नाटचशास्त्र की व्याख्या मात्र है। इनके पौत्र विट्ठल ने तेलुगु मे सङ्गीतरत्नाकर की टीका की है।

विप्रदास, वेम, हम्मीर इत्यादि ने एक और सिंगणार्य की चर्चा की है।

५६. सिगभूपाल या सिहभूपाल

इनका समय चौदहवी शती ई० है। ये सगीतरत्नाकर के सर्वप्रथम टीकाकार है। अपनी एक अन्य रचना 'रसार्णवसुधाकर' में इन्होने अपने वश का परिचय दिया है।

ये शूद्र जातीय राजा थे। इनके पिता अनपोत (उपनाम अनन्त) और पितामह दाचन थे, जिन्होने पाण्डचनरेश को पराजित करके 'खड्गनारायण' उपाधि धारण की।

सिहभूपाल के अग्रज देवगिरीश्वर का स्वर्गवास शीघ्र ही हो गया। विन्ध्यपर्वत एवं श्रीशैल के मध्य मे स्थित 'रागाचल' सिहभूपाल की राजधानी थी।

रत्नाकर की टीका 'संगीत-सुधाकर' मे सिहभूपाल ने कहा है कि शार्ङ्गदेव के उदय से पूर्व भरत इत्यादि के ग्रन्थ दुर्बोध हो गये थे और संगीतपद्धति बिखर गयी थी। शार्ङ्गदेव ने उसे एकत्र एव सुबोध कर दिया। संगीतरत्नाकर के मर्म को गिने-चुने

लोग ही जानते है, सिहभूपाल ही उसकी व्याख्या करने मे समर्थ है, क्योंकि उसने ही चिरन्तन अभ्यास से भरत इत्यादि के दुर्बोध ग्रन्थों को समझा है।

सिहभूपाल की टीका सुबोध एव महत्त्वपूर्ण है। इसमे 'सङ्गीतसमयसार', 'नन्दिकेश्वर', मतङ्ग, नैपध, वेदान्तकल्पतरु, विचार-चिन्तामणि, दत्तिल पर प्रयोग-स्तवक व्याख्या इत्यादि की चर्चा है।

सिहभूपाल ने लिखा है कि लोक में वैणिक यथेच्छ स्थानो पर स्वरों की स्थापना करते है।

५७. पण्डितमण्डली

जौनपुर के सुलतान इब्राहीम शर्की (१४००-१४४० ई०) के समय मलिक सुलतान कडा का अधिपति था। इसके पुत्र वहादुर मलिक ने सङ्गीत एव नाट्य पर अनेक ग्रन्थ एकत्र किये तथा भारत के प्रत्येक भाग से अनेक शास्त्रों के पण्डितो को वुलाकर इकट्ठा किया।

उस पण्डित-मण्डली के समक्ष बहादुर मलिक ने कहा कि पण्डितवृन्द मेरा ग्रन्थ-सग्रह देखें और उसके आधार पर एक ऐसे ग्रन्थ की रचना करे, जिसमे सङ्गीत-सम्वन्धी मतभेदो का निर्णय हो। गम्भीर चिन्तन एव विचार-विनिमय के परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ मे सङ्गीतसम्वन्धी विभिन्न सिद्धान्त एव निष्कर्प होने चाहिए।

वहादुर मलिक के विद्या-प्रेम के परिणामस्वरूप उन समस्त पण्डितो के सम्मिलित प्रयत्न के द्वारा 'सङ्गीतशिरोमणि' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ की रचना १४२९ ई० मे हुई।

संगीत-शिरोमणि की प्रति खण्डित रूप मे उपलब्ध हुई है, फलत. इसके कर्ताओं के नाम तो नही मिलते, आधारग्रन्थो के नाम प्राप्त है। वे आधारग्रन्थ, सगीतसागर, रागार्णव, सङ्गीतदीपिका, सङ्गीतचूडामणि, वादिमत्तगजाकुश, सगीतरत्नाकर, सङ्गीतदर्पण, तालार्णव, सङ्गीतकल्पवृक्ष, सङ्गीतरत्नावली, नृत्यरत्नावली, सङ्गीत-मुद्रा, संगीतोपनिपत्सार, सगीतसारकलिका, सङ्गीतविनोद, आनन्दसञ्जीवन, मुक्तावली तथा अन्य अनेक ग्रन्थ है।

'सङ्गीतशिरोमणि' मे सम्भवत. पाँच या छ प्रकाश रहे होगे, अव केवल प्रथम एव चतुर्थ उपलब्ध है।

प्रथम अध्याय का परिशीलन वताता है कि इस ग्रन्थ के सग्राहक व्यर्थ विस्तार से वचे है। जिस विपय मे मतभेद है, वहाँ सभी सम्प्रदायों की चर्चा की गयी है।

'संगीतशिरोमणि' का प्रवन्ध भाग भी पृथक् मिला है, जिसमे परमर्दी, अर्जुन, सोमेश्वर, प्रताप पृथ्वीपति आदि की चर्चा है।

५८. कुम्भ

मेवाड के प्रसिद्ध विजयी महाराणा कुम्भकर्ण या कुम्भा 'संगीतराज' नामक एक प्रौढ ग्रन्थ के रचयिता है। इस ग्रन्थ मे पॉच अध्याय है। प्रत्येक अध्याय मे चार प्रकरण और प्रत्येक प्रकरण मे चार परिच्छेद है। सोलह सहस्र श्लोको मे यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है।

कुम्भ ने विपय-विभाजन इत्यादि मे शार्ङ्गदेव का अनुकरण किया है तथा अभिनव-गुप्त, विप्रदास, अशोक, देवेन्द्र, मदन एवं पण्डित-मण्डली का प्रभाव भी उन पर है।

महाराणा कुम्भ की पुत्री और पुत्र ने १४८० ई० के अभिलेख में महाराणा कुम्भ की कृति 'गीतगोविन्दटीका' एवं 'सगीतराज' की चर्चा की है।

महाराणा कुम्भ ने जहाँ भरत, मतङ्ग एव अभिनवगुप्त इत्यादि के सिद्धान्तो पर असाधारण अधिकार प्रकट किया है, वहाॅ देशी संगीत की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियो की ओर भी सकेत किया है। रागो के ध्यान भी दिये हैं।

५९. देवण भट्ट

इनका समय १४५० ई० है। 'सगीतमुक्तावलि' नामक एक अच्छा ग्रन्थ इनकी रचना है। देवेन्द्र के गतिलक्षण से भी इसमें कुछ श्लोक उद्धृत है।

६०. कल्लिनाथ

इनके पिता लक्ष्मीधर एवं पितामह वल्लभदेव शाण्डिल्यगोत्रीय विद्वान् थे।* विजयनगर के यादव वंशीय राजा इम्मडिदेव (१४४६-१४६५ ई०) आचार्य कल्लिनाथ के आश्रयदाता थे। आचार्य कल्लिनाथ संगीतरत्नाकर पर अपनी टीका के कारण प्रसिद्ध है।

---

*इस अनुवन्ध का प्रयोजन शोध मे रुचि रखनेवाले सज्जनों को सगीत सम्बन्धी आचार्यो एवं ग्रन्थो का परिचय कराना है। जिन विभूतियो या कृतियो की चर्चा यहाॅ की गयी है, उनके अतिरिक्त भी आचार्य और रचनाएँ होगी, उनकी खोज एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

भारतीय सङ्गीत के प्रामाणिक इतिहास एवं विकास को जानने के लिए उन कृतियो का सूक्ष्म परिशीलन आवश्यक है, जिनकी चर्चा हुई है। इस कार्य के महत्त्व की ओर देश के सभी सङ्गीतानुरागियो का ध्यान जाना चाहिए।

इन समस्त उपलब्ध ग्रन्थो की प्रतिलिपियों का सग्रह एक केन्द्र मे होना और उपयुक्त स्थितियो का उत्पन्न किया जाना परमावश्यक है।

उपजीव्य सामग्री

ग्रन्थ	लेखक	संस्करण
१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास	कलकत्ता-संस्करण, सं० १९४६ वि०
२. अभिनवभारती	अभिनवगुप्त	गायकवाड-सीरीज
३. अमरकोश	अमरसिंह	निर्णयसागर-सस्करण, १८८२ ई०
४. अमरविवेक	महेश्वर	" "
५. कलानिधि	कल्लिनाथ	आनन्दाश्रम-सस्करण एवं अडयार-सस्करण
६. काव्यप्रकाश	मम्मट	बम्बई-सस्करण, १९१७ ई०
७. काव्यप्रकाश टीका	वामन	" "
८. तर्कसंग्रह	अन्नभट्ट	टीकात्रयोपेत, प्रथम काशी-संस्करण
९. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य	.....	मद्रास-युनिवर्सिटी-सस्करण
१०. ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन	गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५२ ई०
११. नाट्यशास्त्र	....	वम्बई-सस्करण, काशी-संस्करण, वडोदा-सस्करण, प्रो० भोलानाथ कृत हिन्दी व्याख्या सहित प्रथम तीन अध्याय, साहित्य-निकेतन कानपुर
१२. निरुक्त	यास्क	भास्कर पुस्तकालय, कनखल
१३. निरुक्त-टीका	दुर्गाचार्य	भास्कर पुस्तकालय, कनखल
१४. भरत-कोश	प्रोफ़ेसर रामकृष्ण कवि	तिरुपति-सस्करण
१५. महाभाष्य	पतञ्जलि	निर्णयसागर-सस्करण
१६. माहिषेय भाष्य.	....	मद्रास युनिवर्सिटी-सस्करण
१७. रामायण	वाल्मीकि	रामकृत टीकासहित निर्णयसागर-संस्करण
१८. श्रीमद्भागवत (मूल)	वेदव्यास	वेंकटेश्वर प्रेस-सस्करण
१९. साहित्यदर्पण	विश्वनाथ	विमलाटीकासहित, लखनऊ

ग्रन्थ	लेखक	संस्करण
		सस्करण (द्वितीय)
२०. सिद्धान्तकौमुदी	भट्टोजिदीक्षित	तत्त्ववोधिनी सहित, वम्बई-संस्करण
२१. सङ्गीतरत्नाकर	शार्ङ्गदेव	अडयार-संस्करण एवं आनन्दाश्रम-संस्करण
२२. सुधाकर	सिंहभूपाल	” ” ”

अनुक्रमणिका

ध

ह